# श्री विश्वकर्मा पुराण एवं पूजन पद्धति

पं० राकेश शास्त्री

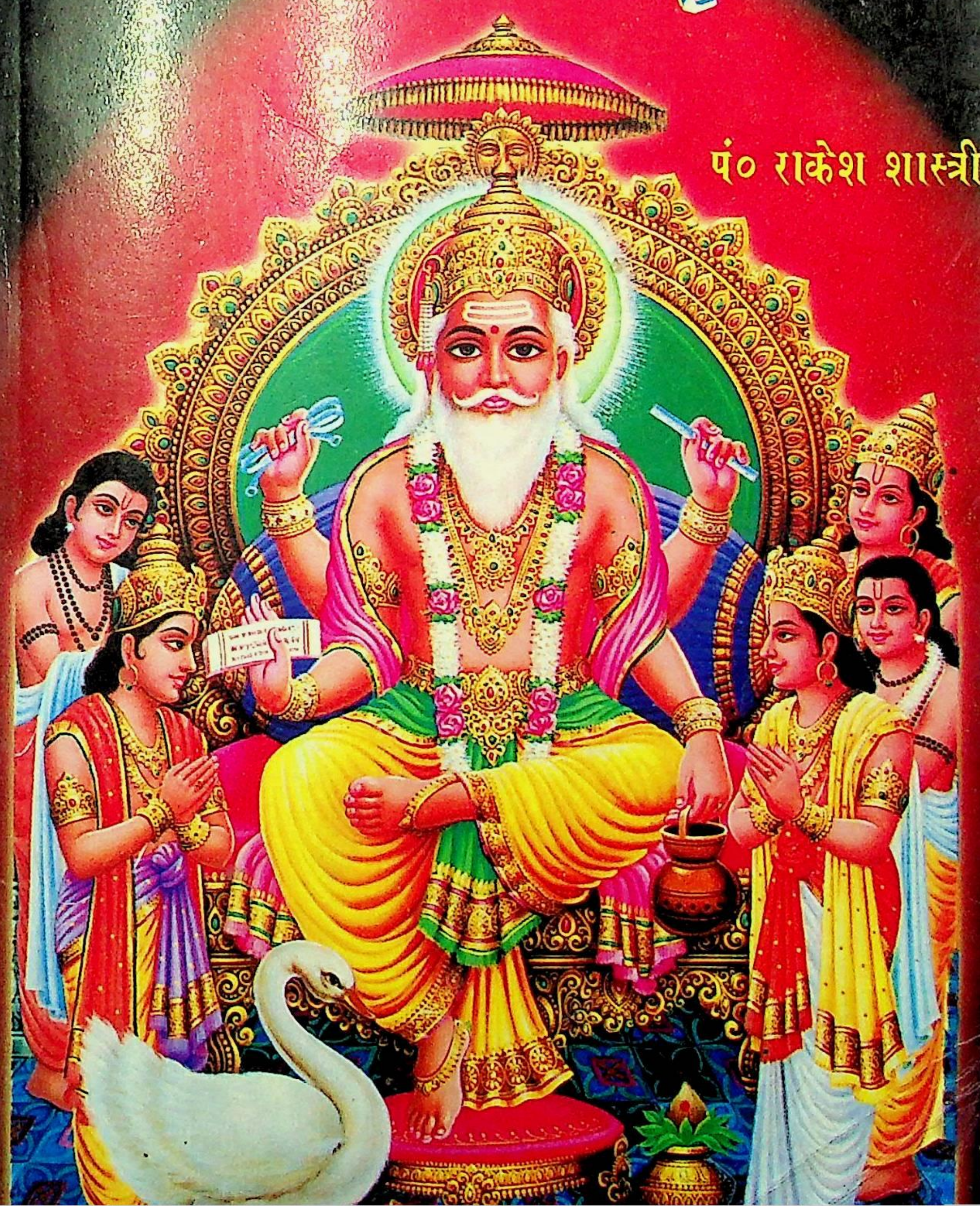

# श्री विश्वकर्मा पुराण
# एवं
# पूजन पद्धति

विश्व रचियता प्रभु विश्वकर्मा के अनुपम गुणगान एवं
उनके द्वारा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के अस्तित्व और उनके
निर्माण व संहार कार्यों का अद्‌भुत वर्णन

प्रस्तुति :
**सत्यवीर शास्त्री**

**साधना पॉकेट बुक्स**

हमारा उपयोगी प्रकाशन :

# शिव उपासना

सत्यवीर शास्त्री

**साधना पॉकेट बुक्स**

© : प्रकाशकाधीन

प्रकाशक : साधना पॉकेट बुक्स
39 यू० ए० बैंग्लो रोड,
जवाहर नगर, दिल्ली-110007
फोन : 3966715, 3914161
मूल्य : 40/-
संस्करण : 2001
लेजर : रावत कम्प्यूटर्स,
गांधी नगर, दिल्ली.110031
फोन : 2220075
*Printed at* : SUDHA OFFSET PRESS

श्री विश्वकर्मा पुराण एवं पूजन पद्धति : सत्यवीर शास्त्री : Rs. 40/-

# विषय-सूची

1. मंगलाचरण 5
2. पूजन सामग्री 5
3. विश्वकर्मा वंश वृक्ष 7
4. अथ विश्वकर्मा पूजन पद्धति 8
5. अथ गणेशपूजनम् 11
6. अथ गौरीपूजनम 12
7. नवग्रह पूजन मंत्र 13
8. अथ विश्वकर्मण : प्राण-प्रतिष्ठा 16
9. हृदयादिन्यास 17
10. विश्वकर्मा कवच 21
11. विश्वकर्मा पुराण 23
12. उपासना का उपदेश 25
13. विश्वकर्मा का नाम संग्रह 26
14. ऋषि वात्स्यायन की अभिलाषा 30
15. सृष्टि चक्र रहस्य 31
16. ब्रह्मा जी का उदय 35
17. ब्रह्मा जी की जाग्रत चेतना 36
18. सृष्टि चक्र एवं कर्म रचना 39
19. इन्द्रयादि देव की रचना 40
20. जीवन-मृत्यु व्याख्यान 42
23. धर्म-आयु व समय-चक्र 46
24. हरिण्यकशिपु की तप-साधना 51
25. नारायण भक्त प्रहलाद 54
26. हरिण्यकशिपु संहार 62
27. शिव एवं दक्ष का वैर भाव 67
28. दक्ष महल में सती का आगमन 71
29. सती की प्राण आहुति एवं यज्ञ विध्वंस 75
30. शिव का रौद्र रूप 77
31. शिव द्वारा दक्ष यज्ञ समापन 79

32. पार्वती अवतार 80
33. महादेव शिव की बारात 82
34. शंकर पार्वती विवाह 84
35. देवताओं की दैत्यों पर विजय 87
36. वामनावतार का अवतरण 89
37. श्री रामावतार वर्णन 94
38. श्री कृष्णावतार वर्णन 100
39. गोवर्धन धारण वर्णन 105
40. उग्रसेन अभिषेक 108
41. विश्वकर्मा का निर्माण : द्वारिकापुरी 112
42. समुद्र-मंथन 116
43. देवताओं द्वारा अमृतपान 119
44. वज्र-निर्माण 122
45. संज्ञा-विवाह 125
46. सूर्य तेज पर विश्वकर्मा का अंकुश 127
47. युद्ध में दैत्यों की पराजय 128
48. प्रभु भक्त ध्रुव 130
49. सुकन्या च्यवन विवाह 135
50. इलाचल महिमा 141
51. कन्यादान का माहात्म्य 146
52. महिमा अज्ञात स्थल 150
53. भक्ति मार्ग 159
54. विश्वावसु महिमा 164
55. शकुन-संकेत 182
56. विश्वकर्मा उपनिषद ज्ञान 184
57. पुराण श्रवण एवं फल प्राप्ति 186
58. भारत : देवधाम 188
59. विश्वकर्मा द्वारा वास्तुशास्त्र वर्णन 192
60. वास्तु विषयक विमर्श 195
61. विश्वकर्मा चालीसा 201
62. विश्वकर्मा जी की आरती 204
63. विश्वकर्मा सूक्त (मूल) 205
64. श्री विश्वकर्मा जी की आरती 207

श्री गणेशाय नमः

# विश्वकर्मा पुराण

## मंगलाचरण

विघ्नेशं वरदं महेशतनयं दुर्गां च तन्मातरम्
वंदे शंकर शंकर त्रिनयनं विश्वं चिदानंदनदम्।
क्षीराब्धौ भुजं गाधिवासललितं देवं रमासंयुतं
ब्रह्माणं भुजगेश्वरं च सवितां श्री शरदाम्बां भले ॥

महादेव शंकर के पुत्र हे गजानन गणपति विघ्नों का नाश करने वाले तथा सदैव वरदान देने वाले एवं मातेश्वरी भवानी को मेरा बार-बार प्रणाम। कल्याणकारी त्रिलोक के स्वामी त्रिनेत्रधारी प्रभु शंकर जी को मेरा नमस्कार। मन को शान्ति तथा मंगलदायक परम पिता विश्वकर्मा जी को मेरा नमस्कार। क्षीर सागर में शेषनाग पर विराजमान महादेवी लक्ष्मी जी के प्रभु विष्णु जी को मेरा नमस्कार। देवी गायत्री, सरस्वती, सूर्य एवं शेष नारायण सहित ब्रह्मा जी की मैं वन्दना हमेशा करता हूं।।

## क्षमा युक्त प्रार्थना

अनायासेल्प बुद्धया च ग्रंथोऽयं निर्मितो मया।
यद्यप्य शुद्धं क्षंतव्यं विद्धभदिः शुद्ध चेतसा ॥

अपनी तुच्छ बुद्धि के द्वारा बिना मेहनत से अपनी समझ के अनुसार मैंने इस पवित्र ग्रंथ की रचना की है। संभव है कि इस ग्रंथ में कुछ त्रुटि रह गई हो। सभी विद्वान मेरी इस भूल को क्षमा कर दें यही क्षमा सहित सभी विद्वानों एवं पाठकों से नम्र प्रार्थना है।

## पूजन सामग्री

मण्डप, मृण्मय कलश, ताम्र कलश, हवन वेदी, नवग्रह वेदी तथा प्रधानवेदी, विश्वकर्मा की प्रतिमा (धातुमयी, मृण्मयी या चित्रमयी) होनी चाहिए। होम द्रव्य तथा पूजा द्रव्य के हेतु कुछ सामग्री आवश्यक है जो निम्नलिखित हैं—

नारा, रोरी, सिन्दूर, अबीर, कस्तूरी, चन्दन, बुक्का, केसर, मेंहदी, हल्दी, पीली सरसों, सुपारी, असत, पान, फूलों की माला, तुलसी के पत्ते, धूपबत्ती, रुई, कपूर,

कच्चा, सूत, पेड़े, बताशे, फल, नारियल, दूध, दही, मधु, घृत, शर्करा से बना पंचामृत, गंगाजल, होम सामग्री, कटोरी, कुशासन, द्वार कलश, यज्ञोपवीत, दीया, दिमरी, ढकनी, पुरवा, पत्तल, हंडिया, केले का स्तम्भ, अशोक पत्ती, कुश, समिधा, धोती, अंगोछा, चद्दर, चौकी, आसन, जलपात्र, लोहे का कोई भी हथियार।

# भगवान् विश्वकर्मा का वंश-वृत्तान्त

देवताओं में पूज्य ब्रह्माजी के प्रपौत्र श्री विश्वकर्मा जी हैं, जिनकी पूजा का विधान वैदिक काल में भी था और यज्ञ तथा वास्तु-विधान के प्रसंग में उनकी अर्चना सर्वदा से होती आ रही है, जो कालान्तर में बन्द-सी हो गयी थी, क्योंकि अभी भी ब्रह्माजी की पूजा एवं मन्दिर बिरले ही देखने को मिलता है। यह किससे छिपा है कि विश्वकर्मा ने ही सर्वप्रथम स्वर्ग-लोक की रचना की। पश्चात् लङ्का तथा द्वारिका आदि अनेकों पुरियों का निर्माण देवलोक के शिल्पी विश्वकर्मा भगवान् ने ही किया। पुरुरवा के राज्य में जब द्वादश-वर्षीय यज्ञ हुआ था, तब वहां यज्ञशाला का निर्माण विश्वकर्मा ने ही किया था।

विश्वकर्मा जी ने काशीजी में स्वयं एक शिवलिंग भी स्थापित किया था। दुर्गा सप्तशती के दूसरे अध्याय में देखिए कि विश्वकर्मा ने अन्य देवताओं के समान भगवती दुर्गा देवी को स्वनिर्मित अनेक भूषण एवं फरसा आदि शस्त्र भी प्रदान किया था।

ब्रह्मात्मज वास्तुदेव के पुत्र विश्वकर्मा भगवान् थे। अतः उनकी पूजा देवपूजा ही है। दुर्भाग्यवश वह परम्परा कुछ दिनों तक ढीली पड़ गयी थी, परन्तु अब विद्वानों का ध्यान पुनः इधर आकृष्ट हुआ है, जिसके फलस्वरूप 'विश्वकर्मा पूजा-पद्धिति' भी दृष्टिगोचर होने लगी है। पर वे या तो संक्षिप्त हैं अथवा केवल संस्कृत में हैं। अतएव एक ऐसी पूजा विधि की आवश्यकता थी, जिसके द्वारा सर्व साधारण भी उस पद्धति से लाभ उठा सकें। ऐसी सद्भावना से प्रेरित होकर मैंने यह पुस्तक सम्पादित की है। इस पुस्तक में सविधि कलश-स्थापन पूर्वक गौरी-गणेश नवग्रहादिक एवं विश्वकर्मा भगवान की पूजा विधि लिखी है। कुछ लोगों की धारणा है कि विश्वकर्मा की पूजा तो नवीन है, परन्तु यह सर्वथा असंगत है। देखिए प्राचीन काल में भी प्रत्येक यज्ञ-मण्डपों में लोकपालों की भांति भगवान् विश्वकर्मा की भी पूजा (अर्चना) विहित है। यथा—

**"उत्तरेशानयोर्मध्ये रक्तस्तम्भे विश्वकर्माणमावाहयेत् पूजयेच्च। वेदमन्त्रो यथा—**

**"विश्वकर्मन् हविषा वर्धनेन त्रातारमिन्द्रमकृणोरवध्यम्।**

तस्मै विशः समनमन्त पूर्वीरयमुग्रो विहव्यो यथासत् ॥''
आवाहयामि देवेशं विश्वकर्गाणमीश्वरम् ।
मूर्ताऽमूर्त्तकरं देवं सर्वकर्त्तारमीश्वरम् ॥''
''त्रैलोक्यसूत्रकर्तारं द्विभुजं विश्वदर्शितम् ।
आगच्छ विश्वकर्मस्त्वं स्तम्भेऽस्मिन् सन्निधो भव ।''

अब यह स्पष्ट सिद्ध हो गया कि विश्वकर्मा जी की पूजा कोई नवीन नहीं है, क्योंकि सृष्टि के प्रारम्भ में सर्वप्रथम 'नारायण' साक्षात् विष्णु भगवान् जलार्णव (क्षीर सागर) में शेष-शय्या पर आविर्भूत हुए। उनके नाभि-कमल से चतुर्मुख ब्रह्मा दृष्टिगोचर हुए। ब्रह्मा के पुत्र ''धर्म'' तथा धर्म के पुत्र 'वास्तुदेव' हुए। धर्म की 'बसु' नामक स्त्री से (जो प्राचेतस दक्ष की कन्याओं में से एक थी) उत्पन्न अष्ट वसुओं में से 'वास्तु' सातवें पुत्र थे, जो शिल्प शास्त्र के आदि प्रवर्तक थे। उन्हीं के पुत्र विश्वकर्मा जी हुए। देखिए—

## विश्वकर्मा वंश-वृक्ष

नारायण
↓
नाभि—कमल
↓
ब्रह्मा
↓
धर्म
↓

मनेक सृष्टि मनुशतरूपा नारद दक्ष भृगु केतु
पुलस्त्य अत्रि रुद्र सनन्दन वाराहनी कर्दम वशिष्ठ वास्तु पुलह अंगिरा

पुलस्त्य ↓ सनातन
अत्रि ↓ सनक
रुद्र ↓ सनत्कुमार
वास्तु ↓ विश्वकर्मा

विश्वकर्मा की बनाई हुई गृह निर्माण विद्या का नाम 'वास्तु विद्या' पड़ गया। तभी से गृह-प्रतिष्ठा एवं मन्दिर-प्रतिष्ठादि कृत्यों में वास्तुपीठ का पूजन प्रचलित हुआ। उन्हीं वास्तुदेव की 'आंगिरसी' नाम की स्त्री से विश्वकर्मा की उत्पत्ति हुई थी। पिता की भांति विश्वकर्मा भी वास्तुकला के अद्वितीय आचार्य हुए, जो विश्व-विख्यात हैं।

प्राचीनकाल की राजधानियां प्रायः सभी विश्वकर्मा की बनायी कही जाती हैं। यहां तक कि सत्ययुग का 'स्वर्ग लोक', त्रेता की 'लङ्का', द्वापर की 'द्वारिका' तथा कलियुग की 'हस्तिनापुर' आदि नगर विश्वकर्मा की रचना के ज्वलन्त उदाहरण हैं। 'सुदामापुरी' की तात्कालिक रचना कौन नहीं जानता, इससे यह प्रमाणित है कि

धन-धान्य एवं सुख-समृद्धि की अभिलाषा रखने वाले लोगों को विशेषकर उनके वंशजों को भगवान् विश्वकर्मा की पूजा करना अत्यन्त आवश्यक एवं मङ्गलप्रद है।

# अथ विश्वकर्मा पूजन-पद्धतिः

## भाषा-टीका सहित

### मंगलाचरणम्

श्रीगणेशं गुरुं नत्वा देवीं श्रीभुवनेश्वरीम्।
क्रियतेऽत्र सुशर्मेण विश्वकर्म-सुपद्धतिः ॥१॥
नारायणाब्ज-जनितस्य विधेः सुतस्य, धर्मात्मजस्य गृहवास्तुसुतं वरेण्यम्।
स्वर्गादिलोकरचनाकुशलं तमद्य श्रीविश्वकर्म विश्रुतं सततं स्मरामः ॥२॥

(तत्रादौ ध्यानपूर्वकं दिग्बन्धनम्)

**कृतनित्यक्रियः सपत्नीको यजमानः पूजास्थाने आसनोपर्युपविश्य पवित्रीधारणपूर्वकम् आचम्य प्राणानायम्य विष्णोर्ध्यानं कुर्यात्।**

स्नानादि नित्य क्रिया से निवृत्त होकर स्त्री सहित यजमान पूजा स्थान में शुद्धासन पर बैठकर पवित्री धरण करे। तत्पश्चात् आचमन, मार्जन करके प्राणायाम करे तथा विष्णु भगवान का ध्यान करे।

**ॐ यं ब्रह्मावरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुवन्ति दिव्यैः स्तवैः, वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः। ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो, यस्यान्तं न विदुः सुराऽसुरगणा देवाय तस्मै नमः ॥३।।**

**इति पठित्वा इष्टदेवं स्मरन् कुशजलैरात्मानं स्त्रियं पूजासामग्रीञ्च मार्जयेत्। मंत्रं यथा—ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थांगतोऽपि वा। यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं बाह्याभ्यन्तरः शुचिः ॥४।।**

यह मंत्र पढ़कर अपने इष्टदेवता को स्मरण करते हुए जल सहित कुशा से अपने आपको, स्त्री को तथा पूजा की सामग्री को पवित्र करे।

पश्चात् हाथ में पुष्पाक्षत लेकर 'ॐ आधारशक्तये नमः, ॐ कूर्माय नमः, ॐ अनन्ताय नमः, ॐ पृथिव्यै नमः' ऐसा कहकर चारों ओर अक्षत छिड़के। तत्पश्चात् श्वेत सरसों लेकर दिग्बन्धन* करे। यथा—

*पूर्वे रक्षतु वाराह आग्नेय्यां गरुडध्वजः। दक्षिणे पद्मनाभस्तु नैर्ऋत्यां मधुसूदनः॥१॥ पश्चिमे चैव गोविन्दो वायव्यां तु जनार्दनः। उत्तरे श्रीपतिः रक्षेदैशान्यां तु महेश्वरः॥२॥ ऊर्ध्वं रक्षतु धाताब्जो अधोऽनन्तश्च रक्षतु। अनुक्तामपि यत्स्थानं रक्षत्वीशो ममाद्रिधृक्॥३॥

अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भूमि संस्थिताः।
ये भूता विघ्नकर्त्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया ॥५॥

तत्पश्चात् दूर्वाक्षतगन्धपुष्पाणि जलपात्रे निधाय धेनुमुद्रया अमृतीकरणं, मत्स्यमुद्रयाऽऽच्छादनञ्च कृत्वा अंकुशमुद्रया जले तीर्थावाहनं कुर्यात्। यथा—

दिग्बन्धन करने के बाद रक्षासूत्र पुरुष के दाहिने हाथ में और स्त्री के बायें हाथ में बांधकर दूर्वाक्षत, पुष्प, जल पात्र में छोड़े। तत्पश्चात् धेनु मुद्रा से अमृतीकरण, मत्स्य मुद्रा से ढंककर, अंकुश मुद्रा से जल में तीर्थों का आवाहन करे—

ॐ गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धु कावेरि ! जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ॥६॥

ततः स्वहृदये विश्वकर्माणं ध्यात्वा, रक्षादीपं प्रज्वाल्य, गन्धाक्षतपुष्पाणि गृहीत्वा स्वस्तिवाचनं कुर्यात्।

इसके बाद अपने हृदय में विश्वकर्मा भगवान का ध्यान करे और रक्षादीप जलावे। फिर हाथ में गन्धाक्षत पुष्प लेकर स्वस्तिवाचन (वैदिक मङ्गल मन्त्र पढ़कर) करे।

तत्र विश्वकर्मा ध्यान मन्त्रो यथा—

'ॐ विश्वकर्मन् हविषा वावृधानः स्वयं यजस्व पृथिवीमुत द्याम्।
मह्यन्त्वन्येऽअभितः सपत्ना इहाऽस्माकं माघवा सूरिरस्तु ॥"

इसके बाद निम्नलिखित वैदिक मन्त्रों से स्वस्तिवाचन करना चाहिए। जैसे—

ॐ हरिः। ॐ स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति ना पूषा विश्ववेदाः। स्वस्ति नस्तार्क्ष्योऽअरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥१॥

ॐ पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभं यावानो विदथेषु जग्मयः। अग्निर्जिह्वा मनवः सूरचक्षसो विश्वे नो देवाऽअवसागमन्निह ॥२॥

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। स्थिरैरंगैस्तुष्टुवाꣳस स्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥३॥

शतमिन्नु शरदोऽअन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसन्तनूनाम्। पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः ॥४॥

अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः। विश्वे देवाऽअदितिः पञ्च जनाऽअदितिर्ज्जातमदितिर्जनित्वम् ॥५॥

दीर्घायुत्वाय बलाय वर्चसे सुप्रजास्त्वाय सहसा। अथो जीव शरदः शतम् ॥६॥

ॐ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः पृथिवी शन्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वꣳ शान्तिः शान्तिरेव शान्ति सा मा शान्तिरेधि ॥७॥

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव यद्भद्रंतन्न आसुव ॥८॥

यतो यतः समीहसे ततो नो ऽअभयं कुरु। शन्नः कुरुप्प्रजाभ्योऽभयन्नः पशुभ्यः। शान्तिः शान्तिः सुशान्तिर्भवतु ॥६॥

इस प्रकार स्वस्त्ययन के बाद आचार्य (कर्मकाण्डी) अक्षत छिड़के तथा हाथ में फूल देकर यजमान को हाथ जोड़ने को कहे और स्वयं पुनः देवताओं की प्रार्थना करे—

श्रीमन्महागणाधिपतये नमः। श्रीलक्ष्मीनारायणाभ्यां नमः। वाणीहिरण्यगर्भाभ्यां नमः। उमामहेश्वराभ्यां नमः। शचीपुरन्दराभ्यां नमः। धर्माय नमः। वास्तुदेवाय नमः। विश्वकर्मणे नमः। कुलदेवताभ्यो नमः। इष्टदेवताभ्यो नमः। स्थानदेवताभ्यो नमः। सर्वेभ्यो देवेभ्यो नमो नमः। सर्वाभ्यो देवीभ्यो नमः।

अथ तांत्रिकमतेन देवताध्यानम्

विश्वेशं माधवं ढुण्ढिं दण्डपाणिञ्च भैरवम्।
वन्दे काशी गुहां गङ्गां भवानी मणिकर्णिकाम् ॥१॥
त्रिवेणीं माधवं शम्भुं भरद्वाजञ्च वासुकीम्।
वन्देऽक्षयवटं शेषं प्रयाग तीर्थनायकम् ॥२॥
सुमुखश्चैकदन्तश्च कपिलो गजकर्णकः।
लम्बोदरश्च विकटो विघ्ननाशो विनायकः ॥३॥
धूम्रकेतुर्गणाध्यक्षो भालचन्द्रो गजाननः।
द्वादशैतानि नामानि यः पठेच्छृणुयादपि ॥४॥
विद्यारम्भे विवाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा।
संग्रामे संकटे चैव विघ्नस्तस्य न जायते ॥५॥
शुक्लाम्बरधरं देवं शशिवर्णं चतुर्भुजम्।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्वविघ्नोपशान्तये ॥६॥
अभीप्सितार्थसिद्ध्यर्थं पूजितो यः सुराऽसुरैः।
सर्वविघ्नहरस्तस्मै गणाधिपतये नमः ॥७॥
सर्वमंगलमांगल्ये शिवे ! सर्वार्थसाधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि ! नमोऽस्तुते ॥८॥
तदेव लग्नं सुदिनं तदेव, ताराबलं चन्द्रबल तदेव।
विद्याबलं दैवबलं तदेव, लक्ष्मीपते ! तेऽङ्घ्रियुगं स्मरामि ॥९॥
लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजयः।
येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः ॥१०॥
सर्वेष्वारम्भकार्येषु त्रयस्त्रिभुवनेश्वराः।
देवा दिशन्तु नः सिद्धिं ब्रह्मेशानजनार्दनाः ॥११॥

इसके बाद कुशाक्षत जल-द्रव्यं के साथ पुष्प और सुपाड़ी लेकर संकल्प करे।

## अथ संकल्प

ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः। ॐ तत्सदद्य श्रीमद्भगवतो महापुरुषस्य विष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्य श्रीब्रह्मणोऽह्नि द्वितीयपरार्द्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे वैवस्वतमन्वन्तरेऽष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथमचरणे जम्बूद्वीपे भरतखण्डे आर्यावर्तैक देशान्तरगते श्रीमद्विष्णु प्रजापति क्षेत्रे (यथा प्रयाग क्षेत्रे) अमुकसंवत्सरे अमुक अयने अमुक ऋतौ अमुक मासे अमुक पक्षे अमुक तिथौ अमुक वासरे अमुक नक्षत्रे अमुक योगे अमुक करणे, अमुक राशिस्थिते सूर्ये, चन्द्रे यथा- स्थानस्थितेषु सत्सु ग्रहेषु एवं गुणविशिष्टायां वेलायां (लग्ने वा), अमुकगोत्रोत्पन्नः (शर्मा-वर्मा, गुप्तदासोऽहम्) सपत्नीकोऽहं श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तफलप्राप्तये (अमुककार्य-सिद्ध्यर्थं) यथोक्तविधानेनात्र संस्थापित-कलशोपरि श्रीविश्वकर्मा- पूजनमहं करिष्ये।

तत्रादौ निर्विघ्नकृत्यसम्पादनार्थं श्रीगणेशाम्बिकयोः पूजनं कलशस्थापनं नवग्रहदीनां पूजनञ्च करिष्ये।

तत्रादौ तण्डुलपूर्णपात्रेऽष्टदलं निर्माय पूंगीफलमयं गणेशं, गोमयीं गौरीञ्च संस्थाप्य पञ्चोपचारैः पूजयेत्। पञ्चलोकपालान् नवग्रहादींश्च पूजयित्वा षोडशमातृणां पूजनं कुर्यात्। तद्यथा—

संकल्प के बाद चावल से भरे पात्र में रोली से अष्टदल बनाकर सुपाड़ी का गणेश तथा गोमय की गौरी की पूजा पंचोपचार अथवा षोडशोपचार विधि से करनी चाहिए। साथ ही पञ्च-लोकपाल एवं नवग्रह की पूजा करके षोडशमातृका पूजन भी करे। जैसे—

## अथ गणेशपूजनम्

एह्येहि हेरम्ब ! महेशपुत्र समस्तविघ्नौघविनाशदक्ष।
मांगल्यपूजा-प्रथमं प्रधान ! गृहाण पूजां भगवन् नमस्ते ॥
आगच्छ भगवन् देव स्वस्थानात्परमेश्वर !
अहं पूजां करिष्यामि सदा त्वं सम्मुखो भव ॥

इस मंत्र से गणेशजी का आवाहन करके नीचे के मंत्र से प्रतिष्ठा करे—

एषु चाक्षत-पुञ्जेषु पूंगीफल-सुमूर्तिषु। पूजार्थं वै प्रतिष्ठामि सुप्रतिष्ठ सुरेश्वर !॥

इसके बाद गणानां त्वा गणपति...इस वेदमंत्र को उच्चारण करके संक्षेप में इस प्रकार पूजन करे—

एतत् पाद्यं गणपतये नमः, एषोऽर्घो गणपतये नमः। एतत्स्नानीयं जलं गणपतये नमः, इमे वस्त्रयज्ञोपवीते गणपतये नमः। इदं गन्धं गणपतये नमः, इमे अक्षताः गणपतये नमः। 'ॐ धूरसि धूर्व धूर्वन्तं योऽस्मान् धूर्वती' इति मंत्रेण धूपं गणपतये नमः। 'अग्निर्ज्योति' इति मंत्रेण दीपं दर्शयामि। हस्तप्रक्षालनम्। गणपतये नमः। नैवेद्यं निवेदयामि गणपतये नमः, नैवेद्यान्ते आचमनीयं समर्पयामि। गणपतये नमः। ताम्बूलं सम. गणपतये नमः। फलं दक्षिणां च सम. गणपतये

नमः। अन्ते पुष्पाञ्जलिं दद्यात्—

'मालती-मल्लिकाजाती-शतपत्रादिसंयुतम्। पुष्पाञ्जलिं गृहाणेश ! तव पादयुगार्पितम् ॥

प्रार्थना—

विघ्नेश्वराय वरदाय सुरप्रियाय लम्बोदराय सकलाय जगद्धिताय।
नागाननाय सुरयज्ञविभूषिताय गौरीसुताय गणनाथ ! नमो नमस्ते ॥
अनेन पूजनेन श्रीगणेशः प्रीयताम्।

## अथ गौरीपूजनम्

नीचे लिखे हुए वैदिक तथा तांत्रिक मंत्रों द्वारा 'गोमयी' गौरी देवी का आवाहन एवं पूजन करना चाहिए।

ॐ श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पर्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम्। इष्णन् निषाणामुम्म ऽइषाण सर्वलोकं मऽइषाण ॥१॥

सर्वमंगलमंगल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके !
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि ! नमोस्तुते ॥२॥

इस मंत्र से गौरी का आवाहन करके 'ॐ गौर्यै नमः' कहकर गन्धाक्षतादि से विधिवत् पूजन करे। यथा—

कुंकुमं कामदं दिव्य कामना-काम-सम्भवम्।
कुंकुमेनार्चिते देवि ! प्रसन्ना भव सर्वदा ॥३॥
हरिद्रानिर्मितं देवि ! सौभाग्यसुखसम्पदाम्।
अतस्त्वां पूजयिष्यामि गृहाण परमेश्वरि ! ॥४॥
अबीरं च गुलालं च चोवा चन्दनमेव च।
अबीरेणार्चिता देवि ! अतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥५॥
सिन्दूरं शोभनं रक्तं सौभाग्यं प्रियवर्द्धनम्।
सुखदं मोक्षदं चैव सिन्दूरं प्रतिगृह्यताम् ! ॥६॥
अक्षताश्च सुरश्रेष्ठे ! कुंकुमाक्ताः सुशोभिताः।
मया निवेदिता भक्त्या गृहाण परमेश्वरि ! ॥७॥
माल्यादीनि सुगन्धीनि मालत्यादीनि सौख्यदे।
मयाऽऽहृतानि पूजार्थं पुष्पाणि प्रतिगृह्यताम् ॥८॥
वनस्पतिरसोत्पन्नः सुगन्धाढ्यो मनोहरः।
आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥९॥
साज्यञ्च वर्तिसंयुक्तं वह्निना योजितं मया।
दीपं गृहाण देवेशि ! त्रैलोक्यतिमिरापहम् ॥१०॥
शर्कराखण्डखाद्यानि दधिक्षीरघृतानि च।
आहारं भक्ष्य-भोज्यञ्च नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ॥११॥

गंगाजलं समानीतं सुवर्णकलशोद्धृतम्।
आचम्यञ्चैव देवेशि ! प्रीत्यर्थं प्रतिगृह्यताम् ॥१२॥
इदं फलं मया देवि ! स्थापितं पुरतस्तव।
तेन मे सफलावाप्तिर्भवेत् जन्मनि-जन्मनि ॥१३॥
हिरण्यगर्भ-गर्भस्थं हेमबीजं विभावसोः।
अनन्तपुण्यफलदमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥१४॥

इसके बाद पुष्पाञ्जलि देकर प्रार्थना करनी चाहिए। तदन्तर नवग्रह पूजन तथा षोडशमातृका-पूजन करे।

## नवग्रह पूजन मन्त्र

ब्रह्मा मुरारिस्त्रिपुरान्तकारी भानुः शशी भूमिसुतो बुधश्च। गुरुश्च शुक्रः शनिराहुकेतवः सर्वे ग्रहाः शान्तिकरा भवन्तु ॥

### नवग्रह चक्र

| | | |
|---|---|---|
| बुध | शुक्र | चन्द्र |
| गुरु | सूर्य | भौम |
| केतु | शनि | राहू |

उपर्युक्त मंत्रों से 'सूर्यादि ग्रहेभ्यो नमः' कहकर नीचे के चक्रानुसार क्रमशः नवग्रहों की पंचोपचार पूजा तथा षोडश माताओं की भी पूजा करनी चाहिए।

## षोडशमातृका मन्त्रः

गौरी पद्मा शची मेधा सावित्री विजया जया।
देवसेना स्वधा स्वाहा मातरो लोकमातरः ॥
हृष्टिः पुष्टिः तथा तुष्टिरात्मनः कुलदेवता।
गणेशेनाधिका ह्येता यज्ञे पूज्याश्च षोडश ॥

### षोडशमातृका चक्र–गणेशजी

| | | | | | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० |
| गौ. | प. | श. | मे. | सा. | वि. | ज. | दे. | स्व. | स्वा. | मा. | लो. | ह. | पु. | तु. | कु. |

पूजा के बाद आचार्य आदि का वरण करके निम्नलिखित वैदिक या तांत्रिक मंत्रों द्वारा प्रधान कलश की स्थापना करे। उसी कलश पर विश्वकर्मा की मूर्ति* रखे।

## अथ प्रधान कलश स्थापनम्

शुद्ध भूमि अथवा वेदी पंचरंग से सुन्दर अष्टदल कमल बनाकर नीचे के मन्त्र से भूमि स्पर्श करें–

*सोने, चांदी, अष्टधातु, मृण्मयी मूर्ति पृथक् वेदी या चौकी पर रखनी चाहिए।

ॐ भूरिस भूमिरस्यदितिरसि व्विश्वधाया व्विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री। पृथिवीं यच्छ पृथिवीं दृꣳह पृथिवीं माहिꣳसीः ॥१॥ इति मन्त्रेण भूमि स्पर्शनं कृत्वा।

अष्टदल कमल के ऊपर सप्तधान्य रखे–

ॐ धान्यमसि धिनुहि देवान् प्राणायत्वोदानायत्वा व्यानायत्वा। दीर्घामनुप्रसितिमायुषे धां देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्णात्वच्छिद्रेण पाणिना चक्षुषे त्वा महीनाम्पयोऽसि ॥२॥

उसी पर सप्तधान्य बिखेर कर मिट्टी या तांबे का कलश स्थापित करे–

ॐ आजिघ्र कलशं मह्यात्वा विशन्त्विन्दवः। पुनरूर्जा निवर्तस्वसानः सहस्रं धुक्ष्वोरुधारा पयस्वतीः पुनर्मा विशतांद्रयिः ॥३॥

कलश में जल भरना–

ॐ व्वरुणस्योत्तम्भनमसि व्वरुणस्य स्कम्भ सर्जनीस्थो व्वरुणस्यऽऋत-सदनमसि वरुणस्यऽऋतसदनमासीद ॥४॥

कलश में गन्धाक्षत छोड़े–

ॐ त्वां गन्धर्वाऽअखनंस्त्वामिन्द्रस्त्वां बृहस्पतिस्त्वामौषधे सोमो राजा विद्वान्यक्ष्यादमुच्यत ॥५॥

सर्वौषधि डालना–

ॐ या औषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा। मुनै नु बभ्रणामहꣳ शतं धामानि सप्त च ॥६॥

दूर्वांकुर प्रक्षेपण–

ॐ काण्डात् काण्डात् प्रहारेन्ती परुषः परुषस्परि। एवानोदूर्वेप्रतनु-सहस्रेणशतेन च ॥७॥

पंचपल्लव डालने का मन्त्र–

ॐ अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता। गोभाजऽइत्किला सथयत्सनवथपुरुषम् ॥८॥

सप्तमृत्तिका डालना–

ॐ स्योना पृथिवीनो भवानृक्षरा निवेशनी। यच्छानः शर्म सप्रथाः ॥९॥

कलश में कुश (दर्भांकुर) छोड़े–

ॐ पवित्रेस्थो वैष्णव्यौ सवितुर्वः प्रसवऽउत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः। तस्य ते पवित्रपते पवित्रपूतस्य यत्कामः पुने तच्छकेयम् ॥१०॥

पूंगीफल (सुपाड़ी) डालना–

ॐ याः फलिनीर्या अफला अपुष्यायाश्च पुष्पिणीः। वृहस्पतिप्रसूतास्तानो मुञ्चन्त्वꣳ हसः ॥११॥

पंचरत्न अथवा द्रव्यदक्षिणा–

ॐ हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेकऽआसीत्। स दाधार

पृथिवीं द्यामुते मां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१२॥

धोती एवं चादर से कलश आच्छादन करना—

ॐ सुजातो ज्योतिषासहशर्मव्वरूथमासदत्स्वः। वासोऽअग्ने विश्वरूपथ्ठ संव्ययस्व विभावसो।

ॐ युवासुवासाः परिवीत आगात्सऽउश्रेयान् भवति जायमानः। तन्धीरासः कव्यऽउन्नयन्ति स्वाध्यो मनसा देवयन्तः ॥१३॥

चावल से भरा पूर्णपात्र स्थापित करे—

ॐ पूर्णादर्वि परापत सुपूर्णा पुनरापत। व्वस्नेव्विकीणावहाऽइषमूर्जथ्ठ शतक्रतो ॥१४॥

कलश के ऊपर नारिकेल फल तथा विश्वकर्मा की धातुमयी मूर्ति स्थापित करे—

ॐ श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरोत्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम। इष्णन्निषाणा मुम्मऽइषाण सर्वलोकम्मऽइषाण ॥१५॥

इसके बाद कलश में वरुण देवता का आह्वान करे—

ॐ तत्वायामि ब्रह्मणा व्वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः। अहेडमानोवरुणेहबोध्युरुशथ्ठ समानऽआयुः प्रमोषीः।

ॐ अपाम्पतये वरुणाय नमः।

तत्पश्चात् पुनः कलश में गंगादि नदियों का आह्वान करके प्रार्थना करनी चाहिए।

कलशस्य मुखे विष्णुः कण्ठे रुद्रः समाश्रितः। मूले तस्य स्थितो ब्रह्मा मध्ये मातृगणाः स्मृताः ॥१॥ कुक्षौ तु सागराः सप्त सप्तद्वीपा वसुन्धरा। पृथिव्यां यानि तीर्थानि कलशस्थानि तानि वै ॥२॥ गंगा गोदावरी कृष्णा गोमती सरयू यथा। नर्मदा यमुना ताप्ती गोमती च सरस्वती ॥३॥ ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः सामवेदो ह्यथर्वणः। अङ्गैश्च सहिताः सर्वे कलशं तु समाश्रिताः ॥४॥ अत्र गायत्री सावित्री शान्तिः पुष्टिकरी तथा। आयान्तु मम शान्त्यर्थं पापानां क्षयकारकाः ॥५॥

## कलश प्रार्थना

देव-दानव-सम्वादे मथ्यमाने महोदधौ। उत्पन्नोऽसि तदा कुम्भ ! विधृतो विष्णुना स्वयम् ॥६॥ त्वत्तोये सर्वतीर्थानि देवाः सर्वे त्वयि स्थिताः। त्वयि तिष्ठन्ति भूतानि त्वयि प्राणाः प्रतिष्ठिताः ॥७॥ शिवः स्वयं त्वमेवासि विष्णुस्त्वञ्च प्रजापतिः। आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवाः सपैतृकाः ॥८॥

## वरुण प्रार्थना

त्वयि तिष्ठन्ति सर्वेऽपि यतः कामफलप्रदः। त्वत्प्रसादादिमां पूजां कर्तुमीहे जलोद्भव !॥९॥ सान्निध्यं कुरु मे देव ! प्रसन्नो भव सर्वदा। विश्वकर्मार्चने यज्ञे कृपां कुरु विशेषतः ॥१०॥

नमो नमस्ते स्फटिकप्रमाय सुश्वेतहाराय सुमंगलाय।
सुपाशहस्ताय झषप्रियाय जलाधिनाथाय नमो नमस्ते ॥

## अथ विश्वकर्मणः प्राण-प्रतिष्ठा

| | | |
|---|---|---|
| द्रोण | प्राण | ध्रुव |
| विभावसु | विश्वकर्मा | अर्क |
| वास्तु | दोष | अग्नि |

विधिवत् कलश स्थापन के बाद विश्वकर्मा जी की धातुमयी, प्रस्तरमयी अथवा मृण्मयी मूर्ति में निम्नलिखित प्रकार से प्राण प्रतिष्ठा करनी चाहिए। साथ ही काष्ठपीठ अथवा वेदी पर विश्वकर्मा बनाकर पंचोपचार से पूजन भी करना चाहिए। इसके पूर्व अपनी शरीर शुद्धि के लिए षडङ्ग न्यास इस प्रकार करे—

ॐ वां हृदयाय नमः। ॐ वीं शिरसे स्वाहा। ॐ वूं शिखायै वषट्। ॐ वैं कवचाय हुम्। ॐ वौं नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ वः अस्त्राय फट् ॥ ॐ वां अंगुष्ठाभ्यां नमः। ॐ वीं तर्जनीभ्यां नमः। ॐ वूं मध्यमाभ्यां नमः। ॐ वैं अनामिकाभ्यां नमः। ॐ वौं कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ॐ वः करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्।

### तत्रादौ विनियोग :

अस्य श्रीप्राणप्रतिष्ठामंत्रस्य ब्रह्म-विष्णु-महेश्वरा ऋषयो ऋग्युजः सामाथर्वणः छन्दांसि चैतन्यरूपा अपरा प्राणशक्तिर्देवता आं बीजं ह्रीं शक्तिः क्रों कीलकम् श्रीविश्वकमदिवस्य प्राणप्रतिष्ठापने विनियोगः।

### करन्यासः

१. ॐ आं ह्रीं क्रों अं कं खं गं घं ङं क्रों ह्रीं आं पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशात्मने आं अंगुष्ठाभ्यां नमः।

२. ॐ आं व्रीं क्रों इं चं छं जं झं ञं क्रों ह्रीं आं शब्दस्पर्शरसगन्धात्मने ईं तर्जनीभ्यां नमः।

३. ॐ आं ह्रीं क्रों उं टं ठं डं ढं णं क्रों आं श्रोत्र-त्वक्चक्षुजिह्वा प्राणात्मन ऊँ मध्यमाभ्यां नमः।

४. ॐ आं ह्रीं क्रों एं तं थं दं धं नं क्रों ह्रीं आं वाक्पाणिपादापायूपस्थाने ऐं अनामिकाभ्यां नमः।

५. ॐ ह्रीं क्रों औं पं फं बं भं मं क्रों ह्रीं आं वचनादानगतिविसर्गानन्दात्मने औं कनिष्ठिकाभ्यां नमः।

६. ॐ आं ह्रीं क्रों [illegible] क्रों ह्रीं आं मनोहंकारचित्तविज्ञानात्मने अः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

## हृदयादिन्यासः

पूर्ववत् क्रमशः मन्त्रोच्चारण पूर्वक १. आं हृदयाय नमः। २. ईं शिरसे स्वाहा। ३. ऊं शिखायै वषट्। ४. ऐं कवचाय हुम्। ५. औं नेत्रत्रयाय वौषट्। ६. अः अस्त्राय फट्। इत्यादि मन्त्रों से हृदयादि न्यास करे। हाथ में अक्षत-पुष्प लेकर—

**ॐ आं ह्रीं क्रों अं यं रं लं वं शं षं सं हं क्षं अं अः क्रों ह्रीं आं श्रीविश्वकर्मादेवस्य इह प्राणा इह प्राणाः।**

**ॐ आं ह्रीं क्रों अं यं रं लं वं शं षं सं हं क्षं अं अः क्रों ह्रीं आं श्रीविश्वकर्मादेवस्य जीव इह स्थितः।**

**ॐ आं ह्रीं क्रों अं यं रं लं वं शं षं सं हं क्षं अः क्रों ह्रीं आं श्रीविश्वकर्मादेवस्य सर्वेन्द्रियाणि वाङ्-मनः-त्वक्-चक्षुः-श्रोत्र-जिह्वाघ्राणपाणिपादापायूपस्था इहैवागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा।**

इसके बाद अंजलि में पुष्प लेकर प्राणशक्ति का ध्यान इस प्रकार करे—

**रक्ताम्भोधिस्थपोतोल्लसदरुण सरोजाधिरूढाकराब्जैः, पाशंकोदण्ड-मिक्षुद्भवगुणमणिमय्यंकुशं पञ्चबाणान्। बिभ्राणस्रक्कपालं त्रिनयनलसितापी-नवक्षोरुहाढ्यां, देबीबालार्कवर्णभवतु सुखकरी प्राणांशक्तिः परान्नः।**

अंजलि का पुष्प चढ़ाकर अक्षत से पुनः विश्वकर्मा जी को प्रतिष्ठापन करे।

**ॐ मनोजूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमन्तनोत्वरिष्ट यज्ञ१ँ समिमं दधातु। विश्वेदेवा स इह मादयन्तामो३ प्रतिष्ठ॥ अस्यै प्राणाः प्रतिष्ठन्तु अस्यैं प्राणाः क्षरन्तु च। अस्यै देवत्वमर्चायै मामहेति च कश्चन स्वाहा। अस्मिन् कलशे (वेद्यां वा) श्रीविश्वकर्मन् ! सुप्रतिष्ठितो वरदो भव।**

इस प्रकार प्राण प्रतिष्ठा करके पुनः ध्यान करना चाहिए यथा—

**ॐ दंशपाल महावीर ! सुचित्रकर्मकारक।**
**विश्वकृत् विश्वधृक् च त्वं वसना मानदण्डधृक्।**
**भो विश्वकर्मन् ! इहागच्छ इह तिष्ठ,**
**अत्राधिष्ठानं कुरु कुरु मम पूजा गृहाण।**

हे विश्वकर्मा जी ! यहां आइए, इस सुन्दर मूर्ति में विराजिए और कृपया मेरी अर्चना (पूजा) स्वीकार कीजिए। अब मैं आपका यहां प्रार्थना पूर्वक षोडशोपचार से पूजन करता हूं।

**देवशिल्पिन् महाभाग देवानां कार्यसाधक !**
**विश्वकर्मन् ! नमस्तुभ्यं सर्वाभीष्टप्रदायक !॥**

उपर्युक्त विधि से विश्वकर्मा जी का प्राण प्रतिष्ठा पूर्वक ध्यान करके निम्नलिखित षोडशोपचार से उनकी पूजा करनी चाहिए।

**आवाहन—आवाहयामि देवेशं विश्वकर्माणमीश्वरम्।**
**मूर्ताड मूर्तकरं देवं सर्वकर्त्तारमद्भुतम्॥**

त्रैलोक्य-सूत्रकर्त्तारं द्विभुजं विश्वदर्शितम्।
आगच्छ विश्वकर्मस्त्वं यज्ञेऽस्मिन् सन्निधो भव॥

*प्रार्थना*—नमामि विश्वकर्माणं द्विभुजं विश्ववन्दितम्।
गृहवास्तु-विधातारं महाबलपराक्रमम्॥
प्रसीद विश्वकर्मस्त्वं शिल्पविद्याविशारद।
दण्डपाणे ! नमस्तुभ्यं तेजोमूर्तिधर प्रभो॥

*आसन*—सुवर्णरचित देव ! दिव्यास्तरणशोभितम्।
आसनं हि मया दत्त गृहाणाङ्गिरसो-सुत॥

*पादार्घ्य*—इदं पाद्य मया दत्त सर्वसौगन्धसंयुतम्।
गृहीत्वा विश्वकर्मेश प्रसन्नो भव वास्तुज॥
दिव्यौषधिरसोपेत गन्ध-पुष्पाऽक्षतैः सह।
गृहाणाऽर्घ्यं मया दत्त विश्वकर्मन् कृपां कुरु॥

*आचमन*—सुगन्धवासितं दिव्यं निर्मलं सलिल विभो।
गृहाणाऽऽचमनं सौम्य ! विश्वकर्मन् कृपां कुरु॥

*मधुपर्क*—नमो देवाय भद्राय गृहनिर्माणशालिने !।
मधुपर्कं गृहाणेदं विश्वकर्मन् सुधोपमम्॥

पंचामृत से स्नान कराकर विशुद्ध जल से स्नान करावे—

पञ्चामृतं मया नीतं पयो दधि घृतं मधु।
शुद्धं शर्करया युक्तं विश्वकर्मन् ! प्रगृह्यताम्॥
गंगाजलं समानीतं सर्वपापहरं शुभम्।
पूतं पयोऽथवा दिव्यं स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम्॥

*वस्त्र यज्ञोपवीत*—स्वदेशनिर्मितं वस्त्रं नूतनं पावनं परम्।
शरीराच्छादनार्थाय गृह्यतां सूत्रवर्द्धन॥
नवभिस्तन्तुभिर्युक्तं त्रिगुणं देवतामयम्।
उपवीतं मया दत्तं गृह्यतां धर्मनन्दन॥

*भूषण चंदन*—शिरस्कं कुण्डलं हारं सोत्तरीयं तथैव च।
अलंकारं प्रगृह्याऽत्र विश्वकर्मन् ! प्रसीद वै॥
श्रीखण्डं चन्दनं दिव्यं गन्धढ्यं सुमनोहरम्।
विलेपनं सुरश्रेष्ठ ! गृह्यतां चन्दनं शुभम्॥

*अक्षत*—अक्षताश्च कलानाथ ! कुंकुमाक्ताः सुशोभिताः
मया निवेदिता भक्त्या गृहाण वास्तुनन्दन॥

*पुष्प*— मल्लिकादि सुगन्धीनि मालत्यादीनि वै प्रभो।
मयाहृतानि पूजार्थं पुष्पाणि प्रतिगृह्यताम्॥
सौरभाणि सुमाल्यानि सुपुष्प-रचितानि वै।
मया निवेदितान्यत्र शिल्पाचार्य ! सुगृह्यताम्॥

तुलसीदल या बिल्वपत्र चढ़ाने का मन्त्र

कोमलानि सुगन्धीनि मंजरी संयुतानि च।
तुलस्याः सदलान्यद्य विश्वकर्मन् ! प्रगृह्यताम् ॥
त्रिदलैर्बिल्वपत्रैश्च कोमलैः शङ्करप्रियैः।
तव पूजां करिष्यामि प्रसीद शिल्पिनांवर !॥

*धूप*—वनस्पति-रसोद्भूतं सुगन्धाढ्यं मनोहरम्।
धूपं गृहाण कर्मेश ! द्रुतकर्म-परायण !॥

*दीपक*—घृतवर्त्ति-समायुक्तं कर्पूरादि-समन्वितम्।
दीपं गृहाण देवेश ! ह्यन्धकार-विनाशनम् ॥

*नैवेद्य*—पूप-मोदक-संयाव-पयः पक्वादिकं वरम्।
निर्मितं बहुसत्कारैर्नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ॥

*आचमन*—शीतलं स्वादुः गांगेयं तृषा-तृप्तिकरं जलम्।
सर्वदेव म्वतृप्त्यर्थं विश्वकर्मन् ! प्रगृह्यताम् ॥
सर्वौषधिरसोपेतं पवित्रं सरिता-जलम्।
आचम्यं च मया दत्तं गृहाण देवताप्रिय ॥

*फल*—इदं फलं मया देव ! स्थापितं पुरतस्तद।
तेन मे सफलावाप्तिर्भवेज्जन्मनि जन्मनि ॥

*ताम्बूल*—ताम्बूलं पूंगसंयुक्तं चूर्णं खादिर-संयुतम्।
लवंगादियुतं देव ! गृह्यतां ब्रह्म-वंशज ॥

*दक्षिणा*—हिरण्यगर्भ-गर्भस्थं हेमबीजं विभावसोः।
अनन्तपुण्यफलदमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥

एवं विधिवत् विश्वकर्मा जी के पूजन के पश्चात् यन्त्र, निहाय एवं विविध प्रकार के औजारों की पूजा करके अग्नि-स्थापन के साथ विधिवत् हवन यज्ञ करे। तत्पश्चात् आचार्यादि विद्वान् ब्राह्मणों को भोजन कराकर यथा शक्ति दान, दक्षिणा देवे। अन्त में विश्वकर्मा भगवान की आरती करके देवताओं का विसर्जन करे तथा प्रसाद वितरण करे।

## हवन मन्त्र

विसर्जन करने से पहले अग्नि का विधिवत् पूजन करके निम्नलिखित मन्त्र से घृत द्वारा हवन करे।

**ॐ प्रजापतये स्वाहा, इदं प्रजापतये न मम।**
**ॐ इन्द्राय स्वाहा, इदं इन्द्राय न मम।**
**ॐ अग्नये स्वाहा, इदमग्नये न मम।**
**ॐ सोमाय स्वाहा, इदं सोमाय न मम।**
**ॐ भूः स्वाहा, इदमग्नये न मम।**
**ॐ भुवः स्वाहा, इदं वायवे न मम।**

ॐ स्वः स्वाहा, इदं सूर्याय न मम।
एताः सप्त महाव्याहृतयः (घृताहुतिः)।

इसके बाद खीर या शाकल्य द्रव्य से मूल मन्त्र द्वारा कम से कम एक माला हवन करे।

मूल मन्त्र यथा—(१०८ बार)

**ॐ विश्वकर्मणे नमः स्वाहा।**

उसके बाद नवग्रह, इष्टदेव आदि का हवन इस प्रकार करे।

**ॐ सूर्याय नमः स्वाहा, चन्द्रमसे नमः स्वाहा, भौमाय नमः स्वाहा, बुधाय नमः स्वाहा, गुरवे नमः स्वाहा, शुक्राय नमः स्वाहा, शनैश्चराय नमः स्वाहा, राहवे नमः स्वाहा, केतवे नमः स्वाहा, पञ्चलोकपालेभ्यो नमः स्वाहा, दशदिक्पालेभ्यो नमः स्वाहा, इष्टदेवेभ्यो नमः स्वाहा, कुलदेवेभ्यो नमः स्वाहा, ग्रामदेवेभ्यो नमः स्वाहा, सर्वेभ्यो देवेभ्यो नमः स्वाहा, सर्वाभ्यो देवीभ्यो नमः स्वाहा।**

**पूर्णाहुति—ॐ मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरऽमृत अजातमग्निम्। कविंश्च सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः स्वाहा।**

**भस्म—ॐ त्र्यायुषम् जमदग्नेः—इति ललाटे, कश्यपस्य त्र्यायुषम् इति ग्रीवायाम्। यद्देवेषु त्र्यायुषम्—इति दक्षिणबाहुमूले। तन्नोऽअस्तु त्र्यायुषम्-इति हृदये।**

इसके बाद होता, पुरोहित एवं आचार्य को दक्षिणा देकर विसर्जन करे।

*आरती*— **कर्पूरवर्तिसंयुक्तं गोघृतेन सुपूरितम्।
नीराजनं गृहाणेदं कृपया सौख्यवर्द्धन !॥
नानासुगन्धिपुष्पाणि यथाकालोद्भवानि च।
पुष्पाञ्जलिस्वरूपणि गृह्यतां वास्तुनन्दन !॥**

**प्रदक्षिणा—यानि कानि च पापानि जन्मान्तरकृतानि च।
तानि सर्वाणि नश्यन्तु प्रदक्षिण पदे-पदे॥**

अन्त में इस मन्त्र से विसर्जन करे—

**समस्तैरुपचारैश्च याऽअर्चनाऽत्र मया कृता।
सा सर्वा पूर्णतां यातु ह्यपराधं क्षमस्व मे॥
आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्जनम्।
पूजां चैव न जानामि तव गतिर्दीनवत्सल !॥
देवशिल्पिन्महाभाग ! देवानां कार्यसाधक।
विश्वकर्मन् नमस्तुभ्यं सदा शान्तिं प्रयच्छ मे॥
यान्तु देवगणाः सर्वे पूजामादाय मामकीम्।
कामनाऽभीष्ट-सिद्ध्यर्थं पुनरागमनाय च॥**

॥ इति विश्वकर्मा पूजन पद्धतिः समाप्त ॥

# विश्वकर्मा कवच

श्रीमत्परात्पर विश्वकर्मपर ब्रह्मणेनमः ॥ अथ श्री विश्वकर्मा कवच प्रारम्भः ॥ अस्य श्री विश्वकर्म परब्रह्म कवचस्तोत्र चतुर्विंशत्य क्षरमूलमहामंत्रस्यानुग्रहार्थं परब्रह्मऋषिः ॥ गायत्रीछंदः ॥ सदा शिवो देवता ॥ ॐ अंबीत्रम् ॥ विश्वकर्म ब्रह्मशक्तिः ॥ प्रपंचाक्षरंकीलकम् ॥ श्रीमद्विश्व कर्मपरब्रह्म मूलमंत्र जपे विनियोगः ॥ ॐ अंगुष्ठाभ्यां नमः ॥ ॐ क्लीं तर्जनीभ्याम नमः ॥ ॐ ह्रीं मध्यमाभ्यां नमः ॥ ॐ अं अनामिकाभ्यां नमः ॥ ॐ क्लीं कनिष्ठिकाभ्यां नमः ॥ ॐ ही करतलकर पृष्ठाभ्यां नमः ॥ एवं हृदयादिषडंगन्यासः ॥ ॐ अं सद्यो जात मुखोद्भवायमनु विश्वब्रह्म सान मात्यने हृदयाय नमः ॥ ॐ क्लीं वामदेव मुखोद्भवायमय विश्व ब्रह्म सनातनात्मनेः शिरसे स्वाहा ॥ ॐ ह्रीं अघोरमुखजन्मनेत्वष्ट्र विश्वब्रह्माहमूनात्मने शिरषा यैवषट् ॥ ॐ क्लीं तत्पुरुषमुख जन्मनेशिल्पि विश्वब्रह्म प्रत्नात्मनेकवचायहुं ॥ ॐ ह्रीं ईशानमुख जन्मने अर्क विश्वब्रह्मसपूर्णात्मिने नेत्रत्रयायवौषट् ॥ ॐ अं कश्यप विश्वकर्म विराटस्वरूपमित्यस्राय फट् ॥ भूर्भुवः स्वरोमितिदिग्बंधः ॥ अथध्यानम् ॥ सहस्त्रवदनोद्वाहुः सहस्त्राक्षः सहस्त्रपात् ॥ आदिपुरुष ईशान आदिब्रह्मकुलोद्भव ॥१॥ विश्वकर्मा सदाध्येयोनील मेघो परिस्थितः ॥ सर्वाभरणसंयुक्तो रत्नसिंह सनस्थितः ॥ इति ध्यात्वा ॥ मानसोपचार संपूजयेत ॥ तच्चेयम् ॥ लं पृथ्वीतत्वात्मेनगंधतन्मात्रप्रकृत्यानंदात्मने श्री गुरु विश्व कर्म पर ब्रह्मणेनमः ॥ गंधसमर्पयामि ॥ हं आकाशतत्वात्मने शब्द तन्मात्रप्रकृत्यानंदात्मने श्री गुरु विश्वकर्म परब्रह्मणे नमः ॥ दीपंदर्शयामि ॥ वं आपतत्वात्मनेरस तन्मात्रप्रत्यानंदात्मने श्री गुरु विश्वकर्म परब्रह्मणे नमः ॥ अमृतनैद्यं समर्पयामि सं सर्वततत्वात्मने सर्वतत्वात्मने प्रकृत्यानंदात्मने श्री गुरु विश्वकर्म परब्रह्मणे नमः ॥ मर्वोपवाशन् समर्पयामि ॥ अथमूल मंत्रः ॥ ॐ ॐ क्लीं ह्रीं विश्वकर्म ब्रह्मोविशक्तिः ॥ सर्वकार्यमेव शंकुस हुं फट् स्वाहा ॥ वैदलक्षपुरश्चरणनासिद्धिः ॥ ४००००० उतरन्यासः ॥ ॐ अं सद्योजात मुखोद्भवायमनु विश्वब्रह्मसानगात्मने हृदयाय नमः। ॐ क्लीं वामदेवमुखोद्भवायमय विश्वब्रह्म सनात्मने शिरसे स्वाहा ॥ ॐ ह्रीं अघोरमुख जन्मनेत्वष्ट्र विश्वब्रह्माहभूतात्मने शिखायैवौषट् ॥ ॐ अं तत्पुरुष मुख जन्मने शिल्पि विश्वब्रह्मप्रत्नात्मनेकवचायहुं ॥ ॐ ईशान्मुख जन्मने अर्कब्रह्म सुपर्णात्मने नेत्रत्रयायवौषट् ॥ ॐ अं कश्यप विश्वकर्म विराट् स्वरूपमित्यस्रायफट् ॥ भूर्भुवः स्वरोमिविदिग्बंधः। अथ ध्यानम् ॥ सहस्त्रवद नोद्वाहुः सहस्त्राक्षः सहस्त्र पात् ॥ आदिपुरुष ईषानआदि ब्रह्मकुलोद्भवः ॥१॥ यस्यस्मृत्या चनामोक्त्याजप-पूजादिकर्मसु ॥ न्यूनसंपूर्णतांयाति नमस्तद्विश्व कर्मणे ॥२॥ ब्रह्मोवाच ॥ देवदेव महादेव भक्तानुग्रह कारक ॥ सुचितैकमनो ब्रह्मकवचंकथयस्वमे ॥३॥ ईश्वर

उवाच ॥ अपातः संप्रवक्ष्यामिकवचदेव दुर्लभम् ॥ अप्रकाशपरं गुह्यं सर्वाभिष्टस्य सिद्धिदम् ॥४॥ विश्वकर्माख्यकवचं श्रृणुष्वचतुरानन ॥ अस्यकवचस्य संप्रोक्ता ऋषयः सानगादयः ॥५॥ अनुष्टुप छंद सश्चैवपर ब्रह्मादि दैवतम् ॥ धर्मज्ञानार्थसिध्यर्थं विनियोगः प्रकीर्तितः ॥६॥ अस्य श्री विश्दकर्म परब्रह्मकवचस्तोत्रमंत्रस्य सानगादि पंच ऋषयः ॥ अनुष्टुप छंदः ॥ विश्वकर्मपरब्रह्मदेवता ॥ अं बीजम् ॥ क्लीं शक्तिः ॥ ह्रीं कीलकं ॥ ममधर्मज्ञानार्थसिद्ध्यर्थं विश्वकर्मपरब्रह्म प्रसाद सिद्ध्यर्थं कवचस्त्रोतपारायणेविनियोगः ॥ मूलेन पूर्ववन्न्यासंकृत्वा ॥ ध्यानं ॥ पंचकत्रंदशभुत्रं त्रिनेत्रं दंड धारिणम् ॥ ध्यात्वाश्री विश्वकर्माणां वारिवाहो परिस्थितिम् ॥१॥ मानसै रेवसंपूज्यहयु पचारैद्वष्टाभिः ॥ शुचिः ततः पठेद्दिव्यं कवचं विश्वकर्मणः ॥२॥ विश्वकर्माशिरः पातु ललाटंपातु मेमनुः ॥ कालदेशंमयः पातुत्वष्टानेत्रयुगंतथा ॥३॥ शिल्पी गंडद्वयंपातु दैवज्ञः पातुवोष्टकौ ॥ अं बीजं वदनंपातः क्लीं बीजं कंठदेशकं ॥४॥ ह्रीं बीजं हृदयंपातु चोदरंपातुमहीश्वरः ब्रह्मातुनाभिदेशंव मध्यंपातुमनोभवः ॥५॥ कटथ्सौज्ञपतिः पातु पातुचोरुमहेश्वरः ॥ जानुदेशेपर ब्रह्मानंधे पातु विराट् प्रभुः ॥६॥ पदौददेनो सदापातु सर्वांग विश्वकर्मकः ॥ सद्योजात पूर्वदिशिवामदेवंतु दक्षिणे ॥७॥ अघोरंपश्चिमेपातु तत्पुरुषंचोत्तरे तथा ॥ ईशानंपातुचोर्ध्वाया धः पातुमहीश्वरः ॥८॥ आनेय्यांपातुचेशा नोनैऋत्ये गिरिजापतिः ॥ वायव्येपातुमांधावाचेशान्येपातु विश्वभुक् ॥९॥ प्रथिव्यांसानगः पातु जले पातु सनातनः ॥ आकाशे चाहभूनो मांपातु प्रलस्क्वसर्वतः ॥१०॥ सुपर्णः सर्वदा पातुसर्वसंकटनाशनः ॥ य इदंब्रह्मकवचं त्रैलोक्येचापिदुर्लभम् ॥११॥ शुचिर्मूत्वपठे नित्यंकवचं पापनाशनम् ॥ भूतप्रेतापिशाचादि कूष्मांड ब्रह्मराक्षसाः ॥१२॥ दिवाचरात्रिचरामहाभूतगणाः खगाः ॥ सुकृदुच्चारणादेव नाशंयातिनसंशयः ॥१३॥ महादरिद्रयुक्तोवायुक्तोवा सर्वपातकैः ॥ मुच्यते सर्वपापेक्यः श्रीमान् सर्वसुखीभवेत् ॥१४॥ गच्छेद् ब्रह्ममयं देहाविश्वकर्म मुजोदूतय ॥ विश्वकर्मा व्यकवचं यः पठोसततंनरः ॥१५॥ अन्नपानसदासष्टिर्धनधान्यादि जायते ॥ अनेन सहशोमंत्रोनभूतो न भविष्यति ॥१६॥ जलं पिवेदुषः काले कवचे नाभिमंगितम् ॥ बाल ग्रहामहारोगा नाशमायातितत्क्षसात् ॥१७॥ संततिः कनंकचायुरारोग्यैश्वय-मंगलम् ॥ कवचं यः पठेतस्य वर्द्धते शुक्ल चंद्रवत् ॥१८॥ गुरुभक्ता यदातव्यंना भक्तायकदाचनः ॥ गुह्याद्गुत्यतरंग गुह्यं गुणेरात्मद्रदर्शनम् ॥१९॥ इतिकवचं पठित्वा ॥ पुनः लं पृथ्वी तत्वामन इत्यादिपि गंधादि सर्वोपचारान् मनसासमर्षयामीत्युतत त्वा प्रार्थयेत ॥ यस्यस्मृत्या चना भोक्त्याजप पूजादि कर्मसु ॥ न्यूनं संपूर्ण तोपातिनमस्त हिश्व कर्मणो ॥२०॥ इति श्री विश्व सारोद्धारतन्त्रे शिव ब्रह्मसंवादे विश्वकर्मपरब्रह्म कवचस्तोत्रं संपूर्णामस्तु ॐ तस्साद्विश्वकर्म पर ब्रह्मार्पणामस्तु ॥ शिवमस्तु ॥ श्री गणेशायनमः ॥ अथ श्री विश्वकर्म नामाष्टोत्तरशतक प्रारम्भः ॥ अस्य श्री विश्व कर्मनामाष्टोत्तर शतक

स्तोत्र मंत्रस्य ब्रह्मा ऋषि ॥ श्री विश्वकर्मा देवता ॥ अनुष्टुपछंदः ॥ सर्वाभीष्ट सिद्ध्यर्थ श्री विश्वकर्मप्रीत्यर्थ जपे विनियोगः ॥ अथध्यानम् ॥ पंचाननो दशभुजा घृतवद दीक्षः केयूरहारमणिकुंडलचंडतेजाः ॥१॥ भस्मांकितोमणि नयासन संस्थितोऽसो सर्वेश्वरोवसतुमेहृदिविश्वकर्मा ॥२॥ विश्वकर्मामनुसतवष्टास्थाष्ठि स्थविरोध्रुवः ॥ विष्णर्वेश्वनरो योगी शिल्पाचार्यः क्रियपरः ॥ अमयी निर्भयः शांतः सत्यव्यामः सतां प्रियः ॥ लोकाध्यक्षः लुराध्यक्षो वरदोऽमयदोवरः ॥३॥ मयोमन्द्रर्महातेजाः शिव योगी हरिप्रियः ॥ लोकाध्यक्षः लुराध्यक्षो वरदोऽमयदोवरः ॥३॥ मयोमन्द्रर्महातेजाः शिव योगी हरिप्रियः ॥ कायदः शयदः कांतः कुलीन कौशल प्रदः ॥४॥ दातासत्यः स्वराद्विमङ्गेगृहस्थाश्रमिणोमतिः ॥ वनवासी महामायो रूपाध्यक्षोह्य चिंतितः ॥५॥ स्थापनः शाग्र सोचिंत्यः कौशलः कर्मठोनरः ॥ जटीमुंडी शिखीदेवः संवृत्तांगः पिशाचराट् ॥६॥ शास्त्रविधिर्विधिकरोलोकेशः पावनः परः ॥ हरोबुद्धि प्रदोऽनंतः सत्यसंकल्पईश्वरः ॥७॥ सत्यकामः सत्यरूचिः सत्यार्थः शंभवः शिवः ॥ नादप्रियोबोधकर्ता करणा श्री रायुधप्रियः ॥८॥ घना खड्गी ध्वजीवर्मीशूली चक्रीकपालभृत ॥ अजरो प्रणवोव्यक्तोव्यक्तः कृष्णोयजुर्डविः ॥९॥ यज्ञई ज्योमहान्स्पष्टः सोयी सम्राड्भवोभवः ॥ नाथ शिल्पीकविः शूरोमुनिर्मौनी दिगम्बर ॥१०॥ सर्वायुधिः सर्वसहः सर्वकृतशंकर प्रभुः ॥ इत्याष्ट शतसंख्या भिनामभिः संस्तुतो मयः ॥११॥ इत्यष्टशतनामेदं यः पठेन्नित्यशोनरः ॥ सोर्थी यशः समाप्नोतिश्रेयः सकलसंपदः ॥

# विश्वकर्मा पुराण प्रारम्भ

श्री गणेशाय नमः। श्री सरस्वत्यै नमः। श्री विश्वकर्मणो नमः। श्री गणपति प्रभु गणेशजी को मेरा नमस्कार। मां भगवती सरस्वती के चरणों में मेरा नमस्कार। प्रभु भगवान श्री विश्वकर्मा जी को मेरा शत-शत नमस्कार।

भगवान शंकर व मा पार्वती के पुत्र गणपति जो गजराज समान जिनका वर्ण सिन्दूर के समान, जिनके स्मरण करने से अनेक संकटों का नाश हो जाता है जिस प्रकार सूर्य की किरणों से अंधकार स्वयं ही मिट जाता है वैसे ही सभी विघ्न उनकी आराधना से ही नष्ट हो जाते हैं। अपने प्रियवाहन मूषक पर विराजमान गणपति भगवान हमारा सदा कल्याण करें।

जिनकी उज्ज्वलता के समक्ष चन्द्रमा का प्रकाश भी फीका पड़ जाता है, जो अपने हाथों में वीणा, पुष्प एवं ज्ञानयुक्त पुस्तक धारण किए हुए हैं। जिनका वाहन मोर है वह मां भगवती सरस्वती जिनके माध्यम से देवर्षि ब्रह्मा ने वेदों को उत्पन्न

किया है, जिनकी छत्रछाया में रहकर ज्ञानी, ऋषि, परब्रह्म परमात्मा के गुणों का गान करते हैं ऐसी विद्या एवं ज्ञान की देवी मां सरस्वती को मेरा बारम्बार प्रणाम स्वीकार हो।

वट का वृक्ष जिनका सिंहासन है, जिनके पांच मुख हैं, जिनके प्रत्येक शीश पर अनेक अनुभाग हीरे रत्न जड़ित मुकुट है, जिन्होंने अनमोल दिव्य वस्त्रालंकार तथा विशाल आयुध धारण किया हुआ है। ऐसे दिव्य विशाल सौष्ठव शरीर जिस पर यज्ञोपवीत (जनेऊ) सुशोभित है वह विश्व के रचयिता, विश्व के पालनहार, देवों के रक्षक, विश्व को प्रकट एवं विलीन करने वाले प्रभु श्री विश्वकर्मा को मेरा नमस्कार। हमारा कल्याण करें ऐसी कामना हम अपने हृदय में उनके प्रति रखते हैं।

जगत नारायण श्री विष्णु जी कहते हैं—

हे ऋषि वात्स्यायन जो अपने आप स्वयं ज्ञान के भण्डार हैं जो धर्म अर्थ काम और मोक्ष की सिद्धि देने वाले चार पुरुषार्थ लिए हुए हैं ऐसे इष्टदेव विश्वकर्मा को ध्यान में रखकर रचित उत्तम पुराण का एकाग्र चित्त से श्रवण करो। पवित्र धरती पर बसा भारत में पुण्यदायक तथा दंडकारस्ताय नायक वन के विषय में ऋषिवर शौनक जी एवं अन्य मुनिगण ने मिलकर एक विशाल यज्ञ किया। इस यज्ञ का समय १००० वर्ष तक का था। उसमें पुराणों की जिज्ञासा लिए हुए परम कृपालु परमेश्वर के चरणों में अपना ध्यान केन्द्रित करने वाले यज्ञ नारायण स्वरूप में उस विशाल यज्ञ में विराजमान प्रभु के दर्शन हेतु वह पहुंच गए।

जिनके दर्शनमात्र से ही हृदय पवित्र हो जाता है जिनके मुखार विन्द से प्रभु की भक्ति का कथा रूपी झरना बहता रहता है ऐसे प्रभु सूतजी को वहां उपस्थित देखकर सभी ऋषिगण ने प्रसन्न चित्त अपने आसन से उठकर नतमस्तक होकर उन्हें प्रणाम किया और उन्हें यज्ञ मंडप की ओर ले चले।

सभी ऋषि-मुनियों ने सूतजी का अत्यन्त आदरपूर्वक सत्कार किया व अनुपम सिंहासन पर बिठाया। उनका अर्घ्य आदि से पूजन किया फलाहार भेंट किये। सभी मुनिवर भी प्रभु सूतजी के समक्ष बैठ गए।

ऋषियों को लगा मानो उनके समक्ष हिम रूपी गंगा स्वयं सूतजी के रूप में उतर आई है जो प्रभु की लीला व उनके गुणों को जानते हैं। फिर उन्होंने श्री सूतजी को सम्मानवर्धक कहा—

हे प्रभु सूतजी ! हे मधुरवाणी से युक्त ! आप तो स्वयं ही धर्म के ज्ञानी हो, वेद व पुराण सदैव आपकी जिह्वा पर स्थिर रहते हैं। आपने अनेकों बार हमें प्रभु नारायण, ब्रह्मर्षि और शिव की लीलाओं से आनन्दित किया है। आपको तो प्रभु का सान्निध्य प्राप्त हुआ है। हमें आज फिर अपनी अमृतवाणी से विश्वकर्मा जी के जीवनचक्र और उनकी सम्पूर्ण लीलाओं का ज्ञान कराओ।

शौनकादि अन्य ऋषियों की इस प्रकार की वंदना सुनकर श्री सूतजी नेत्र बंद

करके अपने हृदय में प्रभु के दर्शन करने लगे। उनके नेत्रों से हर्ष के आंसुओं की गंगा बहने लगी और अपनी गम्भीर वाणी से प्रभु के गुणों का व्याख्यान करने लगे। स्वयं भी प्रभु भक्ति में लीन होकर सभी को भक्ति के रस का पान कराने लगे।

# उपासना का उपदेश

ईश्वर ने कहा—हे मुनि ! प्रभु विश्वकर्मा के उज्ज्वल चरित्रों को सुनने की जिज्ञासा कल्याण की कामना करने वाले मनुष्यों में होना स्वाभाविक ही है। प्रभु विश्वकर्मा अनन्त गुणों से सम्पन्न हैं तथा वे सभी इच्छाएं पूरी करने वाले हैं। उनके भक्त सभी प्रकार के फलों को सहज में ही प्राप्त कर लेते हैं।

ऋषि वात्स्यायन ने फिर प्रश्न किया—हे देव ! प्रभु श्री विश्वकर्मा की उपासना किस-किस कामना से की और क्या-क्या फल प्राप्त किए। यह सब सुनने की इच्छा हो रही है। कृपा करके इस सब का ज्ञान दीजिए।

देव बोले—हे ऋषि ! प्रभु विश्वकर्मा की उपासना सभी देवताओं ने की है और वे सभी अपना फल प्राप्त करते रहे हैं। ब्रह्माजी जब सृष्टि रचना में लीन होते हैं, तब उन्हें लोक निर्माण के लिए विश्वकर्मा भगवान का ही सहारा लेना पड़ता है। मैं भी जब नारायण रूप से विश्व के पालन-कर्म में लगा रहता हूं तब विश्वकर्मा का सहयोग लेना पड़ता है। पृथ्वी के समस्त जीव-जन्तु, प्रकृति ठीक रहें। इसमें विश्वकर्मा का प्रभाव ही कार्य करता है।

मुनिश्रेष्ठ ! भगवान शिव को भी विश्वकर्मा का सहयोग आवश्यक होता है। शिवजी जब महारुद्र होकर संसार में प्रलय करते हैं, तब उन्हें विश्वकर्मा को इसके लिए शांत करना होता है कि अब महाप्रलय का होना आवश्यक है। जब विश्वकर्मा इससे राजी होते हैं, तभी विश्व समुद्र में विलीन हो पाता है।

देवराज इन्द्र विश्वकर्मा की सहायता से ही वर्षा करते हैं। वायु में गति, अग्नि में ज्वलन शक्ति और जल में निरन्तर गति की प्राप्ति भी विश्वकर्मा के प्रभाव के बिना नहीं होती। सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी आदि की गतिशीलता, प्रकाश आदि के कारण भी विश्वकर्मा हैं। यमराज को भी अपने न्याय के लिए उन्हीं की सलाह की आवश्यकता है। समय का निरन्तर गतिशील रहना भी विश्वकर्मा के प्रभाव पर ही निर्भर है। विश्वकर्मा को योग्य व आदर्श पुरुष भी माना गया है।

ऋषि ! यह कथा जगत् सत्य है कि इन्द्र ने वृत्रासुर का वध किया। वृत्रासुर के मरते ही पृथ्वी जल मुक्त होकर बहने लगे। इसमें भी भगवान् विश्वकर्मा का अद्भुत प्रभाव कार्य कर रहा था। ऐसा ऋग्वेद (३।३।३८) में स्पष्ट है—

अभितष्टेव दीधया मनीषामत्यो,
न वाजी सुधुरो जिहानः।
अभि प्रियाणिममृशत्पराणि कवीं,
रिच्छामि सन्दृशे सुमेधाः॥

हे श्रोतागण जैसे भी सम्भव हो विश्वकर्मा की अर्चना करते हो, वैसे ही उनके सहयोगी इन्द्र की भी अर्चना करो। क्योंकि वे अश्व के समान वेगवान् सदैव कर्म में लीन रहते हैं। उनके दर्शन की हम अभिलाषा करते हैं। हे ऋषिवर ! इस ऋषिवर से यह ज्ञात होता है कि प्रभु विश्वकर्मा की अर्चना सभी करते हैं। क्योंकि सभी के कर्मों को सफलतापूर्वक सम्पन्न कराने में उनकी कृपा अति आवश्यक है। इसलिए प्रभु विश्वकर्मा का एक नाम 'कृलु' भी है, जिसका अर्थ है—भले प्रकार कार्य सिद्ध करने वाला, योग्य, निपुण, चतुर आदि।

ऋषि ने भगवान् नारायण से पूछा—प्रभु ! आपने प्रभु विश्वकर्मा के दो नाम और बताये "त्वष्टा और कृलु" तब तो इनके अन्य नाम भी होंगे ? कृपया ऐसा हो तो उन्हें भी बतलाने की कृपा कीजिए। नारायण बोले—प्रभु विश्वकर्मा के अनन्त नाम हैं, उनमें एक सौ आठ नाम मुख्य हैं, उन्हें तुम्हारे समक्ष कहता हूं।

# विश्वकर्मा का नाम संग्रह

भगवान बोले—हे वात्स्यायन ! मैं तुम्हें भगवान् विश्वकर्मा के उन एक सौ आठ नामों के विषय बताऊंगा। इन नामों के उच्चारण मात्र से ही मर्त्य भोग और मोक्ष दोनों की प्राप्ति में सफल होते हैं। तुम इन नामों को सावधान चित्त करके सुनो।

१. **अधिकर्मिक**—अन्यों के द्वारा किए हुए कार्यों का निरीक्षण करने वाला।
२. **अतुल**—जिसकी किसी से तुलना न हो सके।
३. **अज**—अर्थात् जिसका जन्म न हो। जैसे ब्रह्म, ब्रह्मा, शिव जन्म-मरण से रहित।
४. **आनन्त्य**—जो अनन्त और असीम हो।
५. **अर्चनीय**—जो सभी के द्वारा पूजा के योग्य हो, जो सर्वाधिक सम्माननीय हो।
६. **अभिक्षक**—सुरक्षा में सदैव तत्पर रहने वाला।
७. **अधिष्ठाता**—निरीक्षक, स्वामी तथा वह पुरुष जिसमें दूसरों को वश में रखने की क्षमता हो।
८. **अधिनायक**—सबको अपने अधीन रखने में समर्थ।

९. **अभिनन्द्य**—प्रशंसा या वन्दना करने योग्य।
१०. **आदिकर**—सृष्टि को आरम्भ करने वाला, सृष्टिकर्ता।
११. **अधीश्वर**—नेता, स्वामी, प्रभाव वाला विशिष्ट पुरुष।
१२. **अभिधेय**—सर्वसार, निष्कर्ष, अविकल अर्थ वाला।
१३. **अभ्युदयकारी**—समृद्धि एवं वैभव से सम्पन्न करने वाला।
१४. **आढ्यंकर**—अत्यन्त सम्पत्ति प्राप्त करने वाला।
१५. **अमन्द**—जो अपने कार्य में सुस्त न हो। क्रियाशील तथा कार्यकुशल हो।
१६. **आराधनीय**—जो सब प्रकार से आराधना और पूजा करने के योग्य हो।
१७. **आनन्दन**—सुख रूप, उपकारी, हितैषी। जो अपने गुण, कर्म, प्रभाव से सभी को प्रसन्न करे।
१८. **आयःशूलिक**—कार्य-कुशल, चतुर तथा अपने उद्देश्य की पूर्ति में निरन्तर तत्पर रहने वाला।
१९. **इरेश**—विष्णु, वरुण, गणेश्वर, अधीश्वर आदि।
२०. **ईश्वर**—सर्व वैभवों से सम्पन्न सभी का स्वामी तथा सब प्रकार से समर्थ।
२१. **ईक्षक**—सबको देखने वाला या समदर्शी पुरुष।
२२. **उद्यमी**—सब प्रकार के उद्यमों में चतुर, परिश्रम से कभी पीछे नहीं हटने वाला, निरालस्य।
२३. **उत्पादक**—उत्पन्न करने वाला, कार्यों को पूर्ण करने वाला।
२४. **उच्चण्ड**—स्फूर्तिवान्, अत्यन्त शीघ्रतापूर्वक कार्यों को सम्पन्न करने वाला।
२५. **उत्तम श्लोक**—आदर्श पुरुष, प्रतिष्ठित, सबसे बड़ा एवं यशस्वी।
२६. **एकान्त**—एक ही वस्तु को लक्ष्य में रखने वाला।
२७. **एकाक्षर**—प्रणव स्वरूप परमात्मा, एक ही ऐसा जो कभी क्षरण को प्राप्त न हो।
२८. **ऐश्वर्यवन्त**—ऐश्वर्यशाली, वैभवशाली।
२९. **ऐकात्म्य**—परमात्मा तुल्य, परमात्मा स्वरूप।
३०. **औपमिक**—तुलना के योग्य।
३१. **ओजस्वी**—ओज से सम्पन्न, अत्यन्त शक्तिशाली।
३२. **क**—यह व्यापक शब्द है। इसके अनेक अर्थ हैं, रचयिता, ब्रह्मा, विष्णु विश्वकर्मा, वायु, अग्नि कामदेव, यम, सूर्य, जीवात्मा आदि।
३३. **कल्याणक**—शुभदायक, समृद्धिशाली, मंगलकारी।
३४. **कष्टक विशोधक**—सभी बाधाओं को दूर करने वाला।
३५. **काला**—काल का ज्ञाता।
३६. **कार्मुक**—सभी कर्मों को सुचारू रूप से करने वाला।
३७. **कालाध्यक्ष**—काल को अपनी इच्छानुसार चलाने वाला।

३८. **कीर्तिकीय**—जो सुन्दर कीर्ति वाला हो।
३९. **कुशाग्रबुद्धि**—जो अत्यन्त बुद्धिमान हो।
४०. **कृतायास**—जो सभी प्रकार के प्रयत्नों में सफल हो।
४१. **कृताभरण**—सब प्रकार से सुसज्जित, विभूषित।
४२. **कृतकार्य**—जो सब कार्यों को पूर्ण करने में समर्थ हो।
४३. **कृतागम**—योग्य कार्यकुशल, परमात्मा।
४४. **कृतहस्त**—समस्त विद्याओं और कलाओं में निपुण हो।
४५. **कृतधी**—स्थिर बुद्धि वाला, निश्चय करे उसे पूरा करे।
४६. **कृत संकल्प**—जो विचारे उसे पूरा अवश्य करे।
४७. **कृतप्रतिज्ञ**—जो प्रतिज्ञा कर ले, उसको पूर्ण किये बिना न रहे।
४८. **कृतलक्षण**—जो अपने गुणों के कारण प्रसिद्धि प्राप्त हो।
४९. **कृपालु**—उदार हृदय वाला, सभी पर कृपा करने वाला।
५०. **कृती**—सभी कामों को करने में दक्ष।
५१. **कृत्नु**—सब प्रकार से योग्य।
५२. **केलिमुख**—कार्यों को क्रीड़ा के समान प्रसन्नतापूर्वक करने वाला।
५३. **केतक**—नगर, भवन आदि का निर्माण करने वाला, संकल्पमय।
५४. **कौतुकप्रिय**—विश्व-निर्माण के कार्य को प्रसन्नतापूर्वक करने वाला।
५५. **क्रतुपति**—विश्व रचना को पूर्ण करने में समर्थ।
५६. **क्रतुप्रिय**—सर्ग रूप यज्ञ करने में प्रसन्न होने वाला।
५७. **क्रियापट**—विश्व की समस्त क्रियाओं में सब प्रकार से निपुण।
५८. **क्वाचित्क**—असामान्य, विशिष्ट, दुर्लभ, प्रयत्नों से कभी-कभी मिलने वाला।
५९. **क्षिप्रकारी**—शीघ्रता से कार्य करने वाला। स्फूर्तिवान, शीघ्रगामी।
६०. **क्षन्ता**—धैर्यवान, सहनशील, साहसी, शान्त स्वभाव वाला।
६१. **ख्यातिप्राप्त**—अत्यन्त प्रसिद्ध, कीर्तिमान स्थापित करने वाला, प्रशंसनीय।
६२. **गमनीय**—समझने के योग्य जिसका बोध किया जा सके।
६३. **गणितज्ञ**—सब प्रकार के गणितों का ज्ञान रखने वाला।
६४. **गण्डकघ्न**—सब प्रकार की बाधाओं व अड़चनों को दूर करने वाला।
६५. **गुणी**—सर्वगुणों से सम्पन्न।
६६. **चक्री**—कुम्हार, राजा या सम्राट, मदारी के तुल्य नचाने वाला।
६७. **चक्रवर्ती**—सभी का स्वामी, अधीश्वर, सर्वोच्च शासक शासन समर्थ।
६८. **चण्ड विक्रम**—अत्यन्त पराक्रमी।
६९. **चण्ड**—स्फूर्तिवान, कर्मठ।
७०. **चंचुर**—सब प्रकार से कार्य कुशल।

७१. **चारक**—चालाक, नायक, नेता।
७२. **चिन्मय**—विशुद्ध ज्ञानस्वरूप ईश्वर।
७३. **चित्रकार**—विश्व-दृश्य का ईश्वर।
७४. **छत्वरक**—उद्यान, भवनादि का निर्माता व विशेषज्ञ।
७५. **जनप्रिय**—प्राणियों का आश्रय स्थल।
७६. **जगतीश्वर**—संसार का स्वामी।
७७. **जगत्स्रष्टा**—विश्व का रचयिता।
७८. **जागरूकय**—स्वकार्य के प्रति सदैव सतर्क रहने वाला।
७९. **जिष्णु**—विजयी, परमात्मा परब्रह्म, विष्णु, इन्द्र, सूर्य, विश्वकर्मा आदि देवता।
८०. **तक्ष्णिकर्मी**—प्रतिदान या प्रतिफल की आशा का त्याग करने वाला।
८१. **तक्षक**—सूत्रधार, देवताओं का कारीगर।
८२. **तितिक्षु**—सहनशील, दयालु।
८३. **त्यागी**—प्रतिदान या प्रतिफल की आशा का त्याग करने वाला।
८४. **त्वष्टा (त्वष्ट्र)**—तीनों लोक की रचना में समर्थ, विश्वकर्मा।
८५. **त्रिकालविद्**—तीनों काल (भूत, भविष्यत्, वर्तमान) का ज्ञाता।
८६. **दाता**—सब कुछ देने में समर्थ, दानशील स्वभाव वाला।
८७. **दक्ष**—तत्काल कार्य करने में कुशल, समर्थ एवं सशक्त।
८८. **विष्णु**—दाता।
८९. **दिव्य**—अलौकिक, चमकदार, सुन्दर मनोहर।
९०. **दृप्त**—तेजोमय, प्रकाशवान्।
९१. **देवशिल्पी**—देवताओं का रचयिता विश्वकर्मा।
९२. **देववर्धकि**—देवताओं के लिए श्रेष्ठ।
९३. **धृतात्मा**—सुदृढ़ संकल्प वाला, प्राणपालक।
९४. **नमस्य**—सम्माननीय, प्रार्थनीय अथवा वन्दनीय।
९५. **नन्दक**—सुख प्रदान करने वाला।
९६. **निरज**—कार्य करने में प्रसन्न रहने वाला।
९७. **नित्य**—सदैव विद्यमान रहने वाला।
९८. **निपुण**—अपने कार्य में कुशल।
९९. **नियामक**—सब पर शासन करने वाला।
१००. **परावर**—दूर भी, पास भी सर्वत्र निवास करने वाला।
१०१. **पटु**—कार्य में कुशल।
१०२. **पृथु**—महान, विस्तृत, कार्य-कुशल, चतुर, दक्ष।
१०३. **पारंगत**—जो किसी विद्या विशेष का पूर्ण ज्ञाता हो।

१०४. विश्वकर्मा—समस्त लोकों का निर्माण करने वाला।
१०५. ब्रह्मवत्—ब्रह्म के समान शक्तिशाली।
१०६. विश्वात्मा—जो समस्त जीवों में आत्मा रूप हो।
१०७. सृष्टिकर्ता—सृष्टि को रचने वाला।
१०८. शवोश्वर—सब देवताओं में सर्वमान्य देवता।

# ऋषि वात्स्यायन की अभिलाषा

भगवान् बोले—हे देवर्षि ! मैंने तुम्हारे प्रति यह एक सौ आठ नाम अर्थ सहित बतलाए हैं। इनका उच्चारण करने से दारिद्र्य का नाश होता है। सभी प्रकार के अभाव दूर हो जाते हैं। भगवान् विश्वकर्मा की प्रसन्नता होने पर इन्द्र भी प्रसन्न होकर समय पर वर्षा करते हैं, इसलिए सब प्रकार के अन्नों का उत्पादन होता है। युद्धार्थ अस्त्र-शस्त्र निर्माण म भी इनकी प्रसन्नता विजयप्रद हो सकती है।

सूतजी बोले—भगवान् वात्स्यायन मुनि ने श्री नारायण को नमस्कार करके कहा। प्रभु ! आपने जिन नामों का वर्णन किया, वे सभी नाम परब्रह्म परमात्मा के हैं। इससे ज्ञात होता है कि भगवान विश्वकर्मा भी परब्रह्म परआत्मा के समान ही सर्वशक्तिमान, सर्वगत तथा सर्व व्यापक हैं, फिर उन्हें विश्वकर्मा के नाम से ही क्यों पुकारा जाता है। मेरी इस शंका का निवारण करने की कृपा कीजिए।

श्री नारायण ने उन मुनि के प्रति कहा—महामुने ! शास्त्रों का मत है कि संसार में करोड़ों ब्रह्माण्ड हैं और उन सभी के स्वामी सृष्टा, रक्षक तथा अन्तकर्ता एकमात्र परमात्मा ही हैं। वे ही ब्रह्मा, विष्णु, शंकर होकर क्रमशः सृष्टि की रचना, रक्षा, संहार करते हैं। वे ही विश्वकर्मा रूप से समस्त ब्रह्माण्डों और लोकों का निर्माण क्षण मात्र में ही कर देते हैं। वे ही सूर्य-चन्द्रमा के रूप में लोकों को प्रकाशित करते हैं। इस प्रकार सृष्टि का सम्पूर्ण रहस्य उन्हीं परमात्मा में निहित है। वे ही जीवधारियों प्राण और आत्मा के रूप में निवास करते हैं। प्रलयकाल होने पर सम्पूर्ण विश्व को वे ही स्वयं में लीन कर लेते हैं।

सूतजी ने कहा—मुनिश्रेष्ठ ! ऋषि वात्स्यायन ने भगवान नारायण से प्रार्थना की—प्रभु ! आपके द्वारा यह सब सुनकर अब सृष्टि का रहस्य जानने की उत्कट इच्छा उत्पन्न हो गई है। कृपा करके इस विषय में बताकर मुझे कृतार्थ करें।

# सृष्टि-चक्र रहस्य

सूतजी बोले—हे महामुनि ! महर्षि वात्स्यायन ने प्रभु श्री नारायण से निवेदन किया—हे देव ! देवता व प्रजाओं की विश्वकर्मा देव ने जिस प्रकार पालना की उसे कहने की कृपा करिए। यह सुनकर भगवान् कहने लगे—हे ऋषिवर ! परब्रह्म परमात्मा की महिमा विचित्र है, वे संसार को व्यक्त और विलीन करने में रुचि रखते हुए सदैव क्रीड़ा करते रहते हैं। यद्यपि मैं स्वयं भी उन्हीं परमात्मा का मूर्तरूप हूं। मैं भी वही करता हूं जो उन अव्यक्त स्वरूप निर्गुण ब्रह्म की इच्छा होती है। मैं स्वयं विष्णु रूप से चक्र धारण किए हुए संसार की रक्षा में तत्पर रहता हूं। विश्वकर्मा भगवान् द्वारा रची गई सृष्टि ब्रह्मा द्वारा रची हुई मानी जाती है।

सूतजी बोले—महामुनि ! वात्स्यायन के पूछने पर भगवान् श्री नारायण ने जो कुछ कहा, वह बताता हूं। भगवान् बोले—हे वात्स्यायन ! भगवान् जब सृष्टि को व्यक्त करना चाहते हैं तब इच्छा करते हैं। मैं एक से अनेक हो जाऊं। हे महामुने ! परमात्मा का नाम उस समय विश्वकर्मा होता है, इसका तात्पर्य स्पष्ट है कि विश्वकर्मा भी उनसे अभिन्न ही है। ब्रह्मा का जो प्राकट्य होता है, वह भी विश्वकर्मा नाम वाला ही है। इस प्रकार ब्रह्मा और विश्वकर्मा भी उनसे अभिन्न ही है। यह कोई नहीं जानता कि विश्वकर्मा ब्रह्मा के साथ-साथ रहते हैं, अथवा ब्रह्मा विश्वकर्मा के साथ-साथ रहते हैं। क्योंकि दोनों ही ब्रह्म स्वरूप हैं।

कुछ समय शान्त रहने के पश्चात् भगवान श्री नारायण ने पुनः कहा—ऋषि-वर ! ब्रह्माजी जीव समुदाय को देहधारियों के रूप में उत्पन्न करते हैं। उनमें सभी प्रकार के शरीरधारी होते हैं। देवता, दैत्य, मनुष्य, नाग, यक्ष, किन्नर, गन्धर्व, कीट, पतंग, पशु-पक्षी आदि। ऋषि-मुनियों का आविर्भाव भी उनके कर्मानुसार उत्कृष्ट रूप में होता है। वे सब स्वभाव से ज्ञानवान, तपस्वी तथा शुभ आचरण वाले होते हैं।

हे महामुने ! संसार में कर्म प्रधान है, इसका प्रभाव कभी नष्ट नहीं होता। इनका भोग पूरा होने पर ही जीवात्मा शान्त एवं निस्पृह होकर परब्रह्म में लीन होता है। स्थावर-जंगम रूप से व्यक्त विश्व की अभिव्यक्ति, स्थिति और प्रलय, यह क्रम चलते ही रहते हैं।

सूतजी बोले—हे ऋषिगण ! भगवान् श्री नारायण ने आगे कहा कि मुनि-नाथ ! पुराकाल में जब ब्रह्मा प्रकट हुए, तब चारों ओर देखने के लिए उनके चार मुख हुए, इस कारण वे चतुरानन अथवा चतुर्मुख कहलाए। उन्होंने अपने उन मुखों ही से चारों वेद का कथन किया। उपनिषदों और पुराणों का वर्णन किया। वस्तुतः यह समस्त ज्ञान-विज्ञान ऋषि-मुनियों ने अपनी-अपनी अनुभूतियों के अनुसार विभिन्न खण्डों में, विभिन्न नामों से विभक्त कर दिया। वस्तुतः ब्रह्माजी द्वारा कथित ज्ञान-विज्ञान अत्यन्त गूढ़ होने के कारण सभी की समझ में सहज रूप से नहीं आ

सकता था। पुराणों के अतिरिक्त अनेकों उप पुराण और अनेकानेक सह पुराण प्रत्यक्ष हुए, जिनमें विभिन्न नाम-रूपानुसार चरित्रों का विस्तारपूर्वक वर्णन हुआ है।

महर्षि ! मानव जाति के लिए तो चार पुरुषार्थ व्यवहारोचित माने गए हैं। वे हैं धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। धर्म का प्रथम कथन होने से निष्कर्ष निकलता है कि जीवन के प्रत्येक स्तर पर धर्म का महत्व है। जो कुछ भी करो, धर्मपूर्वक करो। चाहे कैसी भी बाधाएं उपस्थित हों धर्म को कभी न छोड़ो।

दूसरा पुरुषार्थ अर्थात् धन-संचय। लोभी स्वभाव के मनुष्य धन एकत्र करने में तत्पर रहते हैं। इन कर्मों का फल भी तत्काल अथवा देर-सवेर मिलेगा ही। इसीलिए आवश्यक है कि धर्मपूर्वक ही धन की प्रवृत्ति रहनी चाहिए। आजीविका चलाने में परिश्रम किया जाए। यही तथ्य काम-सेवन के सम्बन्ध में समझना चाहिए। समाज में दाम्पत्य जीवन का निर्वाह धर्मपूर्वक होना चाहिए। अपनी विवाहिता पत्नी के साथ ही गृहस्थ धर्म का निर्वाह प्रशंस्य है। इस प्रकार के दुष्कर्म अनेक बार हिंसा के कारण बन जाते हैं। ज्ञानी पुरुष परनारी के दर्शन तक को अधर्म मानते हैं। जानते हो सुन्द-उपसुन्द दैत्यों ने एक नारी के रूप पर अपने प्राण दे दिए।

वात्स्यायन ने प्रार्थना की। कृपया उनके विषय में विस्तारपूर्वक कहिए कि सुन्द-उपसुन्द कौन थे ? और वह परनारी कौन थी, किस कारण से उस युद्ध में वे दोनों ही मारे गए ?

भगवान श्री नारायण बोले—महामुने ! बड़ी विचित्र कथा है यह। पुराकाल में एक दैत्यराज के दो पुत्र थे सुन्द और उपसुन्द। दोनों ही बड़े महत्वाकांक्षी हुए। दोनों भाई एक भयंकर निर्जन वन में जाकर घोर तपस्या करने लगे। उन्होंने शरीर की सभी क्रियाएं छोड़ दीं, केवल एक पांव से खड़े रहकर ईश्वर के ध्यान में तल्लीन हो गए। उनकी ऐसी तपस्या देखकर इन्द्र ने समझा कि यह दोनों अपनी तपस्या के फलस्वरूप इन्द्रासन के अधिकारी न बन जाएं इसलिए उनकी तपस्या-भंग करने का विचार करने लगे। कामदेव को बुलाकर प्रार्थना की—मित्र ! तुम ही इस विपत्ति का निवारण कर सकते हो। अपने सहायकों को साथ लेकर तुरन्त जाओ और उन दैत्यों की तपस्या भंग कर दो।

यह सुनकर कामदेव चल दिया। साथ में सुन्दरी अप्सराएं थीं। उन्होंने जंगल में मंगल कर दिया। बसन्त ऋतु खिल उठी, सुखदायक मन्द सुगन्धित पवन चल पड़ा, संगीत-नृत्य का समां बंध गया। किन्तु सब व्यर्थ, उन दैत्यों ने उस ओर ध्यान ही नहीं दिया, पूर्ववत् तपस्या में लगे रहे। कामदेव अपने सहायकों सहित लौट गया। उनकी घोर तपस्या से ब्रह्मा का सिंहासन हिलने लगा, इसलिए उनका स्थिर रहना कठिन हो गया। ब्रह्मा सुन्द-उपसुन्द के पास पहुंचकर बोले—मैं प्रसन्न हूं, वर मांगो। उन्होंने कहा कि आप प्रसन्न हैं तो हमें अमर और अजेय होने का वर दीजिए।

ब्रह्मा ने कहा—अमरत्व तो मेरे वश की बात नहीं है, अजेय होने की बात यह

है कि तुम सब पर विजय प्राप्त कर लोगे, कोई तुम्हें जीत न सकेगा। किन्तु यदि आपस में लड़ पड़े तो सम्भव है कि प्राण चले जाएं। दैत्यों ने कहा—नहीं, हम परस्पर नहीं लड़ेंगे इतना कहकर ब्रह्माजी अन्तर्ध्यान हो गए। दोनों दैत्य प्रसन्नतापूर्वक घर लौटे और फिर दैत्य-सेना एकत्रित करके विश्व-विजय को निकल पड़े। उन्होंने मर्त्यलोक पर विजय प्राप्त करके स्वर्ग को भी जीत लिया। इन्द्रादि देवता वहां से भाग खड़े हुए। छिपते-छिपते ब्रह्माजी के पास पहुंचे और प्रार्थना करने लगे, उन दैत्यों को नष्ट करने के लिए।

ब्रह्माजी सोचने लगे अब क्या किया जाए ? वरदान प्राप्त दैत्य किस प्रकार मारे जाएं। बहुत सोच-विचार के पश्चात् ब्रह्माजी ने अपने मन से चिन्तनपूर्वक एक अत्यन्त सुन्दर युवती को प्रकट किया। उसका रूप-लावण्य अपूर्व और अद्भुत था। उसे देखकर सभी उपस्थित देव-समाज विमोहित हो गया।

तभी ब्रह्माजी ने उसे आज्ञा दी—सुभगे ! तुम सुन्द-उपसुन्द को इस प्रकार विमोहित करो कि परस्पर में लड़कर मर जाएं। उस आज्ञा को सुनकर वह मुग्धा नारी वहां पहुंची जहां दोनों दैत्य सुरा-सुन्दरी के विहार में व्यस्त थे। उस परम लावण्यमयी नारी को देखकर दोनों ही उस पर आसक्त हो गए। दोनों ही उसे अपनी-अपनी पत्नी बनाने के लिए प्रयत्नशील हुए, इसलिए परस्पर झगड़ पड़े। बहुत भीषण संघर्ष छिड़ गया। वे दोनों भाई उसे देख-देखकर अत्यन्त आसक्त रहते हुए युद्ध करने लगे और अन्त में दोनों ही मारे गए। वस्तुतः परनारी की प्रीति मनुष्यों की बुद्धि हरण कर लेती है। उस प्रभाव से देवता, दैत्य, यक्ष, गन्धर्व आदि भी नहीं बच पाते।

फिर सूतजी बोले—हे मुने ! यह इतिहास सुनाकर प्रभु नारायण ने कहा—अधर्मपूर्वक उत्पन्न हुई कामासक्ति का ऐसा ही परिणाम होता है। यह सत्य है कि धर्म के बिना सौभाग्य की वृद्धि नहीं होती और उस स्थिति में मोक्ष तो किसी प्रकार सम्भव ही नहीं है। जो लोग मोक्ष चाहते हों, उन्हें तो अवश्य ही धर्म का व्यवहार करना चाहिए।

हे ऋषिवर ! अब आप ध्यानपूर्वक विश्वकर्मा की प्रेरणा से ब्रह्मा द्वारा सृष्टि-रचना के प्रसंग सुनो।

ब्रह्माजी के मन से प्रथम सप्तर्षियों की उत्पत्ति हुई, जिन्होंने सभी वेद-पुराणादि की अनुभूतियां प्राप्त कीं। वे ही वेद पुराण भृगु, च्यवन आदि ऋषियों को परम्परा से प्राप्त होते रहे, उन्हीं का कथन ऋषियों ने दक्ष से किया। दक्ष के अनुसार ही यह मान्यता है कि जगत् के कारण, अजन्मा, अविनाशी परब्रह्म परमात्मा ही समस्त विश्व के एक मात्र आश्रय हैं।

हे ऋषिवर ! परमात्मा अनादि, अनन्त और समस्त विश्व के उत्पत्ति स्थान हैं, उन्हीं से त्रिगुणात्मिका प्रकृति का आविर्भाव होता है। वे ही परमात्मदेव सर्वत्र विश्व में विद्यमान रहते हैं। प्रलय में लीन विश्व उन्हीं सर्वत्र विश्व में विद्यमान रहते हैं।

प्रलय में लीन विश्व उन्हीं में अवस्थित रहता है। उन्हीं प्रभु में परस्पर अनुकूल रूप से सदैव अनेकों गुण विद्यमान रहते हैं।

हे ऋषिवर ! तात्पर्य यह है कि वायु से ही रूप गुण वाली ज्योति उत्पन्न होती है। वायु से रूप तन्मात्र के आवरित रहने के कारण ज्योति में जो विकार होता है उससे रस तन्मात्र की उत्पत्ति होती है। इसी से रूप तन्मात्र से आवरित रहने से रसात्मक जल प्रकट होता है। उस जल की विकृति गन्ध तन्मात्र के सहित गन्ध गुण वाली पृथिवी उत्पन्न होती है।

## विश्व के संचालन में प्रकृति की भूमिका

हे महामुने ! सत्य के द्वारा सात्विक तथा विकारमय अहंकार द्वारा वैकारिक सृष्टि होती है। उस वैकारिक सृष्टि के दस देवता हैं पांच ज्ञानेन्द्रिय और पांच कर्मेन्द्रिय, इनके साथ मन को मिलाने पर यह ग्यारह देवता हुए। श्रोत्र से शब्द का, त्वचा से स्पर्श का, नेत्र से दर्शन का, जिह्वा से स्वाद का और नासिका से गन्ध का अनुभव होता है। यह पांचों बुद्धिन्द्रिय कही जाती हैं। कर्मेन्द्रियों में पांव, गुदा, उपस्थ, हाथ और जिह्वा आते हैं। पांव से चलना, गुदा से मल त्याग, उपस्थ से मैथुन, हाथ से शिल्प आदि कार्य तथा जिह्वा से कथन होता है।

अन्त में शब्द, स्पर्श, रूप और रस जब गन्ध तन्मात्र से मिलते हैं, तब इस भूमण्डल का प्राकट्य होता है। यही कारण है कि पंच गुणों से सम्पन्न होने पर यह पंचभूतात्मिका एवं स्थूल आकार वाली पृथ्वी दृष्टिगोचर होती है। यह सब परस्पर एक-दूसरे को धारण किए रहते हैं। हे मुने ! उसी वृहद् गोलाकार पृथ्वी में मेरू पर्वत, समुद्र स्थल व द्वीप आदि से युक्त संसार है। उसी में अनेक प्रकार के प्राणी निवास करते हैं। देवता, दैत्य, यक्ष, किन्नर, नाग, मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतंग आदि स्वर्गादि समस्त लोकों की विद्यमानता है। उस गोलाकार प्रकृति युक्त पृथ्वी को अग्नि, जल, आकाश, वायु आदि भूतों के सहित उत्तरोत्तर दस गुण होते हुए सब ओर से घेरे रहते हैं।

इसी प्रकार अन्यान्य आठ प्राकृतिक आवरण भी अवतरित रहते हुए सुशोभित होते हैं। यह सभी प्रकृतियां नित्य स्वरूप हैं। इनके अन्त में उस पुरुष की विद्यमानता है।

मुनीवर बोले—हे सूतजी ! आपने बताया कि संसार प्रकृतियों से घिरा रहता है। तब क्या प्रकृतियां इसे सदा ही घेरे रहती हैं ? यदि ऐसा है तो संसार सदैव छिपा रहना चाहिए। किन्तु देखने में तो वह प्रत्यक्ष ही है। इस विषय में आप कृपया सभी बातें विस्तारपूर्वक कहें।

सूतजी ने कहा—आपने सुन्दर प्रश्न किया है। यह सभी जानने योग्य हैं, इसलिए स्पष्ट होना ही चाहिए। मैं इस तथ्य को भी बताता हूं, आप सब लोग ध्यानपूर्वक सुन लें। जब यह संसार विलीनावस्था में रहता है, तब इसे तामसी

(अन्धकारमयी) प्रकृति घेरे रहती है, इस कारण दिखाई नहीं देता। क्योंकि तामसी प्रकृति के प्रभाव से सभी रूप छिपे रहते हैं, इसलिए उसमें चैतन्यता भी प्रतीत नहीं होती।

# ब्रह्माजी का उदय

## सृष्टि का प्रलय में विलय होना

सूतजी ने कहा—मुनिगण ! भगवान् श्रीनारायण ने स्वयं ही इस रहस्य को उजागर करते हुए कहा—जब यह संसार प्रकृति में लीन होता है, वह अवस्था प्रलय कही जाती है। जब तामसी प्रकृति उस समय आवरण को हटाने लगती है तभी पंच-तत्वों का प्राकट्य प्रतीत होता है। उस तामसी प्रकृति को परमात्मा स्वयं ही हटाते हुए सात्विकी, राजसी तथा अन्यान्य प्रकृतियों के साथ उसे मिलाते हुए विश्व को प्रकाशित करते हैं। प्रथम वे ही स्वयं प्रकट होते हैं। अप्रकट अवस्था में वे प्रभु ब्रह्म इन्द्रियों के ज्ञान में नहीं आते, क्योंकि उस समय वे सूक्ष्मातिसूक्ष्म रहने के कारण प्रकट प्रतीत नहीं होते। जब प्रकट होते हैं तब उनका क्रम इस प्रकार होता है कि वे प्रथम जल को प्रकट करते हैं। उस जल का अवतरण भी उनके अपने शरीर से ही होता है। उस जल में ही वे विश्व का बीज प्रकट करते हैं।

मुनिवर बोले—आपने कहा था कि विश्व कभी नष्ट नहीं होता, सदैव रहता है, केवल छिप जाता है, तब जल को उत्पन्न करके बीज प्रकट करने की बात कैसे संगत होगी ?

सूतजी ने कहा—हे मुने ! इसमें शंका का कोई कारण नहीं है। अप्रकट ब्रह्म प्रलयकाल में इस विश्व को स्वयं में लीन कर लेते हैं। पंच महाभूत भी उन्हीं नें समाविष्ट हो जाते हैं। विश्व प्रपंच के समस्त भाव एक बीज रूप में विद्यमान रहते हैं, जिसमें सभी कुछ सुरक्षित रहता है।

हे शौनकजी ! जिस प्रकार बीज में पूरे वृक्ष की सम्भावनाएं विद्यमान रहती हैं, उसी प्रकार ब्रह्माण्ड बीज में विश्व की समस्त सम्भावनाओं का होना स्वाभाविक है। क्योंकि बीज से सब कुछ होता है, बीज ही सृजन की सुलभ प्रक्रिया से सम्पन्न रहता है।

भगवान अव्यक्त से व्यक्त होने के लिए जल को सर्वप्रथम व्यक्त करते हैं, उसमें बीज को प्रकट करते हैं। उसी बीज से सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी उत्पन्न होते हैं।

सूतजी ने इस क्रम की परिभाषा देते हुए कहा—भगवान् सर्वप्रथम जल को प्रकट करते हैं, वह जल उस समय बढ़ता हुआ असीमित मात्रा में हो जाता है। वह

भगवान् नारायण का स्वरूप होने के कारण अपना वैसा ही प्रभाव रखता है। भगवान के 'नारायण' नाम का रहस्य भी जल में ही छिपा है। भगवान् से जल की उत्पत्ति होने के कारण जल को 'नार' संज्ञा हुई, उस नार का जो अयन अर्थात् आश्रय स्थान है, वह परमात्मा है इसलिए परमात्मा को नारायण के नाम से जाना जाता है।

ऋषिवर ने पूछा—कुछ ऋषियों की मान्यता है कि ब्रह्माजी की उत्पत्ति भगवान् विष्णु के नाभिकमल से हुई है। इस कथ्यान्तर का रहस्य बताने की कृपा करें।

सूतजी ने प्रसन्नता से कहा—शौनक ! देखो, जो ऋषिगण भगवान् विष्णु के नाभिकमल से ब्रह्माजी का प्रकट होना बताते हैं, वे भी कुछ असत्य नहीं कहते। अप्रकट ब्रह्म जब स्वयं प्रकट होने के साथ ही विश्व को प्रकट करना चाहते हैं तब सर्वप्रथम जलार्णव को ही प्रकट किया। सभी कार्यों की सिद्धि के लिए संकल्प की दृढ़ता होनी चाहिए, जो कि स्थिर मति से प्राप्त होती है। इसलिए बुद्धि में स्थैर्य गुण का भी समावेश किया। कर्तव्य क्या है ? अकर्तव्य क्या है ? उसका ज्ञान भी बुद्धि से ही होता है, क्योंकि बुद्धि ही उसका विचार करने में समर्थ है। ब्रह्माजी ने धर्म, अधर्म को सुख-दुःख रूपी कर्म-फल के साथ जोड़ दिया, जिससे कि मनुष्यों को उनकी अनुभूति हो सके और वे अपने कर्मों का परिणाम जानकर शुभ कर्म करने में ही रुचि रखें। हे मुने ! यह मैंने संक्षेप में ब्रह्माजी की उत्पत्ति और उनके द्वारा सृष्टि रचना क्रम को सुनाया है।

# ब्रह्मा की जागृत चेतना

सूतजी ने कहा—हे ऋषिगण ! जब सर्गकाल उपस्थित हुआ तब सतोगुणी प्रकृति वाले ब्रह्माजी भगवान् विश्वकर्मा की प्रेरणा से चैतन्यता को प्राप्त हुए। किन्तु जागने पर उन्होंने देखा कि समस्त ब्रह्माण्ड नितान्त शून्य है, कहीं कुछ भी नहीं है। उनको समझ में नहीं आया कि पृथ्वी कहां चली गई ? जब पृथ्वी ही नहीं तो सृष्टि की रचना किस पर होगी ? ऐसी शंका करते हुए ब्रह्माजी ने भगवान् से प्रार्थना की कि प्रभु ! आप पृथ्वी को प्रकट कीजिए। अन्यथा आपका निर्देश-पालन सम्भव नहीं होगा। तभी उन्हें पता चला कि पृथ्वी को हरिण्याक्ष नामक दैत्य ने जलार्णव में निमग्न कर दिया है। उन्हें लगा कि मानो पृथ्वी उनसे प्रार्थना कर रही है कि हे सृष्टि-कर्ता ! आप मेरा उद्धार कराइए। मैं जल में पड़ी हुई अत्यन्त कष्ट पा रही हूं। ब्रह्माजी ने भगवान् से प्रार्थना की कि प्रभु ! पृथ्वी बहुत त्रस्त हो रही है, कृपा करके उसका उद्धार शीघ्र कीजिए। भगवान् ने ब्रह्माजी को आश्वस्त किया कि मैं शीघ्र ही वाराह अवतार धारण करके पृथ्वी का उद्धार करूंगा।

हे शौनक ! वाराह भगवान् का रूप अद्भुत था, जल में प्रविष्ट होकर उन्होंने पृथ्वी का पता लगा लिया और उसे बायीं दाढ़ से ग्रहण करके जल से बाहर निकले। सप्तद्वीप एवं आकाशादि सहित वह पृथ्वी अत्यन्त शोभायमान लग रही थी।

दैत्य हिरण्याक्ष ने जब पृथ्वी का इस प्रकार उद्धार हुआ देखा, तब उस वाराह भगवान् पर बड़ा क्रोध आया। उसने उन पर आक्रमण कर दिया। उस समय वाराह भगवान और दैत्य के मध्य भयंकर युद्ध होने लगा। उस युद्ध में बहुत समय तक कोई भी नहीं हारा। युद्ध बराबर चलता रहा। इधर ब्रह्माजी पृथ्वी की दशा देखकर अधिक चिन्तित थे। उन्होंने वाराह भगवान् से प्रार्थना की कि हे विशालकाय वाराह प्रभु ! इस दुष्ट का वध करने में अब अधिक देर न कीजिए।

ब्रह्माजी की प्रार्थना सुनकर भगवान् का ध्यान पृथ्वी की ओर गया और दैत्य के प्रहारों से क्रुद्ध होकर उन्होंने उस महाबली दैत्य को सदा के लिए निद्राग्रस्त कर दिया। फिर भगवान् वाराह ने पृथ्वी को जल पर भले प्रकार से स्थापित कर दिया, तब उनकी सब ओर जय जयकार होने लगी।

## सृष्टि के नौ रूप

हे शौनक ! जल पर पृथ्वी के इस प्रकार से स्थापित होने पर ब्रह्माजी ने उस पर्वतों की रचना की। ब्रह्माजी ने उन पर्वतों को व्यक्त कर दिया। तदुपरान्त स्थिर हुई उस पृथ्वी को सात द्वीपों के रूप में विभक्त किया और फिर उन्होंने तमोमयी सृष्टि के जो पांच भेद किए उनके नाम हुए तम, मोह, महामोह, तामिस्र और महान्ध तामिस्र। फिर उन्होंने तिर्यक स्रोत को प्रवृत्त करके, उसके द्वारा पशु-पक्षी आदि अज्ञानमयी सृष्टि की, फिर उन्होंने अकच्य से अर्वाकस्रोत नामक सर्ग की रचना की। ब्रह्माजी ने देववर्ग की रचना की। इस सृष्टि को उत्पन्न करके ब्रह्माजी सन्तुष्ट हुए, किन्तु इस सर्ग में दुःख की भी अधिकता थी। इसलिए उन्होंने अन्य सृष्टि का विचार किया और तब अनुग्रह संज्ञक पांचवीं सृष्टि रची।

हे ऋषिवर ! उसके अनन्त छठी सृष्टि की रचना समस्त भूतगण की गई। इनमें से अधिक देहधारी स्त्री चिन्तनादि विषयों में आसक्त तथा शील-रहित स्वभाव के हुए। इस सर्ग रचना प्रथम सृष्टि ब्रह्माजी का प्रकट होना, द्वितीय सर्ग भूतसर्ग, तीसरा सर्ग प्राकृत सर्ग, चतुर्थ सर्ग स्थावर, पांचवां सर्ग तिर्यक् योनि, छठा सर्ग ऊर्ध्व स्रोत (देव सर्ग), सातवां सर्ग मानव सृष्टि, आठवां सर्ग अनुग्रह (सात्विक व तामसिक) एवं नवीं सृष्टि कौमार संज्ञक की रचना की।

सूतजी बोले—हे महामते शौनक ! महर्षि वात्स्यायन ने भगवान् से विस्तारपूर्वक सृष्टिचक्र के विषय में जानने की जिज्ञासा प्रकट की। यह सुनकर भगवान् ने कहा—मुनीश्वर ! आपकी इच्छानुसार प्रथम देव-सृष्टि का वर्णन आरम्भ कर रहा हूं। आप ध्यानपूर्वक सुनिए। वस्तुतः सभी प्रकार की सृष्टि प्राणियों के कर्मानुसार ही होती है। कर्मों का भोग करने के लिए जीवों को पुनः पुनः जन्म मरण के चक्र में

घूमना होता है। देवता, दैत्य, मनुष्य आदि कोई भी हो, कर्म के बन्धन से कोई नहीं बचता। अधिक शुभ कर्मों के फलस्वरूप स्वर्ग मिल सकता है तथा अत्यन्त पापों को भोगने के लिए नरक की प्राप्ति हो सकती है।

## देव सृष्टि

जब प्रलयकाल में सम्पूर्ण सृष्टि विलीन हो गई, तब विश्वकर्मा की प्रेरणा से पुनः उसे व्यक्त करने की इच्छा से उन्होंने सुर, असुर, पितर और मनुष्य को रचने के लिए जल में अपना अंश निक्षिप्त किया। तब तमोगुण के तेज से, उनकी जंघा से प्रथम असुर हुए, जिन्हें तमोगुणी शरीर मिला। तदुपरान्त ब्रह्माजी ने सतोगुण के तेज से अपने मुख से देवताओं की उत्पत्ति की। इस प्रकार देवताओं को सतोगुणी शरीर प्राप्त हुआ। फिर ब्रह्माजी ने सतोगुण की अधिकता वाले पितरों को उत्पन्न किया। फिर उन्होंने रजोगुण की अधिकता से मनुष्यों की उत्पत्ति की। इन-इन गुणों की अधिकता के कारण दिन में देवता होते हैं, रात्रि में असुर, ज्योत्स्ना में मनुष्य और सन्ध्याकाल में पितर होते हैं।

हे मुने ! इस प्रकार ब्रह्माजी ने दिवस, रात्रि, सन्ध्या और ज्योत्स्ना संज्ञक चार प्रकार के जो देह अपने अंशों से उत्पन्न किए, वही ब्रह्माजी के त्रिगुणात्मक शरीर हैं। ब्रह्माजी ने दाढ़ी मूंछ वालों की रचना की, तब वे शरीर को ही भक्षण करने में प्रवृत्त हुए। तब वहां 'खाऊंगा', 'रक्षा करो' यह दो प्रकार की पुकारें आरम्भ हुई। जो यक्ष व राक्षस कहलाए। उन्हें देखकर ब्रह्माजी को प्रसन्नता नहीं हुई। फिर जो विचरण करने वाले या सरकने वाले हुए वे सर्प कहलाए, वे क्रोधी स्वभाव के थे। फिर ब्रह्माजी ने गाय का चिन्तन किया, तब गन्धर्व उत्पन्न हुए। ब्रह्माजी ने इस भांति आठ प्रकार की योनियों को रचा, जो देवयोनि कहलायीं।

## जीव-जन्तु

सूतजी बोले—उनके मुख से बकरे, हृदय से पक्षी, उदर से गाय, चरण से घोड़े, हाथी, गधे, खरगोश, ऊंट, मृग आदि जीव हुए। वात्स्यायन ने भगवान् से पूछा—हे देव ! पशु-पक्षी आदि की उत्पत्ति इन सबके पश्चात हुई होगी, कुछ उनके विषय में भी कहने की कृपा कीजिए। श्री नारायण बोले—हे महामुने ! सभी प्रकार की सृष्टि रचने का श्रेय भगवान् विश्वकर्मा ने ब्रह्माजी को ही दिया है। इसीलिए उन्होंने अपने ही शरीर से पशु-पक्षियों को भी प्रकट किया। तत्पश्चात् उन्होंने वृक्ष, औषधियां, फल, पुष्प आदि की रचना की।

हे ऋषिवर ! जिसका जो कर्म है, वह सृष्टि से पहले ही निश्चित कर दिया गया था। इसी कारण कर्म-फल भोग वाले प्राणी बारम्बार उत्पन्न होकर अपने-अपने कर्मों को करते हैं। परजन्म में उसे उन्हीं कर्मों की प्राप्ति होती है। जो लोग यज्ञादि कर्मों में रुचि रखते हं, उनके लिए भी ब्रह्माजी ने अपेक्षित साधन उपलब्ध कराए। उन्होंने अपने मुख से गायत्री, साम व यक्षादि की उत्पत्ति की। दक्षिण मुख से यजुर्वेद,

त्रैष्टुभ छन्द, पंचदश स्तोत्र को प्रकट किया। पश्चिम मुख से सामवेद, पंचदश स्तोत्र, वैरूप और अतिरात को तथा उत्तर मुख से इक्कीस अथर्व और वैराज को उत्पन्न किया। यही ब्रह्माजी की सृष्टि का नियम है।

# सृष्टि चक्र एवं कर्म रचना

सूतजी बोले—वात्स्यायन मुनि के प्रश्न करने पर श्रीनारायण ने मैथुनी सृष्टि रचना का वर्णन करते हुए कहा—हे महामुने ! ब्रह्माजी ने अपने मुख से हजार प्रकार की मिथुन सृष्टि, सहस्र मिथुन उनके वक्षस्थल से उत्पन्न किए। ऊरु से अन्य सहस्र मिथुन उत्पन्न हुए, फिर अपने चरणों से सहस्र मिथुनों को उत्पन्न किया। फिर संघर्षण से द्वन्द्व रूप जीवों की उत्पत्ति हुई, वे सब सहर्ष मैथुन में प्रवृत्त हुए। हे मुने ! पूर्वकाल में नारियों को मासिक रजोधर्म नहीं होता था, इसलिए वे मैथुन में प्रवृत्त होने पर सन्तानोत्पत्ति में असमर्थ थीं। किन्तु बाद में रजोधर्म की आवश्यकता समझकर ब्रह्माजी ने उनके शरीर की तदनुरूप व्यवस्था कर दी। तब स्त्रियों को प्रति मास रजोधर्म होने लगा और प्रत्येक रजोधर्म काल को छोड़कर शेष दिनों में मैथुन से गर्भधारण होने लगा। सन्तान प्राप्ति की इच्छा हो तो तभी मैथुन किया जाए, यह नियम बनाया, किन्तु कामोद्रेक की अधिकता वाले देहधारी उस नियम का पालन न कर सके। इस कारण स्त्रियों को अधिक प्रसव होने के कारण वे सन्तानोत्पत्ति का साधन मात्र बनकर रह गई। मैथुनी सृष्टि सदा इसी भांति होती रही है। इस समय भी वह विश्व ब्रह्माजी की उसी सृष्टि से परिपूर्णता को प्राप्त हो रहा है।

हे महामुने ! यद्यपि उस युग के मनुष्य संस्कारहीन थे, तो भी उनके जीवन में संयम था। वे स्थिर यौवन वाले थे। वे सब प्रेमपूर्वक साथ रहते, इसलिए सभी में समान भाव रहता था। घमण्ड तो उन्हें छू भी नहीं गया था, आलस्य भी नहीं था। इसलिए स्वस्थ और दीर्घजीवी होते थे। अल्प आयु में किसी की मृत्यु नहीं होती थी। इस प्रकार उस समय की प्रजा अत्यन्त सुखी थी। किन्तु धीरे-धीरे मनुष्यों में काम वासना बढ़ने लगी। हे ऋषिवर ! यह काम-वासना ही सभी झंझटों का विशेष कारण होती है। इसकी पूर्ति में विघ्न पड़ने से झुंझलाहट और क्रोध उत्पन्न होता है। इस प्रकार हिंसा-प्रतिहिंसा का क्रम चल पड़ता है। क्रोध की ऐसी ही परिणति होती है।

सूतजी ने कहा—हे मुने ! तुमने अनेक बातें ऐसी कही हैं, जिनका ज्ञान सभी को सुलभ नहीं होता। इन सब तथ्यों को सुनकर आश्चर्य हो रहा है। तब मुझे यह बताओ कि जीवात्मा गर्भ में किस प्रकार प्रवेश करता है तथा अपनी अवधि तक गर्भ में कैसे रहता है ?

सुमति ने कहा—अब गर्भ धारण की रचना का विस्तार सुनो। जब सम्भोग काल में स्त्री-पुरुष के वीर्य और रज का मिश्रण होता है तब जीवात्मा उसमें प्रवेश करता है। उससे अभिभूत हुए दोनों बीज स्थिर होकर बुलबुले जैसे आकार को प्राप्त होते हैं। उस बीज को अंकुर कहते हैं। उसी अंकुर के विभाग से शरीर के अंगों का निर्माण होता है। तत्पश्चात् उपांगों, नखों और त्वचा का निर्माण होकर उस पर रोमावली और केशों की उत्पत्ति होती है। फिर सर्वांग वृद्धि होने लगती है। अंगों के आकार के विकास होने के साथ-साथ ही गर्भाशय का भी विकास होता है। वह नीचे की ओर मस्तक किए रहता है। गर्भकोश में ही जानु और पार्श्व सहित दोनों हाथ नीचे भाग में स्थित रहते हैं। दोनों अंगूठे जानु पर तथा सभी अंगुलियां जानु के अगले भाग में फैली रहती हैं। जानु के पीछे दोनों नेत्र, जानु के मध्य में नासिका तथा पार्ष्णि पर दोनों कूल्हे रहते हैं, बाहुएं और जंघायें बाह्य भाग में स्थित रहती हैं। जैसे मनुष्य योनि में गर्भस्थ मनुष्य इस प्रकार वृद्धि को प्राप्त होता है। उसी प्रकार अन्यान्य योनियों में उन-उन योनियों के अनुरूप ही गर्भ की वृद्धि होती है। कर्मानुसार बहुत-से प्राणी गर्भस्राव या गर्भपात के रूप में वहीं नष्ट होकर पुनर्जन्म की प्रक्रिया में पड़ते हैं। जो पूर्णता को प्राप्त होते हैं, माता को प्राप्त होने वाले आहार द्वारा ही तृप्त एवं पुष्ट होते रहते हैं।

उस समय गर्भ में प्राणी को अपने विगत जन्मों की याद आती रहती है, जिसे सोचता हुआ वह अत्यन्त दुःख को प्राप्त होता रहता है। अधोमुखी अवस्था में जीव का जन्म नवें या दसवें मास में होता है। उस समय अत्यन्त कष्ट से गर्भद्वार से निकलता है। उस समय उसे मूर्च्छा रहती है, किन्तु बाह्य वायु का स्पर्श होने पर चेत आता है। तभी माया उसे विमोहित करके पूर्वजन्म के ज्ञान को मिटा देती है। इस प्रकार जन्म लेने पर बाल्यावस्था, तरुणावस्था, और अन्त में वृद्धावस्था को प्राप्त होकर मर जाता है। इस प्रकार जन्म-मरण का यह चक्र निरन्तर घूमता रहता है।

# इन्द्रयादि देव की रचना

शौनकजी ! भगवान् की मनोकामना का ही एक रूप शेष नाग है। त्रिलोकी का केन्द्र उन्हीं में भगवान् नारायण का विकास है। क्षीर सिन्धु में शेष भगवान् की अवस्थिति बीज स्वरूप ही है। उन्हीं की नाभि से कमल उत्पन्न होता है। उसका खिलना ही ब्रह्माजी का फोड़कर बाहर निकलना है। ब्रह्माजी की उत्पत्ति के वर्णन में कथन को क्षमता के अनुसार ही समझना चाहिए। ब्रह्माजी की उत्पत्ति जल में पड़े अण्डे से हुई अथवा जल से सम्पन्न नाभि-कमल से हुई, होना तो सभी मानते हैं।

उन्होंने स्वर्ग, पृथ्वी, आकाश अष्ट दिशाएं, समुद्र के स्थान बनाए। उसके पश्चात् सत-असत् स्वरूप आत्मा से मन को उत्पन्न किया। फिर ऐसे अहंकार तत्व को उत्पन्न किया, जो परमात्मा के प्रति भी अहंकार भाव प्रदर्शित किए बिना नहीं रहता। हे मनु ! विश्वकर्मा प्रभु के द्वारा रचा जाने वाला यह विश्व ब्रह्माजी के द्वारा रचा हुआ कहा जाता है।

शौनक ने पुनः प्रश्न किया—हे सूतजी ! फिर किस-किस तत्व की उत्पत्ति हुई। सृष्टि का यह वर्णन बहुत अद्भुत होने के कारण जानने योग्य भी है। इससे सृष्टि के रहस्य का आवश्यक उद्घाटन भी होगा।

सूतजी ने कहा—हे मुने ! ब्रह्माजी ने सोचा प्राणियों को कार्य करने के लिए किसी विशेष तत्व की आवश्यकता होगी। उन्होंने एक ऐसा तत्व उत्पन्न किया, जो सत, रज, तम तीनों गुणों से सम्पन्न हो। उन्होंने बुद्धि का निर्माण किया, जो विषयों का चिन्तन करती है। सतोगुण द्वारा आत्मज्ञान, ईश्वरीय ज्ञान तथा शुभ कर्मों में बुद्धि प्रवृत्त होती है। रजोगुण की अधिकता वाली बुद्धि सुख भोग की ओर प्रवृत्त कराती है। तभी वह सुख की प्राप्ति को अग्रसर रहता है और अशुभ कर्मों से बचने की चेष्टा करता है। किन्तु तमोगुणी बुद्धि तो अत्यन्त विनाश का कारण होती है, उसके कारण मनुष्य पापकर्मों की ओर प्रवृत्त होता है और हिंसा, चोरी, अपहरण आदि कुकर्मों में लीन रहता है। हे शौनकजी ! जितने भी अनैतिक कार्य होते हैं, वे सब तमोगुणी बुद्धि के ही परिणाम हैं। बुद्धि के साथ तीनों गुणों को बनाने के पश्चात् ब्रह्माजी ने पांच इन्द्रियों को बनाया। वे शब्द, स्पर्श, श्रवण, दर्शन और गन्ध ग्रहण करती हैं। इनका वर्णन तुम्हारे प्रति पहले किया जा चुका है।

बुद्धि और इन्द्रियां यह छः तत्व अत्यन्त उपयोगी और बहुत प्रसिद्ध हैं। इनके बिना जीवों का काम नहीं चल सकता। शरीर को चलाए रखने के लिए इनकी आवश्यकता है। इन तत्वों के सूक्ष्म अवयवों को उन्हीं के सूक्ष्म विकारों में करके ब्रह्माजी ने विभिन्न नाम-रूप वाले प्राणियों की रचना की है। वे सभी सूक्ष्म अवयव आकार धारण कराते हैं। इसलिए शरीर को मूर्ति भी कहा जाता है। वस्तुतः आकाशादि पंच महाभूत अपने-अपने कर्मों और विषयों को साथ रखते हुए उत्पन्न होते हैं। इसलिए उनका महत्व सर्वाधिक है।

सभी प्राणियों का निमित्त अहंकार और मन अपने सूक्ष्म रूपों में व्यक्त होता है। इस प्रकार अहंकार, महत्व और पंच तत्वों के देह रचना वाले अंशों के द्वारा इस विश्व का प्राकट्य होता है।

ईश्वर ने स्वयं ही सभी के नाम और कर्म आदि का निर्धारण किया और उसी के अनुसार उनकी अलग-अलग संरचनाएं निश्चित की गई। विश्वकर्मा जी की प्रेरणा से ब्रह्माजी ने देवगणों एवं समस्त देहधारियों की रचना की और सनातन काल से वेद विहित यज्ञों को भी प्रकट किया। तत्पश्चात् यज्ञों के लिए साधनों की

आवश्यकता समझी गई।

ब्रह्माजी ने सोचा अग्नि, वायु आदि की अपेक्षा है। उनकी रचना के साथ संसार को प्रकाशित करने वाले सूर्य की रचना हुई तथा सूर्य से ही ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद का प्रचालन किया गया। उसके पश्चात् काल विभाग हुआ, अर्थात् संवत्सर, मास, पक्ष, दिवस आदि में समय को विभाजित किया गया। फिर स्थूल रचना के कार्य में ब्रह्माजी प्रवृत्त हुए। उन्होंने समुद्र, पर्वत तथा समतल भूमि, विषम भूमि आदि का निर्माण किया।

हे शौनक ! इस सबको रचने के पश्चात् ब्रह्माजी सोचने लगे कि परमात्मा स्वरूप विश्वकर्मा के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने का भी कुछ साधन होना चाहिए। उनके मन में आया कि तपश्चर्या का विधान बनाया जाए। इसके साथ ही प्रभु पूजन, साधना, मन्त्र जप एवं स्तुति आदि के लिए वाणी की आवश्यकता हुई, इसलिए उन्होंने मन्त्रमयी वाणी को प्रकट किया।

# जीवन-मृत्यु व्याख्यान

सूतजी से प्रभु ने पुनः प्रश्न किया—हे देव ! यह बताने का कष्ट करें कि जीव जन्म देह धारण करता है तब उसकी उत्पत्ति और वृद्धि किस प्रकार होती है ? गर्भ की पीड़ा को सहन करता हुआ गर्भ से निकलकर वृद्धि को किस प्रकार प्राप्त होता है तथा अन्त में उसका अवसान कैसे हो जाता है ?

सूतजी बोले—हे मुने ! आपके प्रश्न सभी जिज्ञासा योग्य हैं और जन्म-मरण सम्बन्धी यह प्रश्न तो विशेष रूप से जिज्ञासा-मय है। अपने सभी प्रश्न ध्यानपूर्वक सुनो ! वस्तुतः यह संसार चक्र नष्ट न होने वाला होता हुआ भी विलीन हो जाता है। तब इसकी स्थिति कहीं भी प्रतीत नहीं होती। शरीर की स्थिति के विषय में कहता हूं—इसमें स्थित पित्र कुपित होकर बिना ईन्धन के ही तीव्र वायु से दीप्त होता हुआ सभी मर्म स्थानों का भेदन करता है। शरीरस्थ उदान वायु पर वर्तमान रहकर समस्त जलीय भक्ष्य पदार्थों की अधोगति को रोकने में समर्थ होता है। उस समय देहस्थ जीवात्मा निकलने का उपक्रम करता है। हे मुने ! जिस मनुष्य ने अन्न, जल एवं रसादि तृप्तिकारी पदार्थों का दान किया हो, उसे वह मरण काल आपातकाल प्रतीत नहीं होता, वरन् उस समय उस जीवात्मा को दुःख नहीं होता। क्योंकि पवित्र मन वाले पुण्यात्मा मनुष्य श्रद्धापूर्वक अन्नादि का दान करते हैं, वे उस समय अन्नादि के न रहने पर तृप्त होते हैं।

शौनकजी ! ऐसे जीव वायु के द्वारा अग्रसारित किए जाने पर कर्मफल

भोगरूपी यन्त्रणाओं की प्राप्ति हेतु माता-पिता के बिना होने वाले अन्य शरीर को धारण करते हैं। वह शरीर पूर्व शरीर के समान वय, अवस्था और संस्थान वाला होता है। तदुपरान्त यमदूत उन्हें अपने दारुण पाश में बांधकर, दण्ड प्रहार करते हुए दक्षिण की ओर खींचते हुए ले जाते हैं। फिर उन्हें कर्मानुसार अग्नि आदि से व्याप्त गर्तों में धकेल दिया जाता है। दुखदायी नरकों में भयंकर अपराध करने वाले पापी डाले जाते हैं। नरक के दुःख भी एक जैसे नहीं होते, महापापियों को घोर कष्ट वाले भयंकर नरकों की तथा अल्प पाप वालों को सामान्य दुःख वाले नरकों की प्राप्ति होती है। बारह दिनों तक इस प्रकार से कष्ट भोगने के पश्चात् यमराज के दर्शन होते हैं।

शौनकजी ! उस समय यमराज का रूप भी उन्हें अत्यन्त भयावना दिखाई देता है। वे यमराज जीव के कर्मानुसार उसको भविष्य में दिए जाने वाले दण्ड का विधान करते हैं। मिथ्यावादियों, धन, स्त्री, माता व पिता आदि को कष्ट देने वालों को रौरव नरक में डाला जाता है। गुरु पत्नी के साथ संसर्ग करने वाले को भी उसी नरक की प्राप्ति होती है। अन्यान्य पाप-कर्मों में अन्यान्य नरकों का विधान है। उन नरकों को भोगने के पश्चात् तिर्यक् योनि में जन्म लेना होता है। जबरदस्ती संभोग और अपहरण करने वाले आदि दुष्कर्म करने वालों को महारौरव नरक की प्राप्ति होती है।

## रौरव व महारौरव का विवरण

उस भयंकर ज्वाल-माल से युक्त भूमि पर यमदूत पापियों को हाथ-पांव बांधकर डाल देते हैं, तब उन्हें उसमें लेटे रहना पड़ता है। असहनीय होते हुए भी वे उस भूमि से उठ नहीं पाते। वहां से हटने का सुयोग भी मिल जाता है और वे वहां से अन्यत्र ले जाए जाते हैं, तब उस मार्ग में काक, गिद्ध, उलूक, बिच्छू आदि उसे नोंच-नोंचकर खाते हैं। उन पापियों को उस प्रकार के कठोर दण्डों की प्राप्ति हजार-हजार वर्ष तक होती है। उस कष्ट के पश्चात् ही वे वहां से छूट जाते हैं। इस प्रकार रौरव और महारौरव नरकों के दुःख भोगों के विषय में मैंने आपको बताया।

शौनकजी ! अब तमस नामक नरक का वर्णन आपके प्रति करता हूं। यह नरक महारौरव के पीछे है और उसी के समान अत्यन्त विशाल है। अन्तर यह है कि महारौरव अत्यन्त तप्त है, वहां की धरती दहकती है। किन्तु तमस नाम का यह नरक अत्यन्त शीतल है। यहां की धरती बरफ से भी अधिक ठण्डी और असहनीय है। सर्वत्र अन्धकार ही अन्धकार रहता है। प्राणी इधर से उधर भटकते रहते हैं। शीत की अधिकता के कारण उसकी पीड़ा से बचने का उपाय भी कुछ दिखाई नहीं देता। शीत की भयंकरता होती है कि सब कांपते, ठिठुरते रहते हैं। इसके साथ ही उन्हें न कुछ भोजन का साधन मिलता है, न पीने का। भूख-प्यास की वेदना से तड़पते रहते हैं।

हे मुने ! वहां ऐसा दारुण पवन चलता है, जो हिमखण्डों को सदा बहाता-बिखेरता रहता है। उसके कारण अस्थियों में टूटन उत्पन्न होती रहती है, पके फोड़े के समान

भयंकर पीड़ा होती है। अस्थियों के टूटने और उनके जोड़ खुलने से फटी हुई त्वचा अधिक कष्ट देती है।

हे शौनकजी ! तमस नामक यह नरक रौरव नरक से भी अधिक दुःखदायी है। भूख-प्यास से त्रस्त प्राणी मज्जा और रक्त का भोजन पान करते हैं। इस कारण उनकी वेदना बढ़ जाती है। त्वचा पर स्थान-स्थान पर फटने की धारियां, छेद आदि हो जाते हैं। इस प्रकार उन्हें सदैव अत्यन्त कष्ट में रहना होता है। जब उनके पापों का भोग पूरा हो जाता है, तभी वहां से छुटकारा मिलता है। यह नरक और भी विचित्र है। तमस के पीछे की ओर स्थित है। यह नरक कुम्हार के चाक के समान निरन्तर घूमता रहता है। वहां पहुंचे हुए पापियों को सब समय चक्कर आते हैं और वे बार-बार उठ-उठकर गिर पड़ते हैं। उसके पश्चात् उन पापियों को कालूसत्र के द्वारा काटा जाता है। उस वेदना से प्राणी बुरी तरह छटपटाता है। उसे यथार्थ की स्थिति का भी चेत नहीं रहता।

ऐसे मनुष्य उस नरक में पहुंचने पर कालसूत्र के द्वारा काटे जाते हैं। पांवों से मस्तक तक एक-एक करके प्रत्येक अंग की बोटी-बोटी तक काटी जाती है। प्रत्येक अंग के सौ-सौ टुकड़े होने पर जीव हाहाकार करता हुआ छटपटाता है, फिर भी उसके प्राण मुक्त नहीं हो पाते। वरन् कुछ ही समय में काटे गए वे अंग परस्पर जुड़ जाते हैं। तदनन्तर उसी प्रकार पुनः बोटी-बोटी काटी जाती है। इसमें किती भयानक पीड़ा होती होगी, यह अनुमान तो इस वर्णन से ही लग सकता है।

हे शौनकजी ! इस नरक में भी पापियों को एक हजार वर्ष पर्यन्त कटते-जुड़ते और वेदना भोगते हुए रहना पड़ता है। अथवा जब तक पापों का भोग पूरा नहीं हो जाता, तब तक उसमें पड़े रहना अनिवार्य होता है।

## नरक की यातना

हे मुनिवर ! यह नरक उसी के निकट पीछे की ओर विद्यमान है। इसमें जाने वालों को अत्यन्त भीषण दुःख भोगने होते हैं। इसमें वे मनुष्य ले जाए जाते हैं, जो स्वधर्म में तत्पर मनुष्यों को अपने-अपने धर्म पालन में विघ्न-बाधाएं उपस्थित करते हैं। शुभ कर्म करने वाले याज्ञिक, योगी, संन्यासी, भक्तिरत, व्रतनिष्ठ, तपोनिष्ठ, ज्ञानवान, दूसरों पर दया करने वाले व्यक्तियों को जो पीड़ित अथवा तिरस्कृत करते हैं उनके लिए भी यही नरक उपयुक्त माना गया है।

हे मुने ! जो अहंकारी मनुष्य अपने माता-पिता आदि को तीर्थयात्रा, व्रत, तपश्चर्या आदि के मनोनुकूल में सहायक नहीं होते, वरन् अपने दम्भ अथवा धन के लोभ के कारण रोकते हैं, वे भी इस नरक के भागी होते हैं। जो पुत्रादि सन्ततिवर्ग अपने पिता, माता आदि को किसी लोभवश मारने का उपक्रम करते, गाली देते, हिंसा करते और उनके संचित धन को, उनकी इच्छा न होते हुए भी छीन लेते हैं, अथवा छल-प्रपंच द्वारा हड़प लेते हैं, उन्हें भी इसी नरक में पड़ना होता है।

हे शौनकजी ! जो पापी मनुष्य देव-प्रतिमाओं को खण्डित करते, उठाकर फेंक देते अथवा बेचकर धन संचय करते हैं, उनका वह पाप द्वारा उपार्जित धन कालान्तर में नष्ट हो जाता है और मरने पर ऐसे व्यक्तियों को इसी अप्रतिष्ठित नरक में, यमदूत दारुण पाश में बांधकर ले जाते हैं। वह नरक भी चक्र के समान है, जिस पर चढ़ा हुआ पापी सब समय घूमता रहता है। उस घटी यन्त्र की गति अति तीव्र होती है, जिस पर घूमने के कारण मूर्च्छना की प्राप्ति होती है, उन पापियों की आंतें मुख तक निकल पड़ती हैं, रक्त की धारा-सी बहती है। किन्तु इस विकृति का अन्त नहीं हो पाता। जब तक पापों का फल भोगना समाप्त नहीं होता, तब तक इस नरक से छुटकारा नहीं हो पाता। यहां भी फल-भोग की अवधि सामान्यतः एक सहस्र वर्ष ही है। इसमें भी प्राणी अत्यन्त भ्रान्त, अत्यन्त पीड़ा ग्रस्त रहता है।

हे शौनकजी ! अब आप सब नरकों में अत्यधिक प्रसिद्ध तथा अत्यधिक कष्टकारी असिपत्र वन नामक नरक का वर्णन सुनें। यह नरक पृथ्वी को एक हजार योजन पार करने पर मिलता है। यह इतना भयंकर है कि सब समय प्रज्वलित अग्नि से व्याप्त रहता है। इसकी ज्वाला कभी शान्त नहीं होती। ऊपर से सूर्य की प्रचण्ड किरणें भी उस उत्ताप को अधिक बढ़ाए रहती हैं।

हे मुनीश्वर ! उसके भीतर एक अत्यन्त रमणीक मनोहर वन है, जो दूर से अत्यन्त आकर्षक और सुखदायक प्रतीत होता है। उसके आकर्षण के कारण, निकट पहुंचा हुआ जीव समझता है कि अवश्य ही सुख मिलेगा। किन्तु उसमें प्रवेश करते ही प्राणी को पता चल जाता है कि अब अपार कष्टों का भोग उपस्थित होने वाला है। उस वन में अनेक सुन्दर वृक्ष हैं, जिनके पत्ते अत्यन्त चिकने प्रतीत होते हैं। किन्तु इसके विपरीत, सभी वृक्षों के पत्ते तलवार की धार के समान तीक्ष्ण किनारे वाले हैं, और उस वन में अत्यन्त बलवान तथा भयंकर रूप वाले कुत्ते सदा भौंकते रहते हैं। उनकी विशाल दाढ़ें सिंह के समान तीव्र होती हैं।

उस वन की भूमि बहुत गर्म है, उसी प्रकार जैसे गर्म पिघलता हुआ लोहा होता है। उसमें प्रवेश करते ही पांव जलते हैं और जो उष्ण वायु चलता है, वह उस वन में विद्यमान वृक्षों के तीक्ष्ण धार वाले पत्तों को वेग से पापात्माओं पर गिराता है, जिससे तुरन्त अंग कट जाते हैं तथा उनमें अत्यधिक पीड़ा होती है। तदनन्तर वह प्राणी वहां की जलती हुई भयंकर अग्नि में डाल दिया जाता है। उस समय उसकी जीभ मुख से बाहर निकलकर भूमिस्थ अग्नि को चाटने लगती है। हे शौनक जी, इस प्रकार पीड़ा ग्रस्त उस प्राणी पर, वहां विद्यमान कुत्ते भी झपट पड़ते हैं और उसके सभी अंगों को छिन्न-भिन्न कर डालते हैं। उस समय भूख-प्यास से पीड़ित, अग्नि से दग्ध तथा श्वानों के द्वारा भग्न अंगों वाला वह जीव रोता-चिल्लाता रहता है।

हे मुने ! असिपत्र वन नामक नरक की प्राप्ति प्रायः उन मनुष्यों को होती है, जो ब्रह्मचर्य-पालन की अवस्था में या ब्रह्मचारी नामधारी होकर भी अपना व्रत खण्डित

कर लेते हैं। अथवा वे तपस्वी, योगी, संन्यासी आदि भी होते हैं, जो उस रूप में भी तपश्चर्या से हीन, योगादि साधनों से भ्रष्ट तथा पर-स्त्री संभोग एवं वासना सभी भोगों में रुचि रखते हैं। ऐसे ढोंगियों को मरणोपरान्त यम के दूत इसी नरक में डालते हैं।

जो लोग दूसरों को विश्वास में रखकर उनके साथ विश्वासघात करते हैं तथा हिंसा, असत्य, मिथ्याचार आदि में चित रखते हैं, उन्हें भी इस नरक में पड़ना होता है। यहां भी एक सहस्त्र वर्ष पर्यन्त नरक की पीड़ा भोगनी होती है।

सूतजी ने कहा—हे शौनकजी ! असिपत्र वन के पीछे कुम्भ अथवा कुम्भीपाक नामक नरक विद्यमान है। उसके चारों ओर भीषण ताप है, सर्वत्र अग्नि की लपटें उठती रहती हैं। उसमें खौलते हुए तेल में प्राणी को गिराया जाता है। उस जलते हुए तेल में पापात्मा को औंधा मुख करके लटकाया जाता है, इसलिए उसकी त्वचा, मज्जा, रस, रक्त आदि सभी धातुएं जलकर सूख जाती हैं। उसके बाद यम के दूत उस पर तप्त लौह दण्ड से भी प्रहार करते हैं, जिससे उसके अंग छिन्न-भिन्न हो जाते हैं। कपाल, नेत्र, नासिका, मुख आदि अवयव एवं अस्थियां भी विदीर्ण हो जाती हैं। इस प्रकार त्रस्त होने पर उन्हें निकाला जाता है।

हे मुने ! इस नरक में वे पापी डाले जाते हैं, जो धर्मशास्त्रों, तीर्थों, देव मन्दिरों और प्रतिमाओं को दूषित करते हैं। किसी पतिव्रता से बलात्कार या रतिक्रिया करने वाले, उसे मिथ्या दोष देने वाले तथा महिलाओं पर या दुर्बलों पर भयंकर अत्याचार करने वाले क्रूरकर्मी पापी भी इस नरक के अधिकारी होते हैं। यह वन अधिक भयंकर और पीड़ाप्रद है। इस नरक का आकार कुम्भ के समान है, इसीलिए इसे कुम्भीपाक नाम दिया गया है। अन्य नरकों की अपेक्षा, इस नरक में अधिक कष्ट और क्लेश भोगना पड़ता है। इसको भोगे बिना कोई भी प्राणी बाहर नहीं निकल सकता। इस प्रकार मैंने इन भयंकर नरकों का वर्णन आपके प्रति विस्तारपूर्वक किया है।

# धर्म-आयु व समय चक्र

शौनकजी ने कहा—हे महाप्राज्ञ सूतजी ! आपने ब्रह्माण्ड की सृष्टि तथा ब्रह्माजी के जन्म के विषय में बताया था। अब आप उनकी आयु चक्र के विषय में बताने की कृपा करें। सूतजी बोले—शौनक ! इस विषय में तत्व-ज्ञानियों से मैंने जो कुछ सुना है, वह सुनो। ब्रह्माजी की आयु का परिमाण दो परार्द्ध तक का है। आठ हजार वर्षों का प्रजापति का एक अहोरात्र होता है। इसी परिमाण से ब्रह्माजी की आयु सौ वर्ष की है।

शौनक ने कहा—सूतजी ! आपने ब्रह्माजी की आयु सौ वर्ष की बताई। इन

वर्षों की गणना किस प्रकार की गई ? यह तथ्य विस्तार से कहने की कृपा कीजिए।

सूतजी ने कहा—हे महामुने ! मनुष्य के पलक झपकने में जितना समय लगता है, उसे निमेष कहते हैं। गिरकर उठे हुए पलक के समय को उन्मेष कहते हैं। यहां निमेष का लिया गया है। अठारह निमेष की एक काष्ठा होती है। तीस काष्ठा की एक कला मानी गई है। तीस कला का एक मुहूर्त और तीस मुहूर्त का एक अहोरात्र होता है। अहोरात्र का अर्थ है एक रात और एक दिन, दोनों के मिलने पर जो समय होता है, वही अहोरात्र है। उस अहोरात्र रूपी समय का विभाग मनुष्यों और देवताओं के हित में सूर्य करते हैं।

हे शौनक जी ! उन तीस अहोरात्र का एक मास होता है। मनुष्यों के इस मास के बराबर पितरों का एक अहोरात्र समझना चाहिए, मानव मास में दो पक्ष होते हैं, अर्थात् पन्द्रह दिन रात्रि का एक पखवारा। यह दो पक्ष कृष्ण और शुल्क कहे जाते हैं। इनका ज्ञान चन्द्रमा से होता है। कृष्ण पक्ष में अन्धेरी रात होती हैं और शुक्ल पक्ष में उजाली। मनुष्यों का कृष्णपक्ष पितरों के कर्म का दिन तथा मनुष्यों का शुक्ल पक्ष पितरों के सोने के लिए रात्रिरूप होती है।

हे मुने ! मनुष्यों के वर्ष को संवत्सर भी कहते हैं। यह संवत्सर देवताओं का एक अहोरात्र होता है। मनुष्यों के वर्ष में दो अयन होते हैं—उत्तरायन और दक्षिणायन। उत्तरायन का समय मकर संक्रान्ति से होकर मिथुन की संक्रान्ति तक का होता है और दक्षिणायन का समय कर्क की संक्रान्ति से धनु की संक्रान्ति तक का होता है। यह दोनों अयन एक सौर वर्ष का परिमाण समझो। चान्द्र वर्ष प्रतिपदा से पूर्णिमा पर्यन्त रहने वाले मास की गणना से चलता है। इसमें चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण, भादों, आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष, माघ और फाल्गुन—यह बारह मास होते हैं। सौर वर्ष में बारह राशियां। मेष, वृषभ, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ और मीन—यह क्रमशः वर्तती हैं।

हे शौनक ! चार हजार वर्षों का सतयुग है। युग के आरम्भ और युग के अन्त में चार-चार सौ वर्षों की सन्ध्या और सन्ध्यांश माना गया है। इस प्रकार से चौदह लाख चालीस हजार वर्ष के सतयुग प्रमाण में अठाईस हजार वर्ष के सन्ध्या सन्ध्यांश को मिलाने पर सत्रह लाख अठाईस हजार वर्षों का सतयुग समझो।

इसी तरह तीन हजार वर्षों त्रेतायुग उसके छः सौ (तीन-तीन सौ) वर्ष सन्ध्या और सन्ध्यांश के जुड़ने पर तीन हजार तीन सौ दिव्य वर्षों का त्रेतायुग हुआ। इस प्रकार त्रेतायुग बारह लाख छियानवे हजार मानवी वर्षों का होता है।

द्वापर युग दो हजार दिव्य वर्षों का, उसके चार सौ वर्ष सन्ध्या और सन्ध्यांश के इस प्रकार आठ लाख चौंसठ हजार मानवी वर्षों का हुआ।

कलियुग केवल एक हजार दिव्य वर्षों का तथा एक-एक सौ दिव्य वर्ष सन्ध्या और सन्ध्यांश के इस प्रकार कलियुग का कालमान, चार लाख बत्तीस हजार मानवी

वर्षों का समझना चाहिए।

हे मुने ! ४ युगों को मिलाकर सभी के सन्ध्या और सन्ध्यांश सहित बारह हजार दिव्य वर्ष व्यतीत हुए। इनके मानवी वर्ष हुए तैंतालीस लाख बीस हजार वर्ष। इसी काल प्रमाण को महायुग कहते हैं। देवताओं के एक हजार युगों को ब्रह्माजी का एक दिन और एक हजार युगों की ही रात्रि होती है। उस रात्रि के आने पर ब्रह्माजी सुखपूर्वक शयन करते हैं। फिर रात्रि का अन्त होने पर जागते हैं और अपने मन को सृष्टि रचना में लीन करते हैं।

हे शौनक ! महर्षि भृगु के कथनानुसार सर्वप्रथम आकाश, आकाश से वायु, और वायु से अग्नि की उत्पत्ति होती है। अग्नि से जल और जल से पृथ्वी का उत्पन्न होना कहा है। इनके गुण क्रमशः शब्द, स्पर्श, प्रकाश या दर्शन शक्ति, रस और गन्ध हैं। पहले बारह हजार दिव्य वर्षों का देवताओं का एक युग कहा था। उसके इकहत्तर गुने अर्थात् आठ लाख बावन हजार दिव्य वर्षों का एक मन्वन्तर होता है। उस एक मन्वन्तर पर्यन्त एक ही मनु सृष्टि संचालन में लीन रहते हैं।

ब्रह्माजी के पुत्र स्वायम्भुव मनु थे। उनके वंश में क्रमशः स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष और वैवस्वत। इन सात मनुष्यों ने अपने-अपने मन्वन्तर में समस्त चराचर जगत् की उत्पत्ति की।

हे शौनक ! वस्तुतः मन्वन्तर और उत्पत्ति प्रलय असंख्य है। उन सभी का वर्णन किया जाना किसी के वश की बात नहीं है। परमेष्ठी विश्वकर्मा खेल के समान बारम्बार इसी प्रकार रचना और विलय के कार्य में लीन रहते हैं।

शौनकजी ने पुनः प्रश्न किया—सूतजी आपने सतयुग आदि चार युग बताए। इनके धर्मादि व्यवहारों के विषय में भी कुछ कहिए।

सूतजी बोले—हे शौनकजी ! सतयुग में धर्म अपने सभी अंगों से अर्थात् चारों चरणों से पूर्ण रहता है। सभी प्राणी परस्पर धर्म का व्यवहार करते हैं। उस युग में अधर्म तो नाममात्र को भी नहीं रहता। किन्तु अन्य युगों में अधर्म के उत्पन्न होने से धन तथा विद्या आदि के उपार्जन और संचयन द्वारा धर्म का बल क्षीण होता है।

मिथ्यात्व, कपटपूर्ण व्यवहार आदि के कारण प्रत्येक युग में क्रमशः एक-एक चरण का ह्रास होता जाता है। इस प्रकार त्रेता में धर्म के तीन ही चरण रहते हैं। द्वापर में दो और कलियुग में तो एक ही चरण शेष रह जाता है। वह एक चरण भी पापों की अधिकाधिक वृद्धि के कारण नहीं होने के समान है।

हे शौनकजी ! मैं तुम्हें युगानुसार मनुष्य की आयु का परिमाण भी बताए देता हूं। सतयुग में सभी व्यक्ति धर्म का आचरण करते हुए अपने मनोरथों को प्राप्त करते हैं और रोग रहित तथा पूर्ण रूप से स्वस्थ तथा प्रसन्नचित्त रहते चार सौ वर्षों तक जीवित रहते हैं।

त्रेता में धर्म का एक चरण घटने के कारण मनुष्य विषयासक्ति की ओर बढ़ते

हैं, जिससे रोग उत्पन्न हो जाते हैं। स्वास्थ्य और प्रसन्नता में भी कुछ हानि हो जाती हैं, इसलिए उस युग में मनुष्य की आयु तीन सौ वर्ष की होती है।

द्वापर में पाप की अधिक वृद्धि से रोगोत्पत्ति अधिक होती है, प्रसन्नता में भी कमी हो जाती है। मनुष्य संघर्षरत रहते हैं, इस कारण उस युग में मनुष्य की आयु केवल दो सौ वर्षों की ही शेष रह जाती है।

हे मुने ! अब कलियुग में आयु का प्रमाण सुनो। इसमें धर्म का अत्यन्त ह्रास होता है, अधर्म, असत्य और विषयासक्ति बढ़ जाती है। चोरी, डकैती, अपहरण, हिंसा, मिथ्याचार आदि के कारण आधि-व्याधि की अत्यधिक वृद्धि होती है।

विस्तार की मनोवृत्ति बढ़ने से भयंकर रक्तपात होते हैं। इन कारणों से मनुष्य की परमायु सौ वर्ष की मानी जाती है। इसका तात्पर्य है कि अधिसंख्य मनुष्य तो सौ वर्ष की आयु तक पहुंच ही नहीं पाते, वरन् अल्प आयु में ही मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। यह आयु-प्रमाण सामान्य रूप से कहा गया है। विशेष अवस्थाओं में इस प्रमाण में न्यूनाधिक हो जाता है। ज्ञानीजनों के द्वारा सदैव शुभ कर्म होते हैं, इसलिए उनकी आयु सदाचार के कारण बढ़ जाती है।

आयु का सम्बन्ध मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य से भी है। इनके अस्वस्थ होने पर आयु का घटना स्वाभाविक है। योगीजन अपने योगाभ्यास आदि के द्वारा श्वांस रोकने में समर्थ रहते हैं और अपने श्रेष्ठ अभ्यास तथा भगवान् में विश्वास के कारण अपनी आयु हजारों वर्ष की करने में समर्थ हो जाते हैं। वे किसी भी युग में निश्चित आयु-परिमाण का उल्लंघन कर सकते हैं।

हे शौनकजी ! युगानुसार धर्मों में विभिन्नता होती है। प्रत्येक युग का धर्म पृथक्-पृथक् है। उनके उपासना क्रम भी परिवर्तित रहते हैं। वस्तुतः युगों के ह्रास से धर्म का भी ह्रास हो जाता है और उनका स्वरूप बदल जाता है। इस कारण उपासना-पद्धति भी परिवर्तनशील है। इसलिए सतयुग में तपस्या करना साधना का परम साधन है। त्रेता युग में साधकों को ज्ञान का अवलम्बन करना चाहिए। द्वापर युग में यज्ञानुष्ठान की महिमा अधिक मानी गई है। इसलिए उस युग में बड़े-बड़े यज्ञ होते रहे। कलियुग में दान को अधिक महत्व दिया गया है। दानशील मनुष्य ही धार्मिकों में श्रेष्ठ समझा जाता है। किन्तु सभी युगों में सभी धर्म-कर्म का सुन्दर स्वरूप देखा जा सकता है। धर्म मति वालों को वेद-विहित कर्मों को करना चाहिए। क्योंकि उनमें वर्णित सभी साधन मनुष्यों के लिए सदैव उपयुक्त होते हैं।

हे मुने ! मैंने सुना था कि कलियुग में श्रेष्ठ धर्म भक्ति है। अन्यान्य कर्मों के करने में बहुत कष्ट होता है, समय भी बहुत लगता है। फिर भी उनसे सिद्धि कभी मिलती है, कभी नहीं मिलती। योग-साधना, तपश्चर्या आदि सभी अधिक कष्टकारी हैं। कभी-कभी मनुष्य उनको करते-करते थक जाता है। अनेक साधक फल के सुलभ न होने के कारण उन कर्मों को छोड़ देते हैं। किन्तु भक्ति में कुछ

कठिनाई नहीं है, वह तो अत्यन्त सुलभ साधन है।

भगवान् के प्रति पूर्ण रूप से समर्पण भाव होने से ही सब मनोरथ सिद्ध हो जाते हैं। किन्तु भक्ति में निस्पृह भाव होना चाहिए। फल की कामना नहीं करनी चाहिए।

हे शौनकजी ! यदि भगवान् के चरणों में मन रम गया तो सर्वसिद्धि मिल गई समझना। क्योंकि भगवान् तो भक्त की भावना देखते हैं। भावना शुद्ध हुई तो सफलता में देर नहीं लगती। एक बार भगवान् श्रीकृष्ण ने भी जो ज्ञान उद्धव को दिया था, उसके विषय में मैंने सुना था कि भक्ति से सर्वश्रेष्ठ फल मिलता है।

हे मुने ! अन्यान्य कर्मों को मानने वालों को तो उनके कर्मानुसार ही फलों की प्राप्ति सम्भव है। उन्हें जो लोक मिलते हैं, वे सभी आदि-अन्त वाले हैं। उनमें जाकर अपना धर्म फल भोगने के पश्चात् वहां से निलकना या गिरना पड़ता है। किन्तु भक्त को तो भगवान् का ही भरोसा होता है, इसलिए उसके श्रेय-प्रेय को वे स्वयं ही देखते हैं।

भक्तों को अपनी किसी भी प्रकार की चिन्ता नहीं करनी होती। वे तो भक्ति के अनुयायी रहकर फल की भी आकांक्षा नहीं करते। इसीलिए भक्ति समस्त साधनों में सर्वोत्तम साधन है। सभी प्रकार की आशा-अभिलाषा का परित्याग करके भगवान् के चरणों में ही मन लगाना चाहिए।

हे शौनकजी ! भक्त के लिए जो कर्तव्य कर्म हैं, वे कुछ कष्टकारी नहीं हैं। उसे मोह-ममता, क्रोध, तृष्णा आदि का त्याग कर देना चाहिए। किसी के प्रति ईर्ष्या, द्वेष रखना भी अनुचित है। किसी वस्तु के संग्रह में बुद्धि न रखे तथा मिथ्याभिमान का पूर्ण रूप से परित्याग कर दे। भक्त को सदा शान्त चित्त और प्रेममय रहना चाहिए। इसके साथ ही श्रद्धा और विश्वास भी भक्त के लिए प्रबल सम्बल सिद्ध होता है।

यह स्मरण रखने के योग्य तथ्य है कि श्रद्धा और विश्वास के बिना भी भक्ति की स्थिरता सिद्ध नहीं होती। बड़े-बड़े पुण्यात्मा भी श्रद्धा-विश्वास के बिना प्रभु-चरणों की प्राप्ति नहीं कर सकते। अश्रद्धा जब तक रहती है, तब तक मनुष्य की बुद्धि भी शुद्ध नहीं हो पाती और मन भी चलायमान रहता है।

हे शौनकजी ! मन की चंचलता ही सब पापों को जन्म देने वाली है। भक्ति में भी उसी से व्यवधान उपस्थित हो जाता है। जो लोग दृढ़ रूप से भक्ति करते हैं और भगवान् में ही चित्त लगाए रहते हैं, वे कभी पापों से दग्ध नहीं होते। उसी भक्ति के द्वारा भगवान् की प्रसन्नता और कृपा सहज ही मिल जाती है।

ऐसा भक्त जिस ओर देखता है, उसी ओर से आनन्द दिखाई देता है। वह जिस पर कृपा दृष्टि रखना चाहता है, उस पर स्वयं भगवान् भी अनुग्रह करते हैं। सांसारिक मनोरथ तो वैसे ही हैं, जैसे कोई स्वप्न में पड़ा हुआ मनुष्य कुछ प्राप्त कर ले। किन्तु

स्वप्न में प्राप्त की हुई कोई वस्तु प्राप्त तो नहीं हो जाती, क्योंकि वह मिथ्या है। मात्र भ्रम होने के कारण उसका कुछ भी अस्तित्व नहीं है।

इस कारण सांसारिक मनोरथों को प्राप्त करने योग्य न मानकर मनुष्य को भगवान् का ही स्मरण, कीर्तन, ध्यान आदि करना चाहिए। जिस भक्त के सर्वस्व एकमात्र भगवान् हैं, वही धन्य है, वही सब प्रकार से सफल कामना है।

शौनकजती ने प्रश्न किया—हे सूतजी ! जबकि अनेक ज्ञानी निर्गुण ब्रह्म की उपासना का उपदेश देते हैं, ऐसा प्रतीत होता है कि आप सगुण की उपासना को विशिष्ट मानते हैं, ऐसा क्यों ?

सूतजी बोले—हे शौनक ! तथ्य यह है कि भगवान् का सत्य स्वरूप निर्गुण है और वे ही सगुण रूप धारण करके लोक का समय-समय पर कल्याण करते हैं। भगवान् स्वयं कहते हैं कि निराकार ब्रह्म की उपासना में विशेष परिश्रम है। उसमें सिद्धि तब तक नहीं होती, जब तक मनुष्य नितान्त निरभिमान रहता हुआ, बाह्य विषयों से विरक्त नहीं हो जाता।

किन्तु यह सब धीरे-धीरे ही साध्य हो पाता है, इसलिए निराकार ब्रह्म में चित्त की अवस्थिति नहीं हो पाती। यही कारण है कि स्वयं ही पूर्ण समर्पण भाव को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं।

प्रभु की इच्छानुसार यदि मन स्थिर नहीं हो पाए तो उनकी महिमा का श्रवण, कीर्तन, मनन आदि अभ्यास करे। यदि वह भी न हो सके तो उनके प्रति ही अपने कृत कर्मों को समर्पित करे। यदि इसमें भी असक्त हो तो भगवान् की प्राप्ति का विचार ही करता रहे, उसके साथ जिस कर्म-फल की उत्पत्ति होती हो, उस फल की आशा छोड़ दे।

हे मुने ! यह सब भी अभ्यास ही है, इस प्रकार से अभ्यास करता हुआ मनुष्य धीरे-धीरे श्रेष्ठ भक्ति में अधिष्ठित हो जाता है। भक्त के लिए यह सामान्य कर्म ही उत्तरोत्तर कल्याणकारी होते जाते हैं। इस प्रकार, इन कर्मों को करने वाला भक्त भी प्रेम स्वरूपा भक्ति को प्राप्त कर लेता है।

# हिरण्यकशिपु की तप-साधना

हे शौनकजी ! कश्यपजी के जो सन्तान हुई उसकी चर्चा भी कर देता हूं। यह सन्तान अदिति से हुई। कश्यपजी की दो पत्नियां प्रसिद्ध थीं—अदिति और दिति। अदिति से देवगण और दिति से दैत्यगण हुए। चाक्षुष मन्वन्तर में जो तुषितादेव थे, वे पुनः अदिति से उत्पन्न हुए। वैवस्वत मन्वन्तर में बारह आदित्य हुए थे। कश्यप

ऋषि की द्वितीय पत्नी दिति से हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष—यह दो पुत्र हुए। दोनों ही महाबली थे। हिरण्यकशिपु के अत्यन्त पराक्रमी चार पुत्र हुए थे। (१) अनह्लाद, (२) ह्लाद, (३) प्रह्लाद, (४) संह्लाद।

प्रह्लाद परम वैष्णव तथा भक्तों में शिरोमणि थे। प्रह्लाद का पुत्र विरोचन भी प्रसिद्ध था। उसी विरोचन का पुत्र तीनों लोकों में ख्याति प्राप्त राजा बलि हुआ था, जिसे भगवान् ने वामन देव का वेश धारण करके वश में कर लिया था। उस राजा बलि के एक सौ पुत्र हुए, जिनमें बड़ा बाणासुर था। उस बाणासुर ने घोर तपस्या करके भगवान शंकर को प्रसन्न कर लिया था।

हे शौनक ! भगवान् ने वाराह रूप धारण करके पृथ्वी को समुद्र से खोज निकाला था, इससे कुपित होकर हिरण्याक्ष ने वाराह भगवान् से भयंकर संग्राम किया था। उस महादैत्य को वाराह प्रभु ने खेल-खेल में मार डाला।

शौनक ने कहा—सूतजी ! ब्रह्मापुत्र स्वायम्भुव मनु वंश किस प्रकार चला ? सूतजी बोले—शौनकजी ! मनु के दो प्रसिद्ध पुत्र हुए प्रियव्रत और उत्तानपाद, तीन कन्याएं हुईं। मनु-पत्नी शतरूपा सौभाग्यशालिनी थी, उसी से मनु का वंश चला। उन तीन कन्याओं के नाम आकूति, देवहूति, और प्रसूति थे। इनमें से आकूति का विवाह रुचि प्रजापति के साथ हुआ। देवहूति कर्दम ऋषि को ब्याही गई तथा प्रसूति दक्ष प्रजापति को।

आकूति से एक युग्म का जन्म हुआ। उसमें पुरुष रूप यज्ञपुरुष विष्णु ही हुए तथा नारी स्वरूपिणी लक्ष्मी की अंशभूता दक्षिणा हुई। देवहूति के परम ज्ञानी महर्षि कपिल हुए। जिन्होंने माता को ब्रह्मज्ञान का उपदेश दिया था। दक्ष पत्नी प्रसूति के भी अनेक कन्याएं हुई थीं, जिनमें एक कन्या शिवजी को ब्याही गई थी। किन्तु कालान्तर में दक्ष और शिव में परस्पर विद्वेष हो गया तथा सती ने दक्ष के यज्ञ में जाकर योगाग्नि में स्वयं को भस्म कर लिया था, जिससे कुपित होकर शिवगणों ने दक्ष के यज्ञ का विध्वंस कर दिया था। मनु के पुत्र प्रियव्रत विश्व में प्रसिद्ध हुए। उन्होंने धर्म और न्यायपूर्वक प्रजाओं का पालन किया। दूसरे पुत्र उत्तानपाद भी यशस्वी हुए। उनके दो रानियां थीं। एक रानी से धर्मज्ञ ध्रुव की उत्पत्ति हुई, इन्होंने दीर्घकाल तक घोर तपस्या करके भगवान् श्रीहरि को प्रसन्न कर लिया।

उसकी सौभाग्य वृद्धि को देखकर उशना कहा करता था कि अहो ! इसकी तपस्या की अद्भुत शक्ति है, जिसमें सप्तर्षिगण स्थित रहते हैं। उस ध्रुव से वृद्धि और भव्य शम्भु हुए। वृद्धि के पांच पुत्र रिपु, रिपुञ्जय, पुष्प, वृकस और वृकतेज नाम के हुए। रिपु के चाक्षुष की उत्पत्ति हुई। उस चाक्षुष नामक मनु ने दस श्रेष्ठ पुत्रों को जन्म दिया।

## हिरण्यकशिपु का जन्म

शौनकजी ने कहा—हे देव सूतजी ! हिरण्यकशिपु का पूरा वृत्तान्त विस्तृत रूप

से कहने की कृपा कीजिए।

सूतजी बोले—हे शौनक ! तुम्हें नृसिंह भगवान् के अवतरण की कथा सुनाता हूं। यह कथा सभी प्रकार के पापों का हरण करने वाली है। वस्तुतः भक्तों की कथा कहने सुनने से भी भगवान् प्रसन्न होते हैं। अतः उनसे सदैव सुख ही प्राप्त होता है। भगवान ने स्वयं कहा है कि मेरा निवास तो सदा वहीं रहता है, जहां भक्तगण मेरा गुणानुवाद कहते या कीर्तन करते हैं।

हे शौनकजी ! वाराह भगवान द्वारा हिरण्याक्ष का वध हुआ सुनकर हिरण्यकशिपु ने सोचा कि यह सब देवताओं की माया है। लोग यज्ञ आदि के द्वारा पुष्ट करते हैं, उपासक लोग नैवेद्य अर्पण द्वारा उन्हें सन्तुष्ट करते हैं और योगी आदि ध्यानादि कर्मों के द्वारा उनके अधिपति विष्णु को भगवान् मानकर स्तुतियों आदि के द्वारा उसे पुष्ट और समृद्ध करते हैं।

इसलिए आवश्यक है कि प्रजाजनों को आदेश दिया जाए कि कोई भी व्यक्ति, दैत्य, ऋषि-मुनि आदि यज्ञ, तप, दान, भजन, पूजन, ध्यान, स्तुति आदि न करे। इस आदेश का उल्लंघन करने वालों को मृत्यु-दण्ड दिया जाएगा।

दैत्य सैनिकों ने आज्ञा की पालनपूर्वक सर्वत्र घोषणा कर दी, साथ ही वे जहां हरि-भक्तों, मुनियों, ज्ञानियों आदि का निवास था, उन निवास स्थल आदि को नष्ट करने लगे। उससे बहुत-से झोंपड़े, घर भवन आदि नष्ट हो गए। उनका सब सामान लूट लिया गया। स्त्रियों का अपहरण, बालकों का वध किया गया। हृष्ट-पुष्ट दिखाई पड़ने वाले पुरुषों को बलपूर्वक बेगार में लगा दिया। वृद्धों से हिरण्यकशिपु की जय-जयकार कराई गई।

हे शौनकजी ! इसके पश्चात् हिरण्यकशिपु का संकल्प था कि अपने राज्य का विस्तार करता हुआ, स्वर्ग को भी अपनी सीमा में ले ले। इस प्रकार अजेय और शत्रु-रहित होने के विचार से मन्दराचल की एक निर्जन गुफा में जाकर घोर तपस्या आरम्भ की। उसने अन्न-जल का परित्याग कर दिया, केवल वायु-सेवन करता हुआ बहुत वर्षों तक खड़ा रहा। फिर उसने एक ही अंगूठे के बल खड़ा रहकर अनेक वर्ष व्यतीत कर दिए। उसका कठिन तप देखकर ब्रह्माजी विचलित हो गए और उसे दर्शन देकर बोले—वत्स ! तेरा कल्याण हो, मैं तुझ पर बहुत प्रसन्न हूं, इसलिए इच्छित वर मांग ले।

हंस पर आरूढ़ ब्रह्माजी के दर्शन करके हिरण्यकशिपु ने कहा—प्रभो ! समस्त स्थावर जंगम रूप विश्व के आप ही एकमात्र ईश्वर हैं। आपके दर्शन से मैं कृतार्थ हो गया और समझ गया कि मेरी कामनाएं पूर्ण होने का समय अब आ गया है। प्रभो ! आप मुझ पर प्रसन्न हैं और वर देना चाहते हैं तो यह वर दीजिए कि मैं आपकी सृष्टि में उत्पन्न हुए किसी भी देहधारी के द्वारा पराजित न हो सकूं, मारा न जा सकूं। बाहर-भीतर किसी भी स्थान पर, किसी भी समय, पृथ्वी या आकाश पर भी किसी

मनुष्य, दैत्य, देवता, या पशु आदि के द्वारा मारा न जाऊं। मेरा शासन सर्वत्र मान्य हो, सभी लोकपाल मेरे वश में रहें, जिससे कि मैं सदैव यश को प्राप्त करता रहूं।

ब्रह्माजी बोले—हे कश्यप ! तूने जो भी दुर्लभ वर मांगा है, वह सब मैं तुझे प्रदान करता हूं। यह कहकर ब्रह्माजी अन्तर्ध्यान हो गए। इधर वर प्राप्ति से उत्साहित और पुष्ट हुआ हिरण्यकशिपु अपने नगर में लौट आया और सोचने लगा कि अब सर्वप्रथम उस विष्णु को ही नष्ट करना है, जिसने मेरे भाई हिरण्याक्ष को मार डाला था। उसके मर जाने पर देवता भी बलहीन हो जाएंगे और मुझे शासक स्वीकार कर लेंगे। इस प्रकार अब तीनों लोकों पर मेरा ही शासन हो जाएगा। जब देवता, यक्ष, नाग, गन्धर्व, राक्षस आदि सभी वश में हो जायेंगे मैं जहां, जब जो कुछ भी चाहूंगा वही होगा, जिस वस्तु की इच्छा करूंगा वह स्वतः उपलब्ध हो जाएगी। मैं ही त्रिलोकीनाथ और सभी का एकमात्र ईश्वर कहलाऊंगा।

# नारायण भक्त प्रह्लाद

सूतजी बोले—हे शौनकजी ! हिरण्यकशिपु ने सब प्राणियों के अधिपतियों को जीतकर अपने अधीन कर लिया। अब वह अत्यन्त ऐश्वर्य सम्पन्न स्वर्ग में निवास करने लगा। देवराज इन्द्र के जिस दिव्य भवन का निर्माण स्वयं भगवान् विश्वकर्मा ने किया था, वहां से इन्द्र को भगाकर स्वयं रहने लगा। अब उसे सभी अप्सराएं सुलभ थीं, सभी प्रकार के सुख-भोग अनायास ही उपलब्ध थे। जो देवता उसके वश में पड़ गए वे दैत्यराज के आगे नतमस्तक रहते थे। सब ईश्वर के समान उसकी स्तुति करते। हे मुने ! इस प्रकार हिरण्यकशिपु सब लोगों का नाथ बन बैठा। उधर इन्द्रादि देवगण मारे-मारे फिरने लगे।

हिरण्यकशिपु के पुत्रों में प्रह्लाद अधिक गुणवान और श्रेष्ठ विचारों से सम्पन्न हुए। उन्होंने बाल्यावस्था से ही भगवान् के चरणों में चित्त लगा लिया। वे प्रत्येक क्षण उन्हीं का स्मरण किया करते। किन्तु हिरण्यकशिपु को उसकी ये बातें पसन्द नहीं थीं। एक दिन हिरण्यकशिपु ने भवन में खेलते हुए प्रह्लाद को बुलाकर अपने अंक में बैठाया और स्नेह भरे वचनों से कहने लगा—पुत्र ! तुमने क्या पढ़ा-लिखा, वह मुझे बताओ।

प्रह्लाद बोले—हे तात ! मैं भगवान श्री हरि का भजन, कीर्तन, स्मरणादि किया करता हूं। हे तात ! वही पाठ सर्वश्रेष्ठ है जिसमें भगवान् विष्णु का गुण-गान निहित हो। मुझे वही अधिक प्रिय है।

यह सुनकर हिरण्यकशिपु अपने मन में तो रुष्ट हुआ। किन्तु ऊपर से हंसता

हुआ बोला—पुत्र ! अभी तुम्हारी बुद्धि कच्ची है, इसलिए गुरु जो ज्ञान दें उसी को श्रेष्ठ मानकर ज्ञानवान बनने का प्रयत्न करो। भजन, कीर्तन आदि की तो अभी तुम्हारी अवस्था भी नहीं है।

प्रह्लाद ने कुछ उत्तर नहीं दिया। तब हिरण्यकशिपु दोनों दैत्य गुरुओं को बुलाकर बोला—आप इसका विशेष ध्यान रखिए। ऐसी शिक्षा दीजिए जिससे कि इसके विचार विष्णु-विरोधी हो जाएं। अभी इसकी बुद्धि कोमल है, इसलिए अपने अनुकूल की जा सकती है।

दोनों दैत्य गुरु ऐसा ही होगा कहकर चले गए। फिर उन्होंने प्रह्लाद को समझाया—राजकुमार ! तुम्हारे पिता बड़े प्रतापी हैं। विष्णु उनकी तुलना में कुछ भी नहीं हैं। इस समय वे ही त्रिलोकीनाथ, परमेश्वर तथा यज्ञपति हैं। सब ऋषि-मुनि अब उन्हीं की उपासना करते हैं। योगीजन उन्हीं का ध्यान करते हैं, भक्तजन भी उन्हीं की भक्ति करते हैं। तुम्हें भी उन्हीं का गुण-गान, उन्हीं का ध्यान, उन्हीं का कीर्तन करना चाहिए। पिता होने के नाते भी वे तुम्हारे पूज्य हैं।

प्रह्लाद बोले—यह सत्य है कि पिताजी पूज्य हैं। किन्तु त्रिलोकीनाथ और परब्रह्म परमात्मा तो वे नहीं हैं। हे गुरुवर ! मेरा मन तो भगवान् नारायण में लगा रहता है, सब समय वाणी भी उन्हीं का गुणगान करती रहती है। मैं प्रभु विष्णु की भक्ति कैसे छोड़ सकता हूं ?

सूतजी बोले—हे शौनक ! गुरुओं ने प्रह्लाद को बहुत समझाया, प्यार जताया, भय भी दिखाया, किन्तु वे अपने निश्चय से विचलित नहीं हुए। धीरे-धीरे समय बीतता गया, प्रह्लाद ने प्रत्यक्ष विरोध छोड़ दिया, उन्होंने सोचा कि गुरुजन का क्या दोष है ? इसलिए पिताजी का कोप-भाजन इन्हें क्यों बनाया जाए ? उनके इस व्यवहार से दैत्य गुरु समझे कि बालक वश में आ गया है। इसलिए बहुत प्रसन्न हुए। एक दिन वे उन्हें दैत्यराज हिरण्यकशिपु के पास पुनः ले गए। पिता प्रसन्न होकर बोला—पुत्र ! अब तो तुमको ज्ञान हो गया होगा ?

प्रह्लाद ने कहा—हां पिताजी ! अब वह ज्ञान अधिक सुदृढ़ हो गया है। भगवान् विष्णु ही त्रिभुवनपति हैं, वे ही परब्रह्म परमेश्वर हैं। वे ही स्तुतियों के योग्य हैं। हे पिता ! संसार में सर्वश्रेष्ठ धर्म और ज्ञान वही है, जिसके करने से भव-बन्धन से छुटकारा पाया जा सके और यह तभी सम्भव है जब सबके प्राण स्वरूप भगवान् नारायण प्रसन्न हो जाएं।

प्रह्लाद के यह वचन सुनकर दैत्यराज अत्यन्त क्रोध में भर गया। उसने क्रोध में कहा—मूर्ख बालक ! तू मेरे शत्रु की प्रशंसा करता है ? संसार में मेरी भक्ति करना सर्वश्रेष्ठ धर्म है, मैं ही परमेश्वर हूं।

यह कहते हुए उसने सेवक को आदेश दिया कि दोनों गुरु पुत्रों को बुलाकर ला। उनके आते ही हिरण्यकशिपु उन पर क्रोध से बरस पड़ा—अरे बुद्धिहीन ब्राह्मणो ! तुमने

मेरे शत्रु विष्णु का पक्ष लेकर उसे विष्णु-भक्त बनाने का प्रयत्न किया है ?

ब्राह्मणों ने कहा—हे प्रभु दैत्यराज ! हम तो इसे आपकी ही भक्ति का उपदेश देते रहे हैं। हे दैत्यराज ! इसमें हमारा कुछ भी अपराध नहीं है। हम तो स्वयं ही देवताओं के विरुद्ध और दैत्यों के पक्षधर हैं। हमारे पिता शुक्राचार्य जी ने हमको वही करने का आदेश दिया है, जिससे दैत्यराज सुखी रहें।

हिरण्यकशिपु ने शान्त होकर प्रह्लाद से पूछा—पुत्र ! यह बात कि विष्णु भक्ति की शिक्षा तुझे किसने दी है ? प्रह्लाद ने कहा—पिताजी ! भगवान् की भक्ति तो स्वभाव से ही उत्पन्न होती है, वे परम प्रभु सभी के हृदयों में विराजमान हैं, ऐसा कौन होगा जो उस प्रेरणा के अनुसार न चले ? हे पिता ! भगवान् की महिमा का विस्तार प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है।

हे शौनक ! अपने पुत्र प्रह्लाद के ऐसे दृढ़ वचन सुनकर दैत्यराज अत्यन्त क्रोध में भर गया। उसकी आंखें लाल हो गईं। अत्यन्त क्रोधित स्वर में प्रह्लाद से बोला—अरे मूर्ख ! तू जिस विष्णु की महिमा का बखान मुझ ईश्वर के सामने अत्यन्त धृष्टतापूर्वक कर रहा है, वह विष्णु कौन है ? कहां है ? तूने कहीं देखा है उसे ?

प्रह्लाद ने कहा—पिताजी ! भगवान् विष्णु की महिमा का बखान करने वाली जिह्वा ही धन्य है। बड़े-बड़े ज्ञानी, महात्मा और योगी पुरुष भी सदा उन्हीं के ध्यान में निमग्न रहते हैं। आपने पूछा कि विष्णु कौन है ? सर्वेश्वर हैं, वे ही उपासना के योग्य हैं, वे ही सबकी उत्पत्ति और रक्षा करने वाले परमपिता हैं।

कहां हैं ? इसका उत्तर यह है कि सर्वत्र हैं। ऐसा कोई स्थान नहीं, जहां भगवान् न हों। उन्हें कहीं देखा है ? इस प्रश्न का उत्तर है कि उन्हें देखने के लिए ज्ञान की आंखें चाहिए। पास होते भी, वे ही उन्हें देख सकते हैं, जिनके मन में अत्यन्त जिज्ञासा हो, पूर्ण समर्पण भाव के साथ श्रद्धा और विश्वास हो। हे तात ! आप इस भ्रम को छोड़ दीजिए कि सर्वेश्वर हैं। सर्वेश्वर तो वे ही प्रभु हैं, ऐसा मानकर आप भी उन्हीं की भक्ति कीजिए।

हिरण्यकशिपु का क्रोध सीमा पार करता जा रहा था। उसने कर्कश स्वर में कहा—दुष्ट बालक ! तू मेरे क्रोध को क्यों बढ़ा रहा है ? देख, मेरे अतिरिक्त, अन्य कोई भी परमेश्वर नहीं है। तू इस मिथ्या भ्रम को छोड़ दे और मेरी ही भक्ति कर।

प्रह्लाद ने कहा—पिताजी ! भगवान् विष्णु ही सबके परमेश्वर हैं सभी के प्राण हैं, अब आपको सचेत हो जाना चाहिए और आपको उन्हें परमेश्वर स्वीकार करना चाहिए। इसी में आपका और हम सभी का हित है।

हिरण्यकशिपु क्रोध में प्रह्लाद को मारने को तत्पर हुआ, किन्तु कुछ सोचकर रुक गया और सेवकों को आदेश दिया उन गुरु पुत्रों से कहो अब इससे कड़ाई से काम लें और हमारी महिमा का भले प्रकार ज्ञान करा दें।

सेवकगण ने प्रह्लाद को गुरु के पास पहुंचाकर हिरण्यकशिपु ने जो कुछ कहा

था वह बता दिया। गुरुओं ने प्रह्लाद को साम, दाम, दण्ड, भेद आदि उपायों से वश में करने का बहुत प्रयत्न किया, किन्तु उनकी ईश्वर नारायण की भक्ति को नहीं बदल सके। अन्त में गुरु पुत्रों ने दैत्यराज के पास आकर कहा—राजन् ! आपका पुत्र हमारे वश में नहीं आता। वह अपनी बात से हटने को किंचित् भी तैयार नहीं है। आप जो समझें वह उपाय करें।

गुरु पुत्र यह कहकर चले गए। तब हिरण्यकशिपु विचार करने लगा कि यह बालक तो कुल के लिए विनाश स्वरूप है, इसका तो वध कर देना चाहिए। ऐसी सन्तान से क्या लाभ, जो अपनी ही वंश-परम्परा को नष्ट करे तथा अपने ही पक्ष को हानि पहुंचाये। किन्तु इसका वध किस प्रकार किया जाए ? इस मूर्ख पुत्र की, इस पांच वर्ष की छोटी आयु में ही ऐसी कुमति है तो बड़ा होने पर यह न जाने क्या-क्या अनुचित कार्य कर बैठेगा ? इसलिए उचित यही होगा कि इसे बड़ी आयु होने पर अधिक सबल होने से पहले ही मार डाला जाए।

सूतजी बोले—हे शौनक ! जब विनाश काल उपस्थित होता है तब कुबुद्धि उत्पन्न हो जाती है। देहधारी अपने हित को भी अहित समझने लगता है। इसी विपरीत बुद्धि के वश में पड़े हिरण्यकशिपु ने अपने आज्ञाकारी दैत्यों को बुलाकर आदेश दिया—वीरो ! राजकुमार प्रह्लाद को जिस उपाय से भी हो सके, उसे शीघ्र ही मार डालो।

दैत्यगण ने राजाज्ञा सुनकर विकराल रूप धारण किया और शस्त्रादि लेकर प्रह्लाद को डराने लगे। किन्तु उन दैत्यों के सभी प्रयत्न व्यर्थ रहे। यह देखकर वे उन्हें मारने को दौड़े। हाथों में तीक्ष्ण शस्त्र लिए आगे बढ़े। यह देखकर प्रह्लाद ने कहा—दैत्यगण ! तुम इस प्रकार के विपरीत कर्म मत करो। देखो, परमात्मदेव विष्णु तुममें, मुझमें और इन शस्त्रों में भी विद्यमान हैं। इसलिए तुम न तो मुझे मार सकते हो और न मैं ही मारा जा सकता हूं। यह शस्त्र मुझे काट ही नहीं सकते।

दैत्यों ने कहा—अरे मूर्ख बालक ! हमने अनेक देवताओं को भी वश में कर लिया। फिर तेरी तो बात ही क्या है ? अब हम तुझे नहीं छोड़ेंगे। यह कहकर वे दैत्य प्रह्लाद पर शस्त्रों से प्रहार करने लगे। किन्तु वे उस समय किंचित् भी विचलित नहीं हुए। क्योंकि प्रह्लाद का चित्त उस समय भी भगवान् में लगा हुआ था। दैत्यगण प्रहार कर रहे थे, किन्तु उनका कुछ भी प्रभाव नहीं था। शस्त्र उनके शरीर को स्पर्श भी नहीं कर पाते थे। इस प्रकार उनका सब प्रयत्न निष्फल हो गया। सभी आश्चर्यचकित थे कि उनके शस्त्रों को हो क्या गया, शस्त्र प्रह्लाद के शरीर का स्पर्श कर लौट जाते या टूट जाते थे।

उन दैत्यों ने दैत्यराज के पास आकर कहा—महाराज ! हमने आपके पुत्र को मारने के बहुत प्रयत्न किए, अनेक तीक्ष्ण शस्त्रास्त्र चलाए, किन्तु उसके शरीर पर कोई प्रभाव नहीं हुआ।

दैत्यों की बात सुनकर हिरण्यकशिपु को बड़ा विस्मय हुआ। भला शस्त्रों से

प्रहार किया जाए और वे निष्फल हो जाएं। अवश्य ही इसमें हमारे शत्रु विष्णु की ही कोई चाल होगी। फिर कुछ सोचकर उसने प्रह्लाद को पुनः अपने पास बुलाकर समझाया—हे पुत्र ! अभी तू बालक है, कच्ची बुद्धि होने के कारण तू अपने पिता के शत्रु का बराबर गुणगान कर रहा है। अपनी इस बुद्धि का परित्याग कर दे तो मैं तुझे अभयदान देने को तत्पर हूं।

प्रह्लाद ने कहा—हे पिताजी ! भगवान् विष्णु किसी के भी शत्रु अथवा मित्र नहीं हैं। उनके लिए सभी प्राणी समान हैं। क्योंकि वे सभी के आत्मा हैं, सभी के पिता हैं। उन्हें किसी के प्रति राग-द्वेष हो भी कैसे सकता है। हे पिताजी ! उन्हीं की भक्ति में आपका भी कल्याण है, इसलिए आप उनसे द्वेष करना छोड़ दीजिए। यही मेरा दृढ़ विश्वास है, इसे मैं छोड़ नहीं सकता।

इतना सुनकर हिरण्यकशिपु पुनः अत्यन्त क्रोधित हो गया और उसने दैत्यों को आज्ञा दी कि इसे विषाग्नि युक्त मुख वाले सर्पों से दंशित कराकर मार डालो।

सूतजी बोले—हे शौनकजी ! दैत्यराज के इस प्रकार कहने पर अत्यन्त क्रूर और विषाग्नि से सम्पन्न तक्षकादि सर्पों ने आकर प्रह्लाद के समस्त शरीर को दंशित करना आरम्भ किया। किन्तु प्रह्लाद का मन तो भगवान् श्री हरि के चरणों में अनन्य भाव से लगा था, इसलिए उन भयानक सर्पों द्वारा काटे जाने पर भी उन्हें कुछ आभास नहीं हुआ। विवश सर्पगण हिरण्यकशिपु के पास जाकर बोले—दैत्येश्वर ! हमने आपके बालक को बार-बार दंशित किया, किन्तु आपके पुत्र पर हमारे काटने का कुछ भी प्रभाव नहीं हुआ। उसके शरीर की त्वचा कहीं से, किंचित् भी नहीं फट सकी।

हे मुने ! हिरण्यकशिपु ने फिर दिग्गजों को बुलाकर, उन्हें आज्ञा दी कि हे दिग्गजो ! मेरे पुत्र प्रह्लाद को शत्रु ने बहका रखा है और वह उसी के पक्ष की बात करता है। इसलिए तुम उसे तुरन्त मार डालो।

विशाल शरीर वाले दिग्गज प्रह्लाद जी को मारने के लिए चले। उन्होंने उन्हें पकड़कर धरती पर गिराने का प्रयत्न किया। किन्तु वे उन्हें नहीं गिरा सके, इस प्रकार बहुत प्रयत्न करने पर भी जब वे सफल न हो सके तो हिरण्यकशिपु के पास जाकर बोले—राजन् ! यह बालक तो वज्रदेह है हमारे दांत टूट गए, किन्तु उसका कुछ भी नहीं बिगड़ा। अब आप कुछ अन्य उपाय कीजिए।

अब हिरण्यकशिपु ने सोचा कि इसमें यह शक्ति कहां से आ गई ? अवश्य ही मेरा घोर शत्रु विष्णु ही छिपे रूप से इसकी रक्षा कर रहा होगा। ऐसा सोचकर दैत्यराज ने प्रह्लाद को भोजन न देने की आज्ञा दी। दैत्यराज की आज्ञा का पालन हुआ। रानी व दासियों के मन में अत्यन्त खेद था कि बालक भूखा-प्यासा रखा जा रहा है। परन्तु बेचारी विवश थीं कुछ कर नहीं सकती थीं। उधर उनका पोषण तो भगवान् स्वयं कर रहे थे। हिरण्यकशिपु ने सुना कि भूखा-प्यासा रखने से भी कुछ काम नहीं बना तो जल में डुबोने की आज्ञा दी। महाबली दैत्यों ने उन्हें जलाशय

में डुबोने की बहुत चेष्टा की, किन्तु सब निष्फल। विवश हुए दैत्यों ने अपने स्वामी के पास आकर अपनी असफलता की बात बता दी।

हिरण्यकशिपु बहुत व्याकुल हो गया और सोचने लगा कि इसे अग्नि में डाल दिया जाए तो अवश्य भस्म हो जाएगा। वह ऐसा विचार कर ही रहा था तभी उसकी बहन वहां आई और अपने भाई की चिन्ता जानकर बोली—भैया ! यदि इसे अग्नि में भस्म करना है तो यह काम मुझे सौंप दो। मैं इसे सरलता से भस्म कर डालूंगी। मुझे अग्नि देवता से वर प्राप्त है कि मैं अग्नि में कभी नहीं जलूंगी। यदि मेरे साथ कोई अन्य व्यक्ति अथवा वस्तु हो वह अवश्य भस्म हो जाएगी। इसलिए मैं उसे अपनी गोद में लेकर लकड़ी के मंच पर बैठ जाऊंगी, तब तुम अपने सेवकों से उस मंच में अग्नि प्रज्वलित करा देना।

हिरण्यकशिपु को यह बात बहुत उचित लगी। उसने दैत्यों को आज्ञा दी कि काष्ठ का एक छोटा-सा मंच बना दो उसके नीचे बहुत-सा सूखा ईन्धन और ज्वलनशील पदार्थ रखो। जब मेरी बहन प्रह्लाद को गोद में लेकर मंच पर सुखपूर्वक बैठ जाए, तब उसमें आग लगा देना। राजाज्ञा सुनकर दैत्यों ने वैसा ही किया। फिर दैत्यराज की बहन प्रह्लाद को स्नेह जताती हुई मंच पर ले आई और उन्हें गोद में लेकर हंसती हुई बैठ गई, तभी दैत्यों ने अग्नि प्रज्वलित कर दी। धू-धू करके अग्नि जल उठी और उसने भयंकर रूप धारण कर लिया। उस समय अग्नि का तेज अहसनीय हो रहा था। सभी प्रह्लाद जी के प्रति होने वाले उस अत्याचार से दुःखी थे, किन्तु कोई कुछ कह नहीं सकता था।

कुछ ही समय में वह भयंकर तेज वाली ज्वालाएं शान्त होने लगीं। उपस्थित व्यक्तियों ने देखा कि सब कुछ जल रहा है, दैत्यराज की बहन भी जलकर अचेत निष्प्राण हो गई है, किन्तु प्रह्लाद उस अग्नि में बैठा हुआ मुस्करा रहा है। अग्नि के पूर्ण रूप से शान्त और शीतल होने पर प्रह्लाद उठकर बाहर आ गए। हिरण्यकशिपु इससे और भी अधिक बेचैन हुआ, तब भक्त प्रह्लाद ने पिता से कहा—हे पिता आपका ये प्रयत्न भी सफल नहीं हुआ। अब इसे आप क्या मानेंगे ? क्या यह भगवान् विष्णु की ही कृपा नहीं है ? पिताजी ! आप मेरी प्रार्थना सुनिए। अब भी भगवान् से द्वेष छोड़कर उनका पूजन कीजिए, प्रार्थना कीजिए कि मेरे अपराधों को क्षमा कर दीजिए, तो वे प्रभु ऐसे दयालु हैं कि आप पर तुरन्त ही प्रसन्न हो जाएंगे।

प्रह्लाद का वचन सुनकर हिरण्यकशिपु को बड़ा क्रोध आया और वह प्रह्लाद जी को मारने को दौड़ा। तभी दैत्य गुरु शुक्राचार्य जी के पुत्रों ने उसे समझाया—दैत्येन्द्र ! यह अभी अबोध है। इसे मारने से क्या लाभ होगा ? महाराज ! इसे हम पुनः समझाकर और उचित शिक्षा देकर सन्मार्ग पर लाने का भरसक प्रयत्न करेंगे।

दैत्य गुरु प्रह्लाद को अनेक प्रकार से समझाने लगे। किन्तु प्रह्लाद गुरुजन के कहीं चले जाने पर अपने सहपाठियों से भी भगवान् की भक्ति के विषय में मीठी वाणी

से कहते—हे मित्रो ! यह संसार असार है, एकमात्र भगवान् नारायण ही सब सारों के सार हैं। वे ही सब लोकों को रचते, पालते और प्रलय करते हैं। हे मित्रो ! तुम्हें जो यह जन्म प्राप्त हुआ है, वह सहज में नहीं मिलता। विभिन्न योनियों में कर्म-फल भोगने के बाद ही मनुष्य योनि मिलती है। इसलिए ऐसा उपाय करना चाहिए, जिससे कि पुनः उन योनियों में न पड़ना पड़े। यह तभी सम्भव है, जब हम भगवान् की भक्ति करें, उनका स्मरण और ध्यान करें। यह तो प्रत्यक्ष ही देखते हैं कि नित्य-प्रति जन्म-मरण होते हैं, उस जन्म-मरण के चक्र से छूटने के लिए हमें बुरे कर्मों से बचना चाहिए और शुभ कर्म करने चाहिए।

मित्रो, इन्द्रियों के विषय चाहे कितने भी सुख रूप क्यों न प्रतीत हों, उनसे रोग उत्पन्न होते हैं तथा आयु क्षीण होती है। क्योंकि शरीर में व्याधियों की उत्पत्ति होने से बुढ़ापे की शीघ्र प्राप्ति सम्भव है। इसलिए उस प्रकार के कर्मों से बचना चाहिए, जिनसे काम, क्रोध, लोभ, मोहादि की वृद्धि होती हो। प्राणी जितना अभिमान करता है, उतनी ही क्षीणता को प्राप्त करता है। अभिमानी व्यक्ति कभी किसी का प्रेम प्राप्त नहीं कर सकता।

मित्रो ! प्राणी को अपने कर्म का फल भोगना होता है, किन्तु दोष देता है भगवान् को। इच्छित कार्य नहीं बनता तो सभी को विपक्षी या वैरी मानने लगता है। मेरे पिताजी भी अपनी अनुचित अभिलाषाओं में बाधक होने वाले भगवान् विष्णु को शत्रु मानते हैं। भला वे भगवान् जो सभी के प्रति समान भाव रखते हैं, किसी के द्वारा अनुचित उत्पीड़न के कार्यों को कैसे होने दे सकते हैं।

हे मित्रो ! भगवान् विष्णु कभी किसी को अनुचित दण्ड नहीं देते। वे सदा उचित और न्यायपूर्ण फल देते हैं। यदि आवश्यकता सच्ची होती है तो भगवान् उसे स्वयं ही पूरी कर देते हैं। उसके लिए किसी को भी चिन्तित नहीं होना पड़ता। जो लोग महत्वाकांक्षी होते हैं, वे धन, धरती, ऐश्वर्य में ही यथार्थ सुख मानते हैं। जो कामी होते हैं, वे उचित या अनुचित प्रकार से भी स्त्रियों की प्राप्ति के प्रयत्न में लगे रहते हैं। संसार में अनेकों बड़े-बड़े वीर हुए, जिन्होंने दूसरों का धन, धरती आदि छीनने के लिए आक्रमण किए, किन्तु स्वयं ही मारे गए। भगवान् भी यही चाहते हैं कि किसी पर अन्याय न हो, किसी का अकारण उत्पीड़न न हो। उनका ऐसा करना किसी स्वार्थवश तो है नहीं।

मद-मोह में घिरा हुआ जीव उस सत्य की तो खोज करना नहीं चाहता, चाहता है अपने स्वार्थों की पूर्ति, जो कभी सम्भव नहीं है। यदि पूर्ति किसी कारणवश हो भी जाए तो वह स्थायी नहीं हो सकती।

मित्रो ! भगवान् सभी के कर्म-अकर्मों को देखते हैं। उनसे किसी का भी पाप-पुण्य कर्म छिपा नहीं रह सकता। उन परम प्रभु का आश्रय लेना ही प्राणियों का कर्तव्य है। क्योंकि सुख रूप तो एकमात्र वे ही हैं। यह शरीर तो अनित्य है,

इसका नाश होना निश्चित है। अविनाशी तथा नित्य-सत्य तो एकमात्र वे परब्रह्म भगवान् नारायण ही हैं।

प्रह्लाद जी ने कहा—हे मित्रो ! जन्म, वर्तमान में स्थिति, वृद्धि, रूपान्तरण, क्षीणता और नाश—शरीर में यह छः विकार देखे जाते हैं। किन्तु यह विकार तभी जान पड़ते हैं, जब शरीर में आत्मा विद्यमान हो। आत्मा के बिना तो शरीर का अस्तित्व ही नहीं रह सकता। आत्मा नित्य, अव्यय शुद्ध, एक, क्षेत्रज्ञ, आश्रय, निर्विकार, स्वयं प्रकाश, सभी का कारण होते हुए भी संग-रहित तथा अनावृत है। किन्तु शरीर में कुछ भी नहीं है, वह नाशवान है। इस प्रकार शरीर और आत्मा की भिन्नता सिद्ध होती है। इस ज्ञान को वही जान सकता है जो आत्मज्ञानी हो तथा शरीर में अनात्म बुद्धि रखता हुआ आत्मा और परमात्मा की अभिन्नता को समझता हो। सत्, रज, तम तीन गुणों के कारण शरीर के विभिन्न रूप बनते हैं। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति यह तीनों, बुद्धि की वृत्तियां हैं। इन सबको, सबका साक्षी आत्मा, इन सबसे परे है। जो प्राणी अपनी इन्द्रियों को वश में रखकर भगवान् की भक्ति करते हैं, वे ही धन्य हैं। इसलिए अपने स्वरूप की प्राप्ति के लिए भगवान् की ही भक्ति करनी चाहिए। सब प्राणियों को समान समझकर तुम भी सबसे प्रेम करते हुए भगवान् का ही स्मरण, भजन करो, इसी में हम सबका कल्याण है।

प्रह्लाद जी के वचनों का असर सभी दैत्य बालकों पर पड़ा। यह देखकर दोनों गुरु पुत्र घबराए और उन्होंने हिरण्यकशिपु के पास जाकर सब वृत्तान्त कह सुनाया। इस पर दैत्यराज अत्यन्त कुपित हो उठा। उसने दैत्यों को आज्ञा दी कि इस दुष्ट बुद्धि बालक को नागपाश में बांधकर ले जाओ और भयंकर तरंगों वाले अथाह समुद्र में डाल दो। उसमें भी इसे सब ओर से ढककर पर्वतों में दबा दो। यह सुनकर दैत्यों ने वैसा ही किया।

प्रह्लाद जी वहां जल में डूबे हुए रहकर भगवान् विष्णु की स्तुति करने लगे। उन्होंने कहा हे पुरुषोत्तम ! हे सर्व लोकात्मनद्य ! हे चक्रधारी ! हे संसार की रक्षा करने वाले प्रभु ! आपको प्रणाम है, मेरा प्रणाम है। हे नाथ ! यह ब्रह्माण्ड अपना स्थूल शरीर है, उससे सूक्ष्म यह संसार है। संसार से भी सूक्ष्म यह सब प्राणी है और सबमें अत्यन्त सूक्ष्म अन्तरात्मा है। उससे भी परे, सूक्ष्मादि विशेषणों से परे आपका अचिन्त्य स्वरूप है, आपके उस रूप को बारम्बार प्रणाम।

सूतजी बोले—हे शौनक ! प्रह्लाद जी की ऐसी स्तुति सुनकर देवाधिदेव भगवान् श्रीहरि का स्मरण करने मात्र से प्रह्लाद जी के ऊपर रखा गया पर्वतों का ढेर छिन्न-भिन्न हो गया तथा नागपाश भी भंग हो गई। तब वे वहां से निकलकर पुनः अपने पिता के भवन में आ गए। यह देखकर हिरण्यकशिपु अत्यन्त क्रोध में आ गया और वह उन्हें मारने को दौड़ा। तब नृसिंह भगवान् ने प्रकट होकर उसे जिस प्रकार मारा, वह सब वृत्तान्त सुने !

# हिरण्यकशिपु संहार

सूतजी बोले—हे शौनकजी ! जब भगवान् की कृपा से प्रह्लाद के नागपाश के बन्धन कट गए और ऊपर से पर्वतों के ढेर हट गए, तब वे राजभवन में लौटकर पिता से बोले—हे तात ! भगवान् अपने भक्त की सदा रक्षा करते हैं, यही कारण है कि मुझे सर्प-विष से, दिग्गजों के मर्दन से, पर्वत से गिराए जाने से और नागपाश में बांधकर समुद्र में डाल देने से कुछ भी हानि नहीं हुई और मैं पूर्ण स्वस्थ अवस्था में आपके चरणों में उपस्थित हूं। हे पिताजी ! आप भी उन्हीं भगवान् को सबका स्वामी मानकर उनकी उपासना कीजिए। इससे अवश्य ही वे आप पर प्रसन्न होंगे। आप उनके प्रति वैर-भाव छोड़ दीजिए। जो प्रभु सबके आत्मा हैं, उनसे द्वेष करना क्या उचित है ?

हिरण्यकशिपु उनके इन वचनों से अत्यधिक क्रोधित हुआ। उसने कहा—तू इस प्रकार नहीं मानेगा। अब तो तुझे यमलोक में ही पहुंचना होगा। देख, मेरा क्रोध अत्यन्त प्रबल है, उसके समक्ष बड़े-बड़े योद्धा भी खड़े नहीं रह पाते। मैं जब क्रोध करता हूं तब बड़े-बड़े लोकपाल भी कांप उठते हैं। तब तेरा विष्णु ही मेरे समक्ष कैसे खड़ा रह सकता है ?

प्रह्लाद ने कहा—पिताजी यह आपका भ्रम है। बड़े-बड़े ज्ञानी भी मानते हैं कि आत्मा-परमात्मा में कोई अन्तर नहीं है। वे परमात्मा विष्णु सर्वत्र विद्यमान हैं। वे ही आत्म रूप से सब प्राणियों के भीतर बैठे हैं। आपके हृदय में भी उनका ही निवास है। इसलिए आप असुर भाव छोड़कर प्रेम भाव में निमग्न होकर देखिए, तब आपको अवश्य यह अनुभव हो जाएगा कि वे भगवान् आपके शत्रु नहीं, मित्र हैं। आप उस असत्य के आवरण को हटाकर सत्य के दर्शन कीजिए। हे पिताजी ! यह सत्य है कि उस आवरण के हटते ही आप सृष्टि के रहस्य को जान लेंगे और परमात्मा को जान लेंगे।

हिरण्यकशिपु ने गर्जनायुक्त स्वर में कहा—अरे अभागे ! तू अवश्य ही मरना चाहता है। लगता है कि यह वचन तेरे नहीं हैं वरन् उस दुर्दान्त काल के हैं, जो तेरे सिर पर चढ़कर बोल रहा है। अरे मूर्ख ! तू विष्णु को अन्तर्यामी कह रहा है और मुझे उसकी भक्ति का उपदेश दे रहा है तो बता कहां है वह तेरा ईश्वर ? कहीं दिखाई देता है तुझे ? पुकार अब अपने विष्णु को।

प्रह्लाद ने पुनः कहा—यह जो कुछ भी दिखाई देने वाला विश्व है वह सब ईश्वर ही है। सभी प्राणियों में वही प्राण और आत्म रूप से विद्यमान है। धरती, आकाश, दिशाएं आदि, ऐसा कोई स्थान नहीं जहां वह न हो। कण-कण और अणु-अणु में वही हैं। आपमें और मुझमें भी वहीं हैं।

दैत्यराज ने कहा—तो उस स्तम्भ में भी होना चाहिए उसे। बता, वह इस स्तम्भ

में क्यों नहीं दिखाई देता ?

प्रह्लाद ने कहा—हां, प्रभु इस स्तम्भ में भी विराजमान हैं, किन्तु दिखाई तब देंगे जब आप ज्ञान नेत्रों से देखने का प्रयत्न करेंगे।

## नृसिंह भगवान् का अवतरण

अब तो हिरण्यकशिपु गरजता हुआ दौड़ा। उसने म्यान से तलवार खींच ली और बोला—अरे बुद्धिहीन बालक ! अरे मूढ़ ! आज तेरा और तेरे ईश्वर का प्राणान्त किए देता हूं।

हिरण्यकशिपु उस स्तम्भ की ओर तेजी से बढ़ा और स्तम्भ पर तलवार का भरपूर प्रहार किया। उसी समय उस स्तम्भ से अत्यन्त भयानक गर्जना हुई। हर प्राणी उस गर्जना को सुनकर कांप उठा। हिरण्यकशिपु भी आश्चर्य से स्तम्भ की ओर देखने लगा। उसे दिखाई दिया कि स्तम्भ बीच में से विदीर्ण हो गया है और उसमें अत्यन्त तेजोमय अपूर्व अद्भुत रूपधारी कोई ऐसा विकराल पुरुष खड़ा हुआ गर्जना कर रहा है, जिसका शरीर मनुष्य और सिंह का मिश्रित है। वह न तो मनुष्य ही है, न ही सिंह ही है। किसी ने भी वैसा रूप कभी नहीं देखा, हिरण्यकशिपु ने भी नहीं। वह सोचने लगा कि यह विचित्र शरीर का प्राणी कौन है ? इस स्तम्भ में कैसे आ गया है ?

हिरण्यकशिपु यह सोच ही रहा था कि तभी वह अपने सामने आते हुए अत्यन्त तेजोमय, अत्यन्त विकराल नृसिंह भगवान् को देखकर भयभीत हो गया। उसकी दाढ़ें छुरे की तीखी धार के समान पैनी थीं। जिह्वा तलवार के समान लपलपा रही थी। भृकुटियां ऊपर की ओर चढ़ी हुई तथा नेत्रों से अग्नि की लपटें निकल रही थीं, कान सीधे खड़े थे तथा विशाल मुख पर्वत की गुफा के समान खुला हुआ था। शरीर भी बहुत ऊंचा, अत्यन्त स्थूल ग्रीवा, विशाल वक्षःस्थल और जंघाएं, शरीर-भर में चन्द्र-किरणों के समान चमकती हुई रोमावली तथा दिशाओं में फैले हुए बहुत-से हाथ, जिसमें शस्त्रों के समान तीक्ष्ण नख विद्यमान थे। उनकी ओर तेज के कारण देखना भी असम्भव था।

वहां जो भी उपस्थित था, भयभीत और व्याकुल हो गया। दैत्यगण वहां से इधर-उधर भागने लगे। प्रह्लाद जी एक ओर स्तुति करने की मुद्रा में खड़े हो गए। हिरण्यकशिपु ने अब समझा कि विष्णु ने यह अवतार मेरा वध करने के लिए ही धारण किया है। उसे आभास हो गया कि अब मेरी मृत्यु निश्चित है।

फिर भी वह साहस लिए नृसिंह भगवान् की ओर बढ़ा और हाथ में गदा लिए हुए क्रोध करने लगा। तदनन्तर उसने अपनी गदा से भगवान् के वक्षस्थल में वेगपूर्वक प्रहार किया। तब तो भगवान् नृसिंह भी क्रोधपूर्वक उछले और हिरण्यकशिपु को पकड़ लिया। परन्तु वह वेग पूर्ण उनकी पकड़ से छूट गया और उसने गदा छोड़कर ढाल-तलवार हाथों में ली और वेगपूर्वक उनकी ओर झपटा। किन्तु नृसिंह

भगवान् ने भयंकर शब्द करते हुए उसके प्रहार को बचाया और अपने तेज का अधिक विस्तार किया, जिससे उसकी आंखें मिचने लगीं। तभी भगवान् ने उसे पुनः पकड़कर ऐसा भींच लिया कि अब वह बिलाव द्वारा पकड़े हुए मूषक के समान छटपटाने लगा। फिर भगवान् उसे देहली के मध्य ले गए और अपनी जंघाओं पर रखकर उसे नखों से विदीर्ण कर डाला।

सूतजी बोले—हे मुने ! उस समय न दिन था, न रात्रि थी, सायंकाल था। वर के अनुसार स्थानादि का भी ध्यान रखा भगवान् ने। उसे ब्रह्मा जी ने मनुष्य, पशु आदि के हाथ से न मारे जाने का वर दिया था, इसलिए नृसिंह रूप धारण करके उसका वध किया। उस समय की शोभा वर्णन नहीं की जा सकती।

नृसिंह भगवान् के उस समय के अत्यन्त क्रोधयुक्त स्वरूप को देखकर देवता भी डर गए, ग्रहों का भी तेज नष्ट हो गया। जटाओं के घनीभूत रहने से मेघ भी तुलना में मन्द पड़ गए। उनके श्वासोच्छ्वास से समुद्रों में भी चंचलता आ गई। पृथ्वी, आकाश तथा दिशाएं कांप उठीं। दिग्गज चीत्कार करने लगे। पर्वत भी उनके शब्द से डिगने लगे। हे मुने ! इस प्रकार उनके उस रूप और क्रिया-कलाप से सभी चराचर विश्व भयभीत हो उठा था।

हिरण्यकशिपु का वध हुआ जानकर देवगण प्रसन्न हो गए। स्वर्ग से पुष्प वर्षा होने लगी। तभी ब्रह्मा, शिव, इन्द्र आदि प्रमुख देवता और लोकपाल वहां आ गए। अनेकानेक ऋषि, सिद्ध, विद्याधर, पितर, नाग, मनु, प्रजापति गण, यक्ष, किन्नर तथा भगवान् के सभी पार्षद उपस्थित हुए। उनकी प्रार्थना पर भगवान दिव्य सिंहासन पर विराजमान हुए। अब समस्त उपस्थित देवगण, ऋषिगण आदि उनका क्रोध शान्त करने के लिए मन्त्र, तन्त्रादि के द्वारा उन्हें प्रसन्न करने लगे। विविध प्रकार से उनकी स्मृतियां भक्ति-भाव पूर्वक आरम्भ कीं।

सर्वप्रथम ब्रह्माजी ने स्तवन किया। तदुपरान्त भगवान् शिव ने, फिर इन्द्रादि देवताओं ने अपनी-अपनी प्रार्थनाओं से उन्हें प्रसन्न किया। ऋषि-महर्षियों ने पितरों, सिद्धों, विद्याधरों और महानागों ने नृसिंह भगवान् की महिमा का गान किया। मनु ने दैत्य वध के कारण जग का उपकार होने की बात कही। प्रजापति ने कहा कि प्रभु ! आपने सत्य की रक्षा के लिए ही यह नृसिंह रूप धारण किया है।

परन्तु इन सब की स्तुतियों से भी भगवान् का क्रोध शान्त नहीं हुआ, तब ब्रह्माजी की आज्ञा से प्रह्लाद जी उनके पास जाकर चरणों में गिर गए। उन्हें इस प्रकार से गिरे हुए देखकर भगवान् ने अत्यन्त करुणापूर्वक उठाया और उनके सिर पर हाथ फेरने लगे। तभी प्रह्लाद ने उन करुणानिधान भगवान् की स्तुति आरम्भ की। उन्होंने हाथ जोड़कर निवेदन किया—हे प्रभु ! लोक पितामह चतुरानन, भगवान् शंकर, देवराज इन्द्र तथा समस्त ऋषि-मुनि आदि स्तुतियां कर रहे हैं तो मैं अज्ञानी बालक अपनी स्तुति से किस प्रकार आपको प्रसन्न कर सकूंगा ? मुझे इतना ही पता है कि

आप भक्ति से सहज में ही प्रसन्न हो जाते हैं।

हे नारायण ! आप भक्त की भावना को ही मान्यता देते हैं। संसार में ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जिसे आप भक्त को न दे सकते हों। आपका दान किसी प्रतिदान की भी अपेक्षा नहीं करता। हे प्रभु ! मैं भी आपका एक छोटा-सा भक्त हूं। दैत्य वंश में उत्पन्न होकर भी मैं दैत्यों के समान अभक्त नहीं हूं। मैं तो सदा आपका ही भजन करता हूं। इसलिए आप मुझे अपनी शरण में उपस्थित जानकर मुझ पर कृपा कीजिए। हे नाथ ! आपने जिस क्रोध को उत्पन्न करके मेरे पिता पर अनुग्रह किया, अब उसे शान्त करना चाहिए।

हे परमेश्वर ! यहां सभी उपस्थित ब्रह्माजी, शिवजी, सुराधिप तथा ऋषिगण आदि आपका क्रोध शान्त होने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। हे दीनबन्धो ! मैं तो अत्यन्त दीन हूं। बहुत समय से पिता के क्रोध-भय से व्यथित रहा हूं। अब आपकी शरण में आने पर मुझे उस भय से तो छुटकारा मिल गया, किन्तु जब तक आपका क्रोध शान्त नहीं होगा, तब तक मैं इसी शंका से विकल रहूंगा कि प्रभु ने मुझे अपने भक्त रूप में स्वीकारा अथवा नहीं ? हे नृसिंह रूपधारी नारायण ! अब आप मुझ पर प्रसन्न हो जाइए और अपना अभय प्रदान करने वाला वरदहस्त मुझे प्रदान कीजिए।

हे प्रभु ! आपके क्रोध का मुख्य कारण तो मेरी रक्षा ही है। अब मेरी आपने रक्षा कर दी है और वह कार्य पूरा भी हो चुका है। इसलिए अब आप कृपापूर्वक अपना क्रोध शान्त कीजिए। हे प्रभु ! मुझे आप अपना अनन्य सेवक समझकर हम सभी पर कृपा कीजिए।

सूतजी बोले—हे मुनियो ! प्रह्लाद जी ने इस प्रकार की स्तुतियों से नृसिंह भगवान् को प्रसन्न करने का साहस किया तो भक्तों पर सदा अनुग्रह करने वाले भगवान् नृसिंह ने अपने क्रोध का परित्याग कर दिया और शान्त होकर अपने विनम्र भक्त के प्रति कृपापूर्वक उसे अभय देने लगे।

भगवान् नृसिंह देव ने कहा—हे प्रह्लाद भक्तराज ! तेरा कल्याण हो। मैं तुझ पर अत्यन्त प्रसन्न हूं, इसलिए डरने का कोई कारण नहीं है। जब मैं प्रसन्न हो जाता हूं, तब अपने भक्त को दर्शन से कृतार्थ करता हूं और इच्छित वर भी देता हूं। हे वत्स ! मेरे दर्शन प्राप्त कर लेने पर किसी प्रकार का अभाव, रोग, शोक कुछ भी शेष नहीं रहता। तू मेरे भक्तों में श्रेष्ठ है, इसलिए तेरी जो आकांक्षा हो वही मुझसे मांग ले।

नारायण के ऐसे कृपा पूर्ण वचन सुनकर प्रह्लाद जी ने उनको पुनः प्रणाम करके निवेदन किया—हे नाथ ! हमारी तो जाति ही ऐसी है, जो जन्म से भोग-विलास में फंसने का अवसर देती है। इसमें आप प्रभु की भक्ति की ओर तो किसी का ध्यान जाता ही नहीं। ऐसी विषयासक्त रहने वाली जाति में उत्पन्न हुए मुझ भक्त को किसी वस्तु की अभिलाषा उत्पन्न हो तो कुछ आश्चर्य नहीं है। किन्तु प्रभु ! मैं तो उस

आसक्ति से जन्म से ही दूर रहा हूं। इसलिए मैं किसी वर के प्रलोभन में नहीं फंसना चाहता। इस कारण आप मुझे अपनी निश्चल भक्ति देकर अपनी शरण में ले लीजिए। हे भक्त वत्सल ! आप वर मांगने की आज्ञा देकर मेरी सत्य अथवा असत्य भक्ति के विषय में सम्भवतः परीक्षा ले रहे हों। किन्तु आपसे यह छिपा नहीं है कि मैं किसी सांसारिक वस्तु की जिज्ञासा नहीं रखता हूं।

हे वरदायक नारायण ! हे नाथ ! आप भगवान् के भक्ति रूप भाव की प्राप्ति तो तभी हो सकती है, जब मन की कामनाएं शेष न रहें। यही वर मांगता हूं कि मेरे मन में काम-बीज की कभी भी उत्पत्ति न हो। हे भक्तिदाता प्रभु ! मैं आप नृसिंह रूप भगवान् विष्णु को बारम्बार प्रणाम करता हुआ आपकी भक्ति की चाहना रखता हूं।

प्रह्लाद के इस प्रकार से सर्व त्याग वाले विनम्र वचनों को सुनकर भगवान् नृसिंह देव प्रसन्न होते हुए बोले—भक्तराज ! मैं तेरी भावनाओं को जानता हूं और तुझे अक्षय भक्ति का वर तो देता ही हूं। साथ ही तुझे यह आज्ञा देता हूं कि तू समस्त दैत्यों पर राज्य करता रहे। इस अवधि में तू मेरे चरित्रों का कीर्तन करता रहेगा तो संसार में भक्ति की गंगा बहेगी। तू मुझको हृदय में धारण किए रहकर श्रेष्ठ कर्म द्वारा मुझे सन्तुष्ट करता रह, किन्तु किसी कर्म के फल की इच्छा कभी नहीं करना। अन्त में सब कर्म-बन्धन से तू मुक्त हो जाएगा।

प्रह्लाद ने पुनः निवेदन किया—हे महाप्रभु ! आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। इसके साथ ही एक वर मैं आपसे और मांगता हूं। वह यह कि मेरे पिता को आपके महान् ऐश्वर्य का ज्ञान नहीं था, इसीलिए वे आपके प्रति द्वेष-भाव रखकर आपकी निन्दा करते रहे थे। उन्होंने आपको अपने भ्राता हिरण्याक्ष को मारने वाला मानकर ही वैर किया था और आपके मुझ भक्त को मारने का भी प्रयास किया था। वे आपकी दृष्टि पड़ने तथा आपके द्वारा मारे जाने से ही यद्यपि पवित्र हो चुके हैं, फिर भी हे दयानिधान ! आप उन्हें उनके समस्त पापों से मुक्त कर दीजिए।

भगवान् बोले—वत्स ! तेरे पिता ही क्या, उसकी चार पीढ़ी पहले की और सत्रह पीढ़ी आगे की, तेरे जन्म लेने से ही पाप मुक्त हो गई हैं। इसलिए हे वत्स ! अब तू सभी चिन्ताओं से मुक्त होकर अपने इस राज्य सिंहासन को सुशोभित कर।

सूतजी बोले—हे शौनकजी ! भगवान् नृसिंह देव अपने परम भक्त प्रह्लाद को ऐसी आज्ञा देकर अन्तर्ध्यान हो गए। तदुपरान्त ब्रह्माजी सहित समस्त देवताओं, ऋषियों आदि ने प्रह्लाद को राज्यासन पर अभिषिक्त किया। इस प्रकार भगवान् के वे दोनों पार्षद शाप वश दिति के पुत्र हुए थे और भगवान् के ही हाथ से मारे गए। त्रेतायुग में वे ही रावण और कुम्भकर्ण नामक राक्षस हुए। उनका वध भी भगवान् ने राम रूप से अवतार लेकर स्वयं किया। फिर वे ही द्वापर युग में दनतवक्र और शिशुपाल हुए, जिन्हें भगवान् श्रीकृष्ण ने मार कर मोक्ष का भागी बनाया। हे मुने ! तुमने जो प्रश्न किया वह मैंने सब कह दिया।

# शिव एवं दक्ष का वैर-भाव

सूतजी बोले—हे मुनि ! दक्ष यज्ञ विध्वंस क्यों और कैसे हुआ, यह सब विस्तारपूर्वक कहता हूं। प्राचीनकाल का वृत्तान्त है कि सभी सिद्धों, सनकादि देवर्षियों के एकत्र होने पर एक महान् यज्ञ का प्रबन्ध हुआ था। स्थल श्रेष्ठ पुण्यतीर्थ प्रयागराज था। उसमें ब्रह्माजी सहित समस्त देवता भी आए थे। उसी अवसर पर कैलाशपति शिवजी भी अपने गणों सहित उस यज्ञ महोत्सव में सम्मिलित हुए। उन्हें देखते ही सभी सिद्ध, देवता, ऋषि-मुनि आदि स्वागतार्थ उठ खड़े हुए और भक्तिपूर्वक उनकी स्तुतियां करने लगे। फिर शिवजी की आज्ञा पाकर, सभी अपने-अपने स्थान पर बैठ गए। भगवान् शंकर स्वयं भी श्रेष्ठ आसन पर विराजमान् हो गए थे। उसी अवसर पर वहां प्रजापतियों में भी श्रेष्ठ तथा प्रजापतियों के भी स्वामी अत्यन्त तेजस्वी दक्ष भी वहां आ गए। उन्होंने अपने दम्भ के कारण, केवल अपने पिता ब्रह्माजी को ही नमस्कार किया और एक श्रेष्ठ आसन पर बैठ गए। उस समय देवताओं और ऋषियों ने उठ-उठकर उनका नमस्कार किया। प्रभु शंकर जी उस समय अपने स्थान पर सुखपूर्वक बैठे रहे, उन्होंने दक्ष को प्रणाम नहीं किया।

यह देखकर प्रजापति शंकर से अत्यन्त रुष्ट हो गए और उन्होंने क्रोधपूर्वक कहा—इस समय सभी देवताओं, ऋषि-मुनियों आदि ने भी मेरा सत्कार किया, किन्तु प्रेत-पिशाचादि से घिरकर बैठे हुए इस अभिमानी शंकर ने मुझे प्रणाम भी नहीं किया। यह श्मशान सेवी, निर्लज्ज, मान-मर्यादा को त्यागे हुए दुर्जन के समान अपने स्थान पर बैठा रहा। आज इस शिव को मैं शाप दूंगा, जिससे कि भविष्य में अपने से बड़े तथा सम्मान योग्य व्यक्ति का कोई अपमान न कर सके।

सूतजी ने कहा—हे मुनिवर ! दक्ष की शाप देने की प्रक्रिया को जानकर वहां उपस्थित देवताओं, ऋषियों आदि ने उन्हें शान्त करने का प्रयास किया। किन्तु दक्ष ने कहा मैंने अपनी अत्यन्त सुन्दर पुत्री का विवाह इसके साथ किया। यद्यपि यह समस्त क्रियाओं से हीन, त्रिपुण्ड और त्रिशूल धारण करने वाला, सर्पों को अंगों में लिपटाए रखने वाला तथा रुण्डमाला और अस्थियों के आभूषण पहनने वाला मूढ़ मेरी कन्या के योग्य नहीं था तथापि मैंने अपने पिता ब्रह्माजी के कहने से इसके साथ ब्याह दी थी। हे ब्रह्मर्षियो ! हे देवताओ ! साधु पुरुषों का जो व्यवहार होता है, उसके अनुसार भी इसके लिए मैं नमस्कार के योग्य हूं, किन्तु शिष्यभाव को प्राप्त हुए इस शिव ने मेरा घोर अपमान किया है। तत्पश्चात् दक्ष ने शिवजी को शाप दिया कि देवगणों में अधम यह शंकर देवताओं के यज्ञ में विष्णु, इन्द्र आदि के साथ यज्ञभाग का अधिकारी नहीं रहेगा। इस प्रकार दक्ष के शाप देने पर नन्दीश्वर को क्रोध आ गया, उनके नेत्र लाल हो गए और वे दक्ष को शाप देते हुए बोले—अरे अभिमानी दक्ष ! तूने मेरे स्वामी भगवान् शिव को यज्ञ से किस कारण बाहर निकाल दिया

है ? अरे मन्दमति दुष्ट ! क्या तुझे ज्ञान नहीं कि जिनके स्मरण मात्र से ही सब प्रकार के यज्ञ श्रेष्ठ फल वाले हो जाते हैं और तीर्थ भी उन्हीं के पवित्र करने से महिमा मण्डित होते हैं, उन सर्व समर्थ एवं पाप नाशक प्रभु को तूने शाप क्यों दे दिया है ? तूने अपनी दुर्बुद्धि के वश होकर परमात्मा शिव को जो शाप दिया है, वह तेरे हित में नहीं होगा। तूने इन सरल हृदय वाले प्रभु की निन्दा करके और हंसी उड़ाकर कुछ अच्छा काम नहीं किया है। अरे पापी ! यह शंकर ही सबका कल्याण करने वाले हैं। यही सबकी रक्षा और विनाश करने वाले हैं, इनको शाप देकर तूने ही मर्यादा को भंग किया है। नन्दीश्वर के ऐसे वचन सुनकर दक्ष ने कुपित होकर नन्दीश्वर को भी शाप देते हुए कहा—तुम समस्त शिवगण वैदिक धर्म से बाहर रहोगे तथा मनीषीगण भी तुम सबका बहिष्कार करेंगे।

इस शाप को सुनकर नन्दी ने पुनः कहा—अरे मूर्ख दक्ष ! तू शिवतत्व से अनजान है और उनके गणों को भी व्यर्थ ही शाप दिया है, इसका फल शीघ्र भोगेगा। तेरे साथ दुष्ट मन वाले भृगु आदि ने भी भगवान् शिव का उपहास और निरादर किया है। इसलिए इन रुद्र-विमुख दुष्ट विप्रों को भी मेरा शाप है कि तुम वेदवाद परायण होकर भी वेद तत्व के गूढ़ ज्ञान से वंचित होगे तथा कामनाओं के वशीभूत रहकर यज्ञानुष्ठान करोगे और स्वर्ग प्राप्ति के लिए ही उपासना में लगोगे। तुम्हारी मति लोभवश कुदान लेने में लगी रहेगी। तुम्हें नरक की प्राप्ति होगी। तुममें से कोई-कोई तो मृत्यु प्राप्त होने पर ब्रह्म-राक्षस ही बनेगा। शिवद्रोही कूट धर्म में रत तथा आनन्द रहित होगे तथा यथार्थ ज्ञान भूल जाओगे। और सुनो—यह दक्ष शिव निन्दा का पात्र होने के कारण बकरा के समान मुख वाला बन जाएगा।

## भृगु द्वारा नन्दी को शाप

सूतजी बोले—हे मुने ! दक्ष तो क्रोध के कारण उठकर वहां से चले गए। किन्तु विप्र वंश को नन्दी द्वारा इस प्रकार का शाप दिया सुनकर भृगु को बड़ा भारी क्रोध आया। उन्होंने अत्यन्त घोर शाप देते हुए कहा—अरे मूढ़ नन्दी ! यह पवित्र से विहीन, ज्ञान से रहित, जटा, भस्म, अस्थि और नागों को धारण करने वाले तेरे स्वामी शिव को उन्हीं व्रतों और अनुष्ठानों में स्थान प्राप्त हो, जिनमें मदिरा आदि को दिव्य माना जाता हो। तुम ब्राह्मणों की निन्दा करने वाले पाखण्डी हो। हमारा शाप है कि जो शिव का व्रत करे, जो शिव का भक्त बने, वह श्रेष्ठ शास्त्रों से भी भ्रष्ट हो जाए। जैसे नन्दीश्वर पुनः कुछ कहना चाहते थे, तभी भगवान् शिव ने हंसकर उन्हें रोका और समझाते हुए बोले—हे नन्दी ! तुम्हें इस प्रकार से क्रोध नहीं करना चाहिए, तुमने मुझे शापित हुआ देखकर ब्राह्मणों को व्यर्थ ही शाप दे दिया। वे मन्त्राक्षर सम्पन्न हैं, उनके सूत्रों में शरीरधारियों की आत्मा प्रतिष्ठित है। इसलिए आत्मज्ञानी होकर भी तुम्हें ऐसा क्रोध उचित नहीं है।

हे नन्दीश्वर तुमने सनकादि ऋषियों को आत्मज्ञान दिया था। मैं कौन हूं ?

अब अपने विषय में भी सोचो तुम कौन हो ? तत्वज्ञान पूर्वक देखने पर यही ज्ञात होगा कि तुम सभी के रूप में मैं ही हूं। जहां, जो कुछ भी है, मुझसे भिन्न कुछ भी नहीं है, ऐसा मानकर शान्त हो जाओ। क्रोध को त्याग कर सृष्टि के रहस्य पर ध्यान दो। इतना कहकर भगवान शंकर के इस प्रकार समझाने पर नन्दीश्वर शान्त हो गए और तब अपने समस्त गणों को साथ लेकर शंकर वहां से चले गए। इस प्रकार उस समय वहां का वातावरण शान्त हो सका।

वस्तुतः शंकर को शाप देकर क्रोधी दक्ष ने मूर्खता का ही कार्य किया था। अब वह शिवद्रोही होकर शिव-पूजकों की भी निन्दा करने लगे। उनकी इस द्वेषमयी बुद्धि ने उनका अहित ही किया था। फिर शौनक ने प्रश्न किया—सूतजी ! जब दक्ष प्रजापति शिवजी को कुरूप, कुबुद्धि, कुवेश आदि दुर्गुणों से युक्त समझते थे, तब उन्होंने अपनी कन्या का विवाह उनके साथ क्यों कर दिया ? इतना बताने की कृपा करें।

सूतजी ने कहा—हे मुने सुनो ! दक्ष प्रजापति ब्रह्माजी के पुत्र थे, उनका विवाह मनु की एक कन्या प्रसूति के साथ हुआ था। दक्ष के प्रसूति से सोलह कन्याएं हुईं, जिनमें से तेरह का विवाह धर्म के साथ और एक का अग्नि के साथ हुआ। दक्ष ने एक कन्या का विवाह पितरों के साथ कर दिया।

हे मुनिवर ! उन्होंने सोलहवीं कन्या शिवजी के साथ ब्याह दी। जो कन्याएं धर्म को दीं, उनके नाम श्रद्धा, मैत्री, दया, शान्ति, तुष्टि, पुष्टि, क्रिया, उन्नति, बुद्धि, मेधा, तितिक्षा, ह्रीं और मूर्ति था। अग्नि को ब्याही गई दक्ष कन्या का नाम स्वधा था। शिवजी के साथ जिसका विवाह हुआ था, वह सती नाम की कन्या थी। उस कन्या के लिए दक्ष को कोई सुयोग्य पर नहीं मिल रहा था, इसलिए वे चिन्ता लीन रहते कि वर की खोज कहां करें ? तभी उन्होंने सोचा कि इस विषय में पूज्य पिताजी से ही पूछना चाहिए। वे ही बता सकेंगे कि सती के योग्य कौन-सा वर ठीक रहेगा ? क्योंकि वे सभी प्राणियों के सृष्टा हैं, उनसे किसी का भी बल, वैभव, बुद्धि-विवेक आदि छिपा नहीं है।

इस प्रकार एक दिन दक्ष प्रजापति ब्रह्मलोक को गए। वहां भगवान् चतुरानन भगवान् का ध्यान कर रहे थे। दक्ष प्रजापति के पहुंचने पर, जब उनका ध्यान भंग हुआ तब उन्होंने पूछा—पुत्र ! किस कारणवश आए हो ? दक्ष प्रजापति ने प्रार्थना की—हे पिता श्री ! सोलह कन्याओं में से पन्द्रह का तो विवाह हो गया, किन्तु एक कन्या के लिए कोई योग्य वर नहीं दिखाई दे रहा है। इसलिए आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूं कि सती का विवाह किसके साथ किया जाए, इसका निश्चय आप ही करने की कृपा कीजिए।

ब्रह्माजी ने कुछ समय विचार किया और फिर बोले—पुत्र ! सती के योग्य एक ही वर मेरी समझ में आ रहा है। वह हैं भगवान् शिव। वे कैलाशपति ही सती के

लिए सर्वथा उपयुक्त पति सिद्ध होंगे, यह मेरा मत है। शिवजी का नाम सुनकर दक्ष कुछ चौंके। उन्होंने कहा—तात ! शिवजी तो उसके उपयुक्त प्रतीत नहीं होते। कहां तो मेरी अत्यन्त सुन्दर और कोमल अंग वाली कन्या सती और कहां वे दुर्वेश, दुष्कर्मी तथा भयंकर रूप वाले श्मशान सेवी शंकर।

ब्रह्माजी दक्ष की शंका सुनकर कुछ समय मौन रहे, फिर बोले—वत्स ! शिव के आन्तरिक स्वरूप को तुम अभी जानते नहीं हो। जिस वेश की तुमने चर्चा की है, वह तो उनका बाह्य रूप है। जिसका अर्थ है कि वे जीवात्माओं की भावनाओं के अनुरूप ही अपना स्वरूप दिखाते हैं। अन्यथा वे तो परम सुन्दर, अत्यन्त लावण्य-सम्पन्न तथा सर्वगुणों से विभूषित हैं। दक्ष को अपने पिता ब्रह्माजी का कथन कुछ उपयुक्त प्रतीत नहीं हुआ। वे असमंजस में पड़ गए कि सती का विवाह शंकर के साथ कर देने वाले सुझाव को किस प्रकार अस्वीकार करें ?

अन्त में साहस बटोर कर उन्होंने ब्रह्माजी से निवेदन किया—पिताजी ! आपके कहने से यह बात तो सिद्ध ही हो गई कि शंकर बहुरूपिया हैं। अब तक बहुत-से ऋषि-मुनि ऐसा ही कहते रहे हैं, किन्तु मैं उस कथन पर विश्वास नहीं करता था।

ब्रह्माजी दक्ष की बात सुनकर हंसे और बोले—वत्स ! तुम शिव तत्व से अभी तक अनभिज्ञ हो, यह मुझे विदित नहीं था। तुम्हें उनके वास्तविक स्वरूप, बुद्धि, बल, ऐश्वर्य आदि के विषय में भले प्रकार समझ लेना चाहिए अवश्य ही उनका ऐश्वर्य असीम है, ज्ञान भी असीम है। इस विश्व में यदि कोई आनन्दमय है तो एक वही हैं। वे तीनों लोकों के स्वामी, समस्त प्राणियों में प्राण रूप से विद्यमान रहने वाले तथा सृष्टि की रचना, पालन और विलय स्वयं ही करने वाले हैं। वे अनेक रूप धारण करने वाले एक ही प्रभु हैं।

हे दक्ष ! मैं फिर कहता हूं कि जीवात्मा अपनी-अपनी भावना के अनुसार ही उनके रूप का दर्शन करते हैं। जिनके हृदय विषयासक्ति से भरे हैं, उनका ध्यान उनकी देह से लिपटे रहने वाले सर्पों की ओर जाता है, उनके गले में पड़ी मुण्डमाला और अस्थियों के आभूषणों की ओर जाता है। वे समझते हैं कि यह उनका दुर्गुण है, दुर्वेश है, किन्तु उनमें तथ्य क्या है ?

इसे क्यों नहीं समझना चाहते ? हे पुत्र ! उन सब आवरणों का अभिप्राय स्पष्ट है कि विषय-भोग नागों के समान विषयुक्त हैं और वे कभी न कभी विषय रूपी नाग ही उन्हें दंशित करेंगे। मुण्डमाला और अस्थियां भी दुर्दान्त काल की सूचक हैं। प्रत्येक शरीरधारी को अन्त में मरना ही है और उसके शरीर की शेष रह जानी हैं अस्थियां, जो कि कपाल में हैं, शरीर में भी हैं। उनका ऐसा स्वरूप सभी प्राणियों को चेतावनी देता है कि किसी दिन तुम्हें भी इसी अवस्था को प्राप्त होना है। यही प्राणी की नियति है।

हे पुत्र ! शंकर के स्वरूप को ज्ञान की आंखों से देखने का प्रयत्न करो। मेरा

परामर्श मानकर सती का विवाह उन्हीं शंकर के साथ कर दो। वस्तुतः सती उन्हीं की महाशक्ति है। उसका विवाह उन्हीं के साथ होगा, यह निश्चय है। दक्ष प्रजापति ब्रह्माजी की आज्ञा के समक्ष झुक गए। उन्होंने अपने निवास स्थान पर लौटकर पत्नी को ब्रह्माजी की आज्ञा सुनाई। उसने भी उस सुझाव को ठीक मानते हुए सती का विवाह भगवान् शिव के साथ कर देना ही उचित बताया।

सूतजी बोले—हे शौनक ! इस प्रकार दक्ष ने अनमने भाव से सती का विवाह भगवान् शंकर के साथ कर दिया। उनसे मिलकर सती भी प्रसन्न हो गई।

# दक्षमहल में सती का आगमन

सूतजी ने कहा—हे शौनकजी ! एक समय की बात है कि दक्ष प्रजापति ने एक महान् यज्ञ का आरम्भ किया तथा दीक्षा लेकर सभी देवताओं और ऋषियों को आमंत्रित किया। तब शिव माया से विमोहित हुए देवगण और ऋषिगण उस यज्ञोत्सव में सम्मिलित होने को वहां पहुंचे। वामदेव, भृगु, दधीचि, भारद्वाज, गौतम, अगस्त्य, कश्यप, अत्रि, भार्गव, ककुभ, पैल, पराशर, गर्ग आदि अनेक ऋषि, मुनि, ब्रह्मज्ञानी आदि ने प्रसन्न मन से उस यज्ञ में भाग लिया। अनेकानेक देव, ऋषि आदि अपने कुटुम्ब परिवार सहित उस यज्ञ में आए। देव-पत्नियां, बालाएं आदि भी भले प्रकार सज-धजकर उत्साहपूर्वक उसमें आईं। ब्रह्माजी को भी उस यज्ञ में विशेष रूप से आमंत्रित किया गया था। इसलिए वे भी सपरिवार तथा मूर्त वेद-शास्त्रादि सहित सम्मिलित हुए।

हे मुनिश्रेष्ठ ! भगवान् विष्णु को भी आदर सहित आमंत्रित किया गया था, इसलिए वे भी अपने समस्त परिवार सहित पधारे। सभी का दक्ष प्रजापति ने बड़े सम्मान के साथ स्वागत-सत्कार किया।

उन सभी के लिए स्वयं भगवान् विश्वकर्मा ने अत्यन्त वैभव-सम्पन्न और प्रकाश से युक्त अनेक भवनों का निर्माण किया था। उन्हीं भवनों में यथा पद-प्रतिष्ठा वे सभी ठहरा दिए गए। यह महायज्ञ कनखल नामक तीर्थ स्थान में हुआ। उसके प्रारम्भ होने के साथ ही भृगु आदि तपस्वियों को उसमें ऋत्विज बनाया गया। सभी मरुद्गणों सहित विष्णु अधिष्ठाता हुए तथा सभी वेदों और यज्ञों के ज्ञाता स्वयं ब्रह्माजी ही उस यज्ञ में ब्रह्मा हुए। यज्ञ स्थान पर रक्षक रूप से सभी दिक्पाल रहे।

हे शौनकजी ! उस स्थान पर यज्ञ भी स्वयं अपने रूप में स्थिर हो गया था। सभी महामुनियों ने वेदों को धारण किया। वह यज्ञ अत्यन्त विशाल था। वैसा यज्ञ कभी देखा-सुना नहीं, नारदादि देवर्षि-महर्षिगण वहां पृथक्-पृथक् रूप से गाथा का

गान कर रहे थे। वरण किए जाने वालों में अनेकानेक ब्रह्मर्षि, राजर्षि, देवर्षि, मित्रगण, राजागण, वसुगण आदि सभी सपरिवार सम्मिलित हुए थे।

कौतुक-मंगल के पश्चात् दक्ष प्रजापति ने यज्ञ की दीक्षा ली और वे भार्या सहित यजमान रूप से सुशोभित हुए थे। किन्तु सभी उपस्थित जन वहां भगवान् शंकर को समागत न देखकर आश्चर्य करने लगे तथा पूछने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि उस यज्ञ में शिवजी को आमंत्रित ही नहीं किया गया। यद्यपि शिव पत्नी सती दक्ष की अत्यन्त प्रिय कन्या थी, तो भी व शिव से वैर का स्मरण करके उसे भी नहीं बुलवाया गया था। बहुतों ने दक्ष के इस कार्य को उचित नहीं माना।

हे शौनक ! इस प्रकार उस महायज्ञ का आरम्भ हो गया। सभी अपने कार्य में तत्पर हुए, तभी परम शैव्य दधीचि ने वहां शिव-शिवा को न देखकर उच्च स्वर में कहा—हे देवगण ! हे ऋषिगण ! आप सभी मेरे प्रश्न को सुनिए। मैं पूछना चाहता हूं कि इस महोत्सव में भगवान् शिव क्यों नहीं आए ? इस समय यहां सभी देवगण विराजमान हैं, किन्तु कैलाशपति ही दिखाई नहीं देते। उनके यहां न होते हुए भी क्या यह यज्ञ शोभा पा रहा है ? सभी ज्ञानीजन, ऋषि-महर्षि, मुनिश्रेष्ठ एवं महात्माजन जिनके द्वारा समस्त मंगल कार्यों की सिद्धि होना कहते हैं, उन्हीं पुराण पुरुष, भगवान् शंकर के दर्शन यहां नहीं हो रहे हैं, इसका क्या कारण है ? आप लोग मेरी बात को ध्यान से सुनें कि उन नीलकण्ठ भगवान् के आने से ही यह यज्ञ सिद्धिदायक होगा, अन्यथा अपूर्ण ही रह जाएगा।

सूतजी बोले—हे शौनकजी ! दधीचि का यह प्रश्न दक्ष को उचित नहीं लगा। उन्होंने अत्यन्त क्रोधपूर्वक कहा—हे ब्रह्मन् ! भगवान् विष्णु समस्त देवताओं के मूल हैं, सनातन धर्म की स्थिति भी उन्हीं में है। जब वे स्वयं इस यज्ञ में विद्यमान हैं तो यज्ञ के अपूर्ण होने का कोई कारण प्रतीत नहीं होता। मुख्य रूप से सभी वेद और समस्त यज्ञ उन्हीं में स्थित हैं।

उनके अतिरिक्त मूर्त रूप में लोक पितामह ब्रह्माजी भी सत्यलोक से पधारे हैं, वही इस महायज्ञ के ब्रह्मा हैं। इस कारण भी यज्ञ के पूर्ण होने में कुछ सन्देह नहीं करना चाहिए। समस्त देवताओं सहित इन्द्रराज भी स्वयं यहां विद्यमान हैं तथा समस्त यज्ञों के कर्ता आप भी ऋषि-महर्षि अत्यन्त पुण्यवान् और ज्ञानवान् यहां हैं ही। यज्ञ में जितने भी पात्र समझे जा सकते हैं, वे सभी वेद-वेदार्थ के ज्ञाता और दृढ़व्रती यहां आए हुए हैं, तब केवल शंकर से ही हमें क्या प्रयोजन है ? वे नहीं आए, तो क्या यज्ञ नहीं होगा ?

इतना सुनकर दधीचि ने पुनः दृढ़तापूर्वक कहा—दक्ष ! आप मानें या न मानें, शंकरजी के बिना इस यज्ञ का कोई महत्व नहीं है, कोई फल नहीं है। फिर वे तो तुम्हारे जामाता हैं, पुत्री और जामाता के बिना यज्ञ महोत्सव कैसा ? आप मेरे कथन पर शान्त हृदय से चिन्तन करो।

दक्ष प्रजापति ने उन्हें समझाने की भावना से कहा—हे ब्रह्मन् ! अपने पिता श्री ब्रह्माजी की आज्ञा से मैंने अपनी सबसे प्रिय कन्या उन्हें दी, किन्तु उन्हें तो कुल-धर्म और सज्जनों के व्यवहार का भी कुछ ज्ञान नहीं है। वे भूत-पिशाचों के अधिपति तथा सभी दुर्गुणों से सम्पन्न हैं, उनके आने से यज्ञ भी अपवित्र हो जाता इसीलिए मैंने उन्हें यहां आमन्त्रित नहीं किया है। मेरा आग्रह है कि आप सब कृपापूर्वक इस पर ध्यान न देते हुए मेरे इस यज्ञ को सफल बनायें।

दधीचि ने कहा—हे दक्ष ! भगवान् शंकर के बिना तुम्हारा यह यज्ञ अयज्ञ ही है। यह कभी भी सिद्धिदायक सिद्ध नहीं होगा। वरन् शिवजी के अनुपस्थित रहते हुए इसे करोगे तो स्वयं नष्ट हो जाओगे।

हे मुनिवर ! दधीचि यह कहकर यज्ञ से उठकर चले गए। उनके जाने के साथ ही, जितने भी शिव भक्त वहां आए थे, वे भी दक्ष की निन्दा करते हुए अपने-अपने स्थान को गए। तत्पश्चात् दक्ष ने सभी उपस्थित जनों के समक्ष कहा—देवगण ! ऋषिगण ! सुनिए—शिव-भक्त दधीचि एवं अन्यान्य शैवों के चले जाने से हमें किसी प्रकार की अमंगल की आशंका नहीं रहनी चाहिए। यह तो शुभ ही हुआ कि जिससे मैं द्वेष करता हूं उसके भक्त यहां से प्रस्थन कर गए। ब्राह्मणो ! हे वेदवादियो ! हे देवताओ ! भगवान् विष्णु यहां विद्यमान हैं, वेदात्मा ब्रह्माजी यहां हैं ही, इन्द्रादि समस्त ऐश्वर्यवान् भी उपस्थित हैं। आप सब मिलकर मेरे इस महायज्ञ को पूर्ण रूप से सफल बनाने की कृपा करिए।

सूतजी बोले—हे शौनकजी ! दक्ष के इस प्रकार से विनम्र और आग्रह भरे वचन सुनकर सब उपस्थित जनों ने दक्ष का अनुमोदन किया, तब भगवान् शंकर की माया में विमोहित हुए देवता और ऋषिगण उस महान् बृहस्पति पक्ष व योग में यज्ञ कार्य में तत्पर हुए। इस प्रकार यज्ञ का कार्य आरम्भ हुआ।

सूतजी ने कहा—मुने ! दक्ष ने शिवजी को नहीं बुलाया, वहां तक तो कुछ तर्क-संगत भी मान सकते हैं। किन्तु दाक्षायणी सती को न बुलाना दक्ष की भूल ही थी। यथार्थ में तो दक्ष अपने ऐश्वर्य मद में भरे हुए थे, इसलिए उस समय उन्हें उचित-अनुचित कुछ भी नहीं सूझा। किन्तु दक्ष द्वारा न बुलाए जाने पर भी शिवप्रिया सती उस महोत्सव में पहुंच गई और पिता द्वारा अपमानित होने पर उन्होंने वहीं प्राण त्याग दिए। इसी कारण दक्ष का यज्ञ पूर्ण न हो सका।

शौनकजी ने कहा—हे महाप्रभु ! उस महोत्सव में सती कैसे पहुंच गई ? उनका अपमान क्यों और कैसे हुआ ? सूतजी बोले—हे शौनकजी, माता सती को चन्द्रमा के द्वारा ज्ञात हुआ कि उनके पिता ने यज्ञ का आयोजन किया है और सभी देवी-देवगण वहां जा रहे हैं। उन्हें अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि मेरे पिता के यहां यज्ञ-महोत्सव है और मुझे पता भी नहीं ? वह सोचने लगीं कि उन्होंने मुझे क्यों नहीं बुलाया ? मैं तो उनकी अत्यन्त प्रिय पुत्री हूं। सम्भव है कि शिवजी के पास निमंत्रण

आया हो, किन्तु वे मुझे उसके विषय में बताने से भूल गए हों। इसलिए उन्हीं से पूछना चाहिए।

सूतजी बोले—हे मुनिवर ! सती शीघ्र ही शिवजी के पास पहुंची। उन्होंने सती को तीव्रता से आती हुई देखकर प्रश्न किया—प्रियतमे ! मुझे अपने आने का कारण शीघ्र बताओ।

सती ने उत्सुकतावश कहा—प्राणनाथ ! मैंने सुना है कि मेरे पिता के यहां बृहस्पति यज्ञ का महोत्सव हो रहा है। उस यज्ञ में भाग लेने के लिए सभी देवगण अपने परिवार सहित प्रसन्न चित्त से चले जा रहे हैं। अनेकों ऋषि-महर्षि भी वहां पहुंच चुके हैं। हे प्रभु ! आप वहां क्यों नहीं चल रहे हैं ? क्या आपको मेरे पिता द्वारा वृहद् यज्ञोत्सव किया जाना उचित प्रतीत नहीं हुआ है ? हे नाथ ! हमें भी वहां अवश्य ही चलना चाहिए। इसलिए मुझे साथ लेकर शीघ्र ही चलने की कृपा कीजिए।

शिवजी बोले—हे प्रिये सती ! तुम्हारा कथन सत्य है कि सुहृदयों से मिलना परम धर्म है, इसलिए उत्सवादि के अवसर पर अवश्य जाना चाहिए। किन्तु प्रियतमे ! तुम्हारे पिता ने मुझसे वैर-भाव के कारण निमंत्रण नहीं भेजा। नीति के अनुसार बिना बुलाए कहीं नहीं जाना चाहिए, क्योंकि जो इस प्रकार जाते हैं उनका तिरस्कार ही होता है। इसलिए उनके यहां जाना उचित नहीं है।

सती ने कहा—हे प्रभु ! सम्भव है कि निमंत्रण देने में किसी प्रकार की भूल हो गई हो, इसलिए वहां तो बिना बुलाए जाने में कोई हानि नहीं है। आपके वहां चलने से उनका यज्ञ भी सफल हो जाता। फिर आप तो स्वभाव से क्षमावान् हैं मेरे पिता की भूल को क्षमा करके वहां चलिए नाथ ! आपको वहां समागत देखकर समस्त देवताओं, ऋषियों आदि का समाज प्रसन्न हो जाएगा।

भगवान शंकर दक्ष के विरोध का कारण बताते हुए बोले कि प्रिये ! अब तुम ही निर्णय लो कि ऐसी दशा में हमारा जाना कैसे सम्भव है ? यदि हम वहां जाएंगे तो अवश्य ही वहां हमारा अपमान होगा।

जब सती के आग्रह पर भी शंकर ने चलना स्वीकार नहीं किया तो सती ने निवेदन किया—प्राणनाथ ! मैं तो उनकी सर्वाधिक प्रिय पुत्री हूं, आप मुझे ही वहां जाने की आज्ञा दीजिए। मुझे अपने पिता के यहां गए हुए समय भी बहुत व्यतीत हो गया है। मेरी माता तो मेरा स्मरण कर ही रही होगी। हे प्राणनाथ ! मैं अवश्य वहां जाना चाहती हूं।

शिवजी बोले—हे प्रिय सती ! तुम्हें जाने की इच्छा है तो मैं रोकता नहीं। तुम वहां चली जाओ, उसकी मैं व्यवस्था किए देता हूं। किन्तु तुम भी वहां जाकर सम्मान पा सकोगी या नहीं ? इस पर विचार कर लो। तुम्हारे पिता ने मेरा घोर अपमान किया, उन्होंने अनेकों दुर्वचन कहते हुए मुझे शाप दिया और उनके अनुयायी भी मेरी निन्दा करते हैं, इसलिए अब तुम भी उनका सम्मान नहीं पा सकोगी। यदि तुम मेरी

बात को अमान्य करके जाओगी तो ठीक नहीं होगा। क्योंकि किसी प्रकार अपने बान्धवों द्वारा तिरस्कृत होना तो मृत्यु के ही समान है।

सती ने अपने प्राणेश्वर के कथन की ओर भी ध्यान नहीं दिया और हठपूर्वक बोली—मैं तो इस अवसर पर अवश्य जाऊंगी। उन्होंने पिता के यहां जाने को तत्पर देखकर अपने गणों को उनके साथ जाने की आज्ञा दी। पीछे बैल पर विराजमान सती थी, जिनके ऊपर छत्र था, इस प्रकार सती को आगे करके शिव सेना चल रही थी। इस प्रकार दाक्षायणी सती अपने पिता के यज्ञ-महोत्सव में पहुंच गईं। उस समय यज्ञशाला से वेद ध्वनि आ रही थी, सब ओर से सम्पन्न उस महायज्ञ की अत्यन्त शोभा हो रही थी। तभी उस यज्ञशाला में शिवप्रिया सती ने प्रवेश किया, किन्तु दक्ष के भय से किसी ने भी उनका आदर नहीं किया।

# सती की प्राण-आहुति एवं यज्ञ विध्वंस

सूतजी बोले—हे मुनिगण ! हे शौनकजी ! आप ध्यान से सुनिए सती वहां पहुंच गईं, जहां वह अत्यन्त प्रभासम्पन्न महायज्ञ हो रहा था तथा जहां देवता, दैत्य, मुनि, इन्द्रादि कुतूहल युक्त विद्यमान थे। वहां सती को आई हुई देखकर उनकी माता और बहनों ने यथोचित आदर किया, किन्तु उनके पिता दक्ष प्रजापति ने उनका किंचित् भी सत्कार नहीं किया। हे मुने ! इस प्रकार से पिता द्वारा तिरस्कार किए जाने पर सती अत्यन्त दुखी हुईं। तभी उन्होंने देखा कि उस यज्ञ में शिवजी का भाग नहीं है। उसने सोचा कि भगवान् शिव तो मेरे पिता से भी अधिक शक्तिशाली हैं, उनको यज्ञ भाग न देकर अपमानित ही किया गया है।

ऐसा सोचकर वे क्रोधाग्नि पूर्ण नेत्रों से सब ओर देखने लगीं। स्वयं ही क्रोध युक्त वचनों से उन्होंने कहा—समस्त विद्यमान देवगण ! ऋषिगण आदि मेरा कथन ध्यानपूर्वक सुनिए। भगवान् शंकर सभी प्राणियों के प्रिय प्राण हैं, सभी से महान हैं। उनसे बड़ा इस विश्व भर में कोई नहीं है। उनका कोई शत्रु हो, ऐसा भी नहीं कह सकते। क्योंकि वे किसी से द्वेषभाव रखते ही नहीं। उनके लिए न कोई शत्रु है, न कोई प्रिय है, सभी समान हैं। उन सर्वात्मा शिव से शत्रुता कौन करना चाहेगा ? हे पिता ! आपने ऐसे गुणग्राही महान् ऐश्वर्यशाली भगवान् शिव से वैर किया है। जब प्राणी शिव नाम का उच्चारण करने मात्र से पाप-रहित हो जाते हैं, तब उनसे वैर कैसा ? उन महा तेजस्वी शंकर की आज्ञा को कोई भी नहीं टाल सकता, उन्हीं से तुम द्वेष करते हो तो तुम्हारा कल्याण किस प्रकार होगा ?

हे पिता ! शंकर सर्व यज्ञ स्वरूप, सभी यज्ञों के आदि ज्ञाता हैं, उनके बिना

तुम्हारा यह यज्ञ कभी सफल नहीं हो सकता। ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्रादि सभी बड़े-बड़े देवता और मुनीश्वर जिनकी प्रसन्नता से अपनी पद-प्रतिष्ठा को सुरक्षित रखे हुए हैं, उन्हें तुम सामान्य देवता समझकर, उनका तिरस्कार कर रहे हो। यह कैसी दुर्भाग्यपूर्ण बात है ? इसका क्या परिणाम होगा, इसका विचार भी तुमने नहीं किया है।

हे पिता श्री ! जिस धर्म-रक्षक के समक्ष कोई दुष्ट निरंकुश होकर शिव निन्दा करे, वह वध करने के योग्य है। किन्तु यदि किसी में वध करने की शक्ति न हो तो अपने कानों को बन्द कर ले अथवा वहां से उठकर तुरन्त चला जाए। यदि यह भी सम्भव न हो तो उसे अपना जीवन रखने का भी कुछ अधिकार नहीं है। हे मुनिगण ! तुम सबकी बुद्धि भी भ्रष्ट हो गई है, इसी कारण तुम इन पापकर्ता दक्ष के साथी बने हो। ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्रादि देवता भी न्याय-अन्याय का विचार त्याग कर इस निष्फल यज्ञ में भाग ले रहे हैं, क्या यह कर्म उनके उपयुक्त है ? सती ने पुनः आक्रोश में कहा।

हे नारायण ! आप तो तत्वपूर्वक शिवजी की महिमा को जानते हो, फिर भी आपने यह शिव-विहीन यज्ञ क्यों होने दिया है ? हे चतुरानन ! तुम्हारे पहले पांच मुख थे, तुमने अहंकारवश शिवजी के प्रति द्रोह किया था, तब उन्होंने तुम्हारा एक मुख काटकर शिक्षा दी थी। फिर भी तुम शिजवी से द्रोह वाले इस यज्ञ में भागी हो रहे हो। हे मुनिजनो ! ब्राह्मणो ! आचार्यो ! आप सभी इस निष्फल यज्ञ में सहयोग देते हुए शिव द्रोह का परिणाम मेरे पिता को नहीं बताते। हे पिताश्री ! आपने ऐसा क्यों किया ?

सूतजी बोले—दाक्षायणी के इस प्रकार क्रोधपूर्वक कहे हुए वचनों को सुनकर दक्ष ने कहा—पुत्री ! तेरे पति बहरूपिया अमंगल वेश वाले, वेद-विहीन, पिशाचों द्वारा सेवित हैं। इसीलिए मैंने उन्हें इस यज्ञ में आमंत्रित नहीं किया। मैंने अपने पिता ब्रह्माजी की आज्ञा को मानकर तेरा विवाह उनके साथ कर दिया था। किन्तु उन्होंने देवताओं और ऋषियों के समाज में मुझे प्रणाम न करके, मेरा अपमान किया था, तो मैं उन्हें यहां क्यों बुलाता ? परन्तु तू यदि इस यज्ञ में आ गई है तो क्रोध को त्यागकर अपना भाग प्राप्त कर ले।

यह सुनकर सती ने पुनः कहा—अपने प्राणनाथ शंकर के बिना मैं ही अपना भाग क्यों लूं ? मुझे तुम्हारी इस प्रकार की दुर्भावना का ज्ञान नहीं था, इसीलिए यहां आ गई। हे तात ! मैंने उनकी निन्दा भी सुनी है और तुम शिव विरोधी के अंश से उत्पन्न भी हुई हूं, इसलिए अपने इस पापी शरीर का परित्याग ही उचित समझती हूं। मुझे जो शिव निन्दा श्रवण का पाप लगा है, वह प्राण दिए बिना कदापि दूर नहीं हो सकता।

सूतजी ने कहा—हे शौनकजी ! इस प्रकार कहकर सती मौन होकर भगवान शिव का स्मरण करने लगीं। तभी उन्होंने उत्तर दिशा की ओर मुख किया और नेत्रों

को बन्द करके योग-साधना में तत्पर हुई। उन्होंने उस साधना द्वारा अपने प्राण और अपान को एक किया और नाभि चक्र में उदान वायु को उठाकर हृदय में धारण कर लिया तथा कण्ठस्थ वायु को भृकुटियों में स्थिर करके वायु के द्वारा ही अग्नि तत्व प्रकट करके अपने शरीर को उसी समाधि-अवस्था में भस्म कर लिया। ऐसा होते ही पृथ्वी पर हाहाकार मच गया।

अत्यन्त दुःखित हुए उपस्थित जन परस्पर कहने लगे कि अहो ! दक्ष पुत्री ने क्रोधित होकर अपने प्राण ही दे दिए। यह इस दम्भी प्रजापति की कुमति का ही परिणाम है, इसलिए इस शिवद्रोही को घोर अपयश और अमंगल की प्राप्ति होगी। यदि यह चाहता तो सती को प्राण त्याग करने से रोक सकता था। किन्तु इसने जान-बूझकर ऐसा नहीं किया।

उसी समय सभी उपस्थित जनों ने आकाशवाणी सुनी। वह वाणी कह रही थी कि हे दक्ष ! तेरी पुत्री तो भगवान् शिव की अर्द्धांगिनी होकर जगज्जननी बन गई थी। उनमें परस्पर किंचित् भी भेद नहीं रहा था। जो सामर्थ्य शिव में है, वही उनकी प्राण स्वरूपा सती में थी, उसका निरादर करने का फल तुझे भोगना ही पड़ेगा।

अरे मूढ़ ! शिव से अभिन्न होकर वह सती तप, दान, धर्म, यज्ञादि कर्मों का फल देने में समर्थ थी, वही दुष्टों के संहार में तत्पर रहने वाली तथा परात्पर रूपिणी शिवमयी थी। उस महाशक्ति शिवा का तिरस्कार करने के कारण तेरा यज्ञ नाश को प्राप्त हो जायेगा। हे देवगण ! यह स्थान अब अमंगल मूलक है, तुम सभी यहां से तुरन्त चले जाओ। मुनिगण, यक्षगण, किन्नरादि भी इस स्थान को यथाशीघ्र त्याग दें, अन्यथा विपरीत परिणाम होगा। यहां जो भी रहेगा, वह नष्ट हो जाएगा। उस आकाशवाणी को सुनकर सभी देवता, ऋषि-मुनि आदि उपस्थित जन चकित, भयभीत हुए मौन बैठे रहे। किसी की समझ में नहीं आ रहा था कि अब क्या किया जाए ?

उधर ऋभवों से परास्त हुए शिवगण भागकर भगवान् शिव की शरण में पहुंचे, उन्होंने वहां का सब वृत्तान्त निवेदन किया। भगवान् शंकर के समीप उस समय देवर्षि नारद भी थे, वे सती के देह त्याग का वृत्तान्त उन्हें पहले ही सुना चुके थे। शिवगणों के द्वारा करुण पुकार करने पर वे अधिक क्रोधित हो उठे। उस समय प्रतीत हुआ कि अब इनके क्रोध से रौद्र रूप धारण कर लेने से यह संसार नष्ट हो जाएगा।

# शिव का रौद्र-रूप

हे मुने ! भगवान् शंकर ने लोक संहारक रौद्र रूप धारण किया और अपने शिर से एक जटा उखाड़कर पर्वत पर क्रोधपूर्वक दे मारी। वह जटा पर्वत पर टकराते ही

दो टुकड़ों में विभक्त हो गई उस समय महाप्रलय काल जैसा भयंकर शब्द हुआ। तभी उस जटा से महाबली वीरभद्र अवतरित हुआ। दश अंगुल परिमाण स्थान में स्थित रहते हुए भी उसने सम्पूर्ण पृथ्वी को व्याप्त कर लिया था। प्रलयाग्नि के समान इस तेजस्वी वीर के दो सहस्र भुजाएं थीं।

जटा के दूसरे भाग से अत्यन्त भीषण रूप वाली महाकाली प्रकट हुई। उनके तेज से सभी दिशाएं जलती हुई-सी प्रतीत हो रही थीं। इस प्रकार उत्पन्न हुए महाबली वीरभद्र ने शिवजी के सम्मुख होकर उन्हें प्रणाम किया और हाथ जोड़कर बोले—हे महारुद्र ! तीन नेत्र वाले प्रभु ! मेरी उत्पत्ति किसलिए हुई है ? मुझे क्या कार्य करना है ? इस विषय में शीघ्र आज्ञा दीजिए।

भगवान् शंकर ने अपने समक्ष हाथ जोड़कर खड़े हुए उस विकराल पुरुष को देखकर सन्तुष्ट भाव से कहा—हे वीर ! तेरा कल्याण हो। हे वत्स ! तेरी उत्पत्ति मेरे अंश से हुई है। मेरी आज्ञा है कि तू तुरन्त ही दक्षालय को प्रस्थान कर और यज्ञ सहित दक्ष को नष्ट कर दे। जा तेरी अवश्य विजय होगी। भगवान् शिव की ऐसी आज्ञा पाकर वीरभद्र ने मस्तक झुकाकर 'जो आज्ञा' कहा और उनकी परिक्रमा करके प्रणाम किया। तदनन्तर उन्हें पुनः प्रणाम करके प्रलयाग्नि के समान दक्षालय की ओर चल दिया। गणों ने उसे सब ओर से घेर रखा था और साक्षात् रुद्र के समान ही उसका पालन कर रहे थे। वीरभद्र भी शिवजी के समान ही सर्पों को शरीर से लिपटाए हुए, रथ पार आरूढ़ हुआ चल रहा था। उसका रथ विशाल था, जिसमें बहुत-से सिंह तेज गति से चल रहे थे।

साथ ही काली, भद्र-काली, कात्यायनी, ईशानी, चामुण्डा, भद्रा, मुण्डमर्दिनी आदि देवियों के साथ भगवती महाकाली भी उन रुद्र गणों के साथ चली। भैरव भी शिवजी की आज्ञा से साथ ही थे। इस प्रकार दक्ष-यज्ञ के विनाशार्थ जाने वाले उस दल का गगन में भी कोलाहल सब दिशाओं में व्याप्त हो रहा था। वह धूल कनखल में दक्षालय तक सहज ही पहुंच गई।

सूतजी बोले—हे शौनकजी ! वीरभद्र के उस दल का अत्यन्त कोलाहल और आकाश तक उड़ती धूल पर दक्षालय में विद्यमान देवताओं, ऋषियों, महिलाओं तथा अन्य सभी की दृष्टि पड़ी तो सब सोचने लगे कि यह धूल कहां से आ रही है ? यह क्या शिवगणों की सेना ही अधिक संख्या में एकत्र होकर चली आ रही है ? ऐसा विचार उठते ही सभी चिन्तित और भयभीत हो गए। तभी सब ओर से अनेक प्रकार के अपशकुन दिखाई देने लगे। इस प्रकार वहां उपस्थित समुदाय में अत्यन्त भय व्याप्त हो गया। उसी समय अनेक वर्ण वाले काले, पीले, दीर्घकाय, लघुकाय तथा अनेक वेशधारी, विकराल और विकृत स्वरूप वाले रुद्रगणों ने दक्षालय को सब ओर से घेर लिया। बहुत-से गण कोलाहल करते हुए भीतर घुस आए। उन्होंने दक्षालय में तोड़-फोड़ आरम्भ कर दी।

कुछ गणों ने ब्राह्मणों, ऋषि-मुनियों आदि को उत्पीड़ित किया, कुछ ने भागते हुओं को पकड़कर भय दिखाया। मणिमान ने भृगु ऋषि को पकड़ा, चण्डीशे ने पूषा और नन्दीश ने भग देवता को तथा भद्र ने दक्ष प्रजापति को पकड़ा। इस प्रकार शिवगणों ने किसी को भी वहां से भागने नहीं दिया। फिर देवगणों ने अपने बचाव के लिए शस्त्रास्त्र संभालकर शिवगणों पर आक्रमण किया। इसके पश्चात् घोर युद्ध होने लगा। बहुत-से देवता मारे गए तो बहुत-से रुद्रगणों का भी संहार हुआ। यह देखकर वीरभद्र आगे आया। उसके प्रहारों से सभी देवता प्राण बचाकर अपने-अपने स्थान को जाने लगे। उस युद्ध में शिवगणों की ही विजय हो रही थी। अब वीरभद्र दक्ष का मस्तक काटने को तत्पर हुआ। किन्तु इसमें उसे सफलता नहीं मिली। मन्त्रमय शस्त्रों से भी दक्ष के शरीर की त्वचा नहीं चिर सकी। तभी उसे प्रेरणा हुई कि इसका गला पशु के समान मरोड़ देना चाहिए। वीरभद्र ने तुरन्त दक्ष का कण्ठ मरोड़कर सिर को धड़ से अलग कर दिया। तभी कुछ गणों ने दक्ष के सिर को यज्ञाग्नि में झोंक दिया तथा यज्ञशाला को जलाकर नष्ट कर दिया। इस प्रकार दक्ष का यज्ञ विध्वंस हो गया।

उन सबके चले जाने पर युद्ध में हारे हुए देवताओं ने ब्रह्मा-विष्णु से प्रार्थना की कि प्रभु ! किसी प्रकार से दक्ष प्रजापति को जीवन दान मिलना चाहिए। उन दोनों ने कहा यह तो तभी सम्भव है जब भगवान् रुद्र सती मरण के विषाद से मुक्त और शान्त होकर दक्ष पर कृपा करने को तत्पर हों, इसलिए आप सब मिलकर उन्हीं भगवान् शंकर को मनाओ। शिवजी ने उन सबको आए हुए देखकर सबको आगमन का कारण पूछा। ब्रह्माजी बोले—हे शंकर ! आप सभी विपत्तियों का शमन करने में समर्थ हैं, आपकी जय हो। हे त्रिलोकीनाथ ! आप सभी पापियों पर भी शीघ्र ही प्रसन्न हो जाते हैं, कृपया उस विनष्ट हुए दक्ष प्रजापति को जीवनदान दीजिए और उसके ध्वंसित यज्ञ को पूर्ण करा दीजिए। हे आशुतोष ! यह कार्य आपके प्रसन्न होने पर ही सम्पन्न हो सकता है। इसलिए, आप प्रसन्न हो जाइए। हे महादेव, ! आपने उसे, उसके दुष्कर्म का फल दे दिया, अब वह क्षमा के योग्य है। साथ ही यह भी कृपा करिए जिन देवताओं, यक्षों, ऋषि-महर्षियों आदि के अंग-भंग हो गए, उनके वे अंग पूर्ण हो जाएं। आपको भी यज्ञ के अक्षय भाग की प्राप्ति हो, ऐसी कृपा कीजिए।

# शिव द्वारा दक्ष-यज्ञ समापन

शिवजी बोले—हे ब्रह्मन् ! मैं तो किसी को दण्ड देने में रुचि नहीं रखता। किन्तु प्रजापति ने मेरा ही अपमान नहीं किया, अपनी पुत्री को इतना अधिक दुःखित

कर दिया कि उसने प्राण ही दे दिए। हे चतुरानन ! उनका अहंकार खण्डित न होने से अन्य प्रकार की समस्याएं उत्पन्न हो सकती थीं। मैं भी चाहता हूं किन्तु दक्ष का सिर धड़ से अलग करके भस्म कर दिया गया है इसलिए उस सिर के स्थान पर बकरे का मुख लगेगा। जिन देवताओं ने मुझे यज्ञ का उच्छिष्ट भाग दिया, उनके सब अंग पूर्ण हो जाएं।

यह सुनकर ब्रह्माजी सहित सभी देवता ने शिवजी से प्रार्थना की कि प्रभु ! आप भी वहां चलेंगे, तभी सब कार्य सिद्ध होगा। इसलिए आप स्वयं भी हमारे साथ चलने की कृपा करें। उनके द्वारा साग्रह प्रार्थित होने पर शिवजी भी साथ चले और सभी दक्षालय में पहुंचे।

तदनन्तर यज्ञ का पुनः आरम्भ किया गया तथा एक बकरे का सिर काटकर दक्ष के धड़ पर लगा दिया। इस प्रकार दक्ष जीवित हो गया और शिवजी को देखकर अपने पूर्व कृत्य का स्मरण करके तथा सती की याद करके रोने लगा।

फिर उसने शिवजी की स्तुति की और अपने अपराध की क्षमा मांगी। उसने कहा—प्रभु मैंने अज्ञान और अहंकारवश जो कुछ भी किया, उसका सामान्य दण्ड देकर भी आपने मुझे क्षमा कर दिया है। आपके इस उपकार का बदला देने में मैं किसी प्रकार समर्थ नहीं हूं। तत्पश्चात् शिवजी से सांत्वना पाकर दक्ष स्वस्थ हुआ। तब ब्रह्माजी के निर्देश से दक्ष ने उपाध्याय, ऋत्विज् आदि के द्वारा पुनः यज्ञाग्नि प्रज्वलित कराई और यज्ञ को विधिपूर्वक पूर्ण किया तथा पूर्णता के लिए भगवान नारायण को त्रिकपाल का पुरोडाश दिया। उस समय गरुड़गामी भगवान् नारायण स्वयं प्रकट हुए तब ब्रह्मा, शिव इन्द्रादि सभी ने उन्हें नमस्कार किया और उनकी स्तुतियां करने लगे। तब प्रभु विश्वेश्वर ने कहा कि समस्त संसार मुझसे अभिन्न है, किन्तु बुद्धिहीन ब्रह्मा, शिव, आदि कहकर भेद बुद्धि रखते हैं। देहधारी का कर्तव्य है कि वह विश्व मात्र को मुझ विश्व रचयिता एवं विश्व रूप को सर्वमय मानकर मुझमें लीन रहे। भगवान् की आज्ञा से सान्त्वना को प्राप्त हुए दक्ष ने शिवजी को तथा अन्यान्य देवताओं को भी उन-उनका भाग दिया और सबकी स्तुति करके कष्ट से मुक्त हुआ। तदुपरान्त भगवान् शिव, विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्रादि सभी अपने-अपने लोक को चले गए।

# पार्वती अवतार

शौनक मुनि ने पूछा—हे सूतजी ! सुना है कि दक्ष कन्या सती ने देह-त्याग के पश्चात् पार्वती-रूप में हिमाचल के यहां जन्म लिया था और तब भी उनका विवाह

शिवजी के साथ ही हुआ था। कहते हैं कि शिव द्वारा कामदेव भस्म कर दिया था।

सूतजी बोले—हे मुनिगण ! भगवान् शंकर यद्यपि गृहस्थ धर्म से विरक्त हो गए थे, इसीलिए उन्होंने कामदेव को, उसके उत्तेजक क्रिया-कलपों से रुष्ट होकर भस्म कर दिया था, क्योंकि सती-मरण का दुःख उन्हें बहुत अधिक था। वे शोक में भरे रहकर सती के शरीर को कन्धे पर धारण किए हुए सब कुछ भूलकर ताण्डव नृत्य कर रहे थे। उनकी वह स्थिति देखकर देवताओं के निवेदन पर भगवान् विष्णु ने देवताओं की प्रार्थना स्वीकार करके सती के मृत देह के खण्ड-खण्ड कर दिए थे। उनका जो भी अंग कट कर जहां गिरा वहीं सिद्ध शक्ति स्थल स्थापित हो गए। हे मुने ! उन शक्ति स्थलों की बड़ी महिमा है। उन-उन स्थानों पर साधना करने वाले भक्तगण अपना-अपना सुख प्राप्त कर लेते हैं।

उधर सती ने पर्वतराज हिमाचल के यहां जन्म लिया। उस रूपवती कन्या को प्राप्त करके पर्वतराज, उनकी पत्नी मयना बहुत सुखी हुए थे। एक दिन देवर्षि नारद जी लोक-भ्रमण करते हुए उनके भवन में पधारे, तब हिमाचल ने अपनी पार्वती के भाग्य की जिज्ञासा देखते हुए पूछा। नारदजी ने कह दिया—गिरिराज ! तुम्हारी यह कन्या सर्वलक्षण सम्पन्ना है। इसे कोई देव ही ब्याहेगा। किन्तु इसकी एक रेखा कुछ विकट प्रतीत होती है। उसके अनुसार इसका पति दुर्वेश, भस्म एवं जटाजूटधारी, सर्पों द्वारा सेवित तथा श्मशान में निवास करने वाला होगा।

हे मुनिश्रेष्ठ ! नारद जी के मुख से ऐसा सुनकर हिमराज चिन्तित हो उठे। उनकी सब प्रसन्नता एक बार लुप्त हो गई। उन्होंने नारदजी से पूछा—ब्रह्मन् ! क्या इस कठिन दोष का कुछ उपाय भी है ?

नारदजी बोले—गिरिराज ! एक बहुत सुन्दर उपाय है। तुम इसका विवाह कैलाशपति भगवान् शंकर के साथ कर देना। इसकी रेखा में पड़े सभी दोष आशुतोष शंकर से ही मिलते हैं। मुझे तो ऐसा लगता है कि कन्या शिवजी की प्रियतमा बनने के लिए ही उत्पन्न हुई है। दक्ष प्रजापति की जो कन्या शिवजी को ब्याही थी, उसने यज्ञ में प्राण त्याग दिए थे। सम्भव है कि इस कन्या के रूप में उसी का पुनर्जन्म हुआ हो।

नारदजी उसे समझाकर चले गए। इधर पार्वती धीरे-धीरे बड़ी होने लगी। उसे नारदजी द्वारा कहे हुए वचनों का पता चल गया कि पार्वती के लिए योग्य वर भगवान् शिव ही हैं। किन्तु मां किसी प्रकार उस सत्य को स्वीकार करने को तैयार नहीं थी; पार्वती अपनी परम सखी के साथ मां के पास गई।

# महादेव शिव की बारात

सूतजी बोले—हे शौनकजी ! भगवान् शंकर ने अपने गणों को आदेश दिया कि हिमालय के लिए बारात प्रस्थान करेगी। समस्त देवताओं, यक्षों, गन्धर्वों आदि को निमंत्रण भेज दो कि वे शीघ्र आकर बारात में सम्मिलित हों। नन्दीश्वर की प्रधानता में शिवाज्ञानुसार निमंत्रण भेजे गए। तब बारात में सम्मिलित होने के लिए निमंत्रित व्यक्ति आने लगे। बारात चलने से पूर्व कैलाश पर उत्सव का उमंग भरा वातावरण था। सभी हर्षोल्लास में निमग्न थे।

ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, चन्द्र, सूर्य, कुबेर, वरुण आदि सभी समय से पहले ही आ गए। अब वर यात्रा का आरम्भ हुआ, जिसमें विभिन्न गण समूहों के अध्यक्ष अपने-अपने गणों को लेकर हिमाचल की नगरी की ओर चल दिए। सबसे आगे एक सुपुष्ट वृषभ पर पताका लिए एक गणनायक चला। उसके पीछे विविध प्रकार के बाजों को बजाते अनेक गन्धर्वगण चले। उनसे भी आगे तीव्र ध्वनियों वाले वाद्यों को बजाते हुए भूतगण चल रहे थे। हे मुने ! उन गणों की संख्या का वर्णन करना ही कठिन है। असंख्य भूत समुदाय की गिनती करना किसके वश की बात है ? वीरभद्र के साथ भी असंख्य वीरों की सेना थी।

नन्दीश्वर और उनके सहयोगियों के तो कहने ही क्या, वे सब तो उल्लास में ऐसे भरे थे कि उन्हें अपनी गति का भी ध्यान नहीं था। फिर उन्हें ध्यान आया कि हमें तो भगवान् शंकर की सेवा में रहते हुए चलना है तब वे प्रभु की सेवा में उपस्थित हुए।

हे शौनक ! क्षेत्रपाल, भैरव आदि के साथ भी असंख्य गण-समुदाय था। अनेकों जटाजूटधारी, अनेकों विविध प्रकार के आभरणों से युक्त, अनेकों मुकुट-मण्डल आदि धारण किए हुए, अनेकों दुर्वेश जैसे, अनेकों राजसी वेशों के धारण किए, अनेकों सिद्धगण, अनेकों चारणों का समूह उस वरयात्रा में चल रहा था।

भगवान् विष्णु अपने गरुड़ पर, ब्रह्माजी हंस पर, देवराज इन्द्र अपने ऐरावत तथा इसी प्रकार अन्यान्य सभी ऐश्वर्यशाली देवगण यक्षगण, नाग, किन्नर आदि अपने-अपने विशेष वाहनों पर आरूढ़ होकर चल रहे थे।

पैदल चलने वालों के विषय में तो कुछ कहना ही कठिन है। उन असंख्यों में कौन, किस वेश में था, कौन कितने वैभवादि से युक्त था, इसे जानना सामान्य बात नहीं थी। भगवान् शंकर अपने मुख्य वाहन नन्दी पर आरूढ़ हुए चले। उनकी वेश-भूषा, श्रृंगार आदि सभी कुछ अद्भुत था।

हे शौनकजी ! इस प्रकार से सजी हुई वरयात्रा गिरिराज हिमाचल के द्वार पर पहुंची, जहां अपने प्रमुख परिकर के साथ स्वयं हिमालय स्वागत के लिए खड़े थे। बहुत प्रकार के खाद्य, पेयादि उपस्थित किए गए थे। सर्वत्र अत्यन्त शोभा व्याप्त

थी, सुन्दरियां, अप्सराएं मंगल गीत गा रही थीं।

हे मुने ! उस समय दुन्दुभियों के निर्घोष के साथ महान् कोलाहल हो रहा था, जिससे जगत् के समस्त अमंगल दूर हुए तथा सर्वत्र विश्व मंगलम हो गया। बारात के स्वागत के पश्चात् बारात को भोजन कराया गया। उसमें अनेकानेक सुस्वादु व्यंजन थे।

हे शौनक ! भोजन से पूर्व शिवजी की माया का चमत्कार दिखाने के लिए कुछ शिवगण भूख-भूख चिल्लाने लगे। उन्हें भण्डार गृह के समीप बैठाकर भोजन कराया जाने लगा। भण्डार का अन्न समाप्त होता जा रहा था और वे गण खाते ही जा रहे थे। भण्डारी ने देखा कि अब तो कुछ भी नहीं बचा है। शिवगण भी यह देखकर यह कहते हुए वहां से लौट आये कि हम तो भूखे ही रह गए। जब हम दो व्यक्तियों के लिए ही भोजन पूरा नहीं पड़ा तो इतने सारे बाराती क्या खायेंगे ? शैलराज को इसकी सूचना दी कि केवल पांच शिवगण ही भण्डार की सब सामग्री खा गए और फिर भी भूखे रह गए, तब इस पूरी बारात के लिए भोजन कहां से आएगा ?

हिमालय को, अब तो बहुत ही चिन्ता हुई और वे अपने परिवारजनों, सहयोगियों आदि के साथ भोजन-व्यवस्था में लगते, तभी सेवक ने आकर कहा कि महाराज ! भण्डारी जी ने कहलवाया है कि अब आप अन्न-भोजन की कुछ चिन्ता न करें, सभी अन्न भण्डार अपने आप सब प्रकार के व्यंजनों से भर गए हैं। जितनी भोजन सामग्री पहले नहीं थी उससे कई गुनी अधिक इस समय उपलब्ध है। यह सुनकर पर्वतराज समझ गए कि यह शिव कृपा ही है, उन्होंने हमारे धैर्य की परीक्षा ली होगी।

पार्वती की माता मयना शिवजी के वृद्ध, दुर्वेश तथा उन्मत्त रूप को देखकर वह अपनी कन्या नहीं देना चाहती थी। जब शिवजी की सवारी द्वार पर आई थी, तब नारदजी ने सजे हुए वृषभ पर आरूढ़, दिव्य मनोहर रूप वाले, अत्यन्त युवावस्था से सम्पन्न, अत्यन्त सौम्य और शोभावान् शिवजी की ओर संकेत करते हुए कहा था—देवि मां ! देख लो भगवान् शिव के सुन्दर स्वरूप को, यह भी देख लो कि वे समस्त देवताओं से ही अधिक सुन्दर और किशोरावस्था वाले हैं। नारदजी के कहने पर मयना ने उनकी ओर देखा तो इस समय शिवजी ने उसे अपने मायावी रूप में दिखाया, उसने देखा कि बैल पर एक वृद्ध बैठा है। शरीर पर मृग चर्म, गले में मुण्डमाला, अस्थियों के आभूषण पहने हुए हैं। उनके शरीर पर भयंकर विषधर लिपटे हुए हैं और वह उन्मत्त के समान इधर-उधर देख रहा है। उनका ऐसा विकराल वेश और वृद्धावस्था देखकर मयना क्रोधित हो उठी।

मयना ने नारदजी से कहा—तुम ऋषि नहीं, कोई धूर्त हो, जो बूढ़े, दुर्वेश, भंगड़ी और समाज में न बैठने योग्य को अत्यन्त रूपवान बता रहे हो। तुमने मेरे साथ कितना बड़ा विश्वासघात किया है ? इसके साथ मैं अपनी कन्या का विवाह कदापि

नहीं करूंगी। उसे वापस ले जाओ यहां से अन्यथा मैं अपने प्राण त्याग दूंगी।

नारदजी अवाक् हो गए। जान गए कि शिवजी ने परीक्षा लेने के लिए ही इसे अपना कुवेश दिखाया है। उन्होंने प्रभु शिव से अपने वास्तविक रूप में आने का आग्रह किया, फिर शिवजी ने मयना को अपना सत्य रूप दिखाया। मयना अवाक् एकटक उनके रूप को निहारती रही और प्रसन्नचित्त पार्वती शिव विवाह सम्पन्न हो गया।

# शंकर पार्वती विवाह

सूतजी ने कहा—हे शौनकजी ! हे मुनिगण पार्वती की जय-विजया सखी अपनी सखी के लिए शिव की प्राप्ति के लिए वन में जाकर तपस्या की आज्ञा मां से लेने गईं उन्होंने कहा पिता की आज्ञा के बाद आपकी आज्ञा चाहती हैं।

हे मुने ! तभी पार्वती ने अपनी माता के पास आकर आज्ञा मांगी। वन में जाकर तपस्या करने की बात सुनकर माता को दुःख तो बहुत हुआ और अनेक बार समझाने पर भी हार मानकर अपनी पुत्री को वन में भेजने को तैयार हुई। तब पार्वती अपने माता-पिता को प्रणाम करके और अपनी सखियों को साथ लेकर तपस्या करने के लिए वन में गई। उसने जल छोड़ा केवल पवन को आहार मानकर सन्तुष्ट हुई। तदुपरान्त एक पांव पर खड़े रहकर शिव का पंचाक्षर मन्त्र 'नमः शिवाय' जपती रहती। इस प्रकार तपस्या में लीन पार्वती का चित्त शिवजी के स्मरण में ही लगा रहता।

**कामदेव का भस्म होना**

पार्वती की ऐसी घोर तपस्या देखकर ऋषि-महर्षिगण भी उसकी प्रशंसा करने लगे। उस तप को देखकर इन्द्र आदि देवता ब्रह्माजी की शरण में जाकर बोले—हे प्रभु ! पार्वती कैसा घोर तप कर रही है, किन्तु शिवजी उसे दर्शन नहीं दे रहे हैं। कृपया आप भगवान् शंकर का ध्यान उनकी ओर करने का कुछ उपाय कीजिए।

ब्रह्माजी ने कहा—इन्द्र ! तुम्हारे मित्र कामदेव को इस अप्सरा आदि के साथ शिवजी के पास भेजो। अन्यथा उनकी समाधि भंग नहीं हो सकती। कामदेव के प्रयत्न से उनकी समाधि भंग हो जाएगी।

सूतजी बोले—हे ऋषिश्रेष्ठ ! तब इन्द्र ने कामदेव को सादर पास बुलाकर शिवजी की समाधि भंग करने के लिए तैयार किया। तदनन्तर कामदेव अपने सहायक ऋतुराज और अनेक रूपवती अप्सराओं को साथ लेकर शिवजी के समाधि स्थल पर पहुंचा तभी बसन्त ऋतु प्रकट हो गई, अप्सराएं नाचने लगीं, गन्धर्व

गाने-बजाने लगे।

कामदेव ने उचित अवसर देखकर शिवजी पर शर-संधान किया। उससे व्यथित हुए शिवजी ने अपना तीसरा नेत्र खोलकर उसकी ओर देखा। उनके देखते ही कामदेव भस्म हो गया। यह देखकर गन्धर्व और अप्सराएं वहां से भाग गए। कामदेव को भस्म हुआ सुनकर उसकी पत्नी रति शिवजी के समक्ष रोने लगी।

तब उसे आश्वासन देते हुए भगवान् शंकर ने कहा—रो मत, तेरा पति शरीर रहित रहकर भी प्राणियों के शरीर में विद्यमान रह सकेगा। इसलिए उसे ज्ञानीजन 'अनंग' भी कहेंगे। तू द्वापर युग में श्रीकृष्ण के पुत्र में भी अपने पति को प्राप्त करेगी। इस प्रकार शिवजी से वरदान प्राप्त करके रति अपने स्थान पर गई।

सूतजी ने कहा—हे शौनकजी ! कामदेव के भस्म होने पर देवगण अधिक चिन्तित हुए। क्योंकि इन्हीं दिनों तारकासुर के अत्याचार बढ़ते जा रहे थे। उन्हें विश्वास था कि तारकासुर को शिवजी का पुत्र ही मार सकता है। किन्तु शिवजी ने कामदेव को भी भस्म कर दिया है। यद्यपि देवी पार्वती उन्हें पति रूप में प्राप्त करने के लिए घोर तपस्या में लीन है, तथापि जब तक शिवजी की विरक्ति नहीं छूटेगी, तब तक उनसे विवाह सम्भव नहीं है। ऐसी चिन्ता करते हुए देवगण पुनः ब्रह्माजी की सेवा में उपस्थित हुए। देवताओं की प्रार्थना सुनकर चतुरानन ब्रह्माजी ने कहा—देवाधिपति ! अब इसका यही उपाय है कि मिलकर उनसे पार्वती के साथ विवाह कर लेने की प्रार्थना करें। ऐसा निश्चय करके देवताओं के साथ स्वयं ब्रह्माजी कैलाश-शिखर पर पहुंचे और उनकी स्तुति करने लगे।

ब्रह्माजी ने कहा—हे त्रिलोकीनाथ ! हे महादेव ! हे कैलाशपति ! आपको बारम्बार नमस्कार है। आप त्रिलोकी के रक्षक हैं, आपके इन देवताओं की रक्षा कौन करेगा ? हे आशुतोष ! उस क्रूर पापी तारकासुर के अत्याचार बढ़ रहे हैं, उसे आपका पुत्र ही मार सकता है। उधर देवी पार्वती घोर तप कर रही है, वह आपको पति रूप में प्राप्त करना चाहती है। उसके जैसी कठिन साधना तो कोई ऋषि-महर्षि भी आज तक नहीं कर सका है। हे शम्भो ! आपका उसके साथ विवाह होने पर ही तारकासुर का वध करने वाले कुमार की उत्पत्ति होगी। हे भोलेनाथ ! आप तो शीघ्र ही प्रसन्न हो जाने वाले हैं उस सुकुमारी तपस्विनी पर प्रसन्न हो जाइए। इन दुःखित देवताओं पर भी प्रसन्न होकर इनके कष्टों का निवारण कीजिए।

ब्रह्माजी की स्तुति सुनकर भगवान् शंकर ने धीरे-धीरे नेत्र खोलकर उनकी ओर देखा। तभी सब देवताओं ने भी उन्हें प्रणाम किया। अब सभी ने ब्रह्माजी द्वारा की हुई प्रार्थना का अनुमोदन किया। तब भगवान् शंकर ने आश्वासन दिया—हे विश्वेश्वर ! हे चतुरानन ! हे इन्द्रादि देवगण ! आपने तारकासुर के अत्याचारों की बात कही और यह भी बताया कि उसका संहार मेरा पुत्र ही कर सकेगा। इसके साथ तुमने हिमाचल-कन्या के घोर तप करने की सूचना भी दी है। आप सबकी प्रार्थना

व कष्टों को जानने के पश्चात आप सबकी प्रार्थना स्वीकार करना भी उचित समझता हूं। आप सब निश्चिन्त रहें, मैं गिरिजा से विवाह करके, अपने पुत्र द्वारा तारकासुर को नष्ट करा दूंगा।

हे शौनकजी ! इधर शिवजी ने सप्तर्षिगणों से कहा—हे महर्षियो ! आप लोग हिमाचल की कन्या के पास जाकर उसकी शिवभक्ति की परीक्षा लो। उनकी ऐसी आज्ञा सुनकर सप्तर्षिगण वहां पहुंचे जहां पार्वतीजी तपस्या कर रही थीं। उनके प्रश्न करने पर कि इस कम आयु में इतनी घोर तपस्या क्यों कर रही है ? वह कौन है ? तब पार्वती ने उत्तर दिया। ऋषियो ! मैं आपको नमस्कार करती हूं। मैं गिरिराज हिमाचल की कन्या पार्वती हूं, भगवान् शिवजी को पति रूप में प्राप्त करने के लिए ही तपस्या में प्रवृत्त हुई हूं। मुझे विश्वास है कि शंकर प्रभु मेरी विनती अवश्य सुनेंगे।

ऋषियों ने आश्चर्य से कहा—क्या ? शिवजी को पति बनाना चाहती हो। अरी, वह तो भंग पीकर मस्त पड़े रहने वाले, मुण्डों की माला और अस्थियों के आभूषण धारण करने वाले सर्पों को शरीर से लिपटाए रहने वाले, श्मशान सेवी हैं। तुम्हारी जैसी कोमलांगी सुन्दरी के योग्य तो हैं ही नहीं।

पार्वती क्रोध से बोलीं—आप कृपा करके मेरे आराध्य देव की निन्दा मत कीजिए। मैं उन्हें अपना तन, मन, प्राण—सभी कुछ समर्पित कर चुकी हूं। इन कानों से उनकी निन्दा कदापि नहीं सुन सकती। गिरिजा ने अपने कानों में अंगुलियां लगा लीं और बोलीं—मैं आपसे निवेदन करती हूं, अब अपने उपदेश को बन्द करके यहां से चले जाइए। यदि आप मेरे हित चिन्तक हैं तो एक क्षण भी ठहरने की कृपा मत कीजिए।

सूतजी ने कहा—हे शौनकजी ! पार्वती के वचन सुनकर सप्तर्षिगण हंसे। उनका दृढ़ निश्चय देखकर बोले—गिरिराज सुते ! तुम धन्य हो। तुम्हें शीघ्र ही पति रूप में भगवान् शंकर की प्राप्ति होगी। ऐसा कहकर सप्तर्षिगण वहां से चलकर पर्वतराज हिमाचल के पास पहुंचे। वहां उन्होंने कहा—हे गिरिराज ! भगवान् शंकर ने तुम्हारी कन्या पार्वती के साथ विवाह करना स्वीकार कर लिया है। इसलिए तुम उसके विवाह की तैयारी में लगो।

उधर भगवान शंकर स्वयं भी पार्वती के समक्ष जाकर उसकी परीक्षा लेने के लिए वृद्ध ऋषि के रूप में जाकर बोले—हे भामिनी ! मैंने सुना है कि तुम भूतनाथ शंकर को अपना पति बनाने के लिए ऐसी कठिन तपस्या कर रही हो ?

पार्वती ने उत्तर दिया—आपने ठीक सुना है ऋषिवर ! मैं अपने लिए उपयुक्त वर उन्हीं को मानती हूं। यह सुनकर वेशधारी शंकर ने कहा—तुमने ठीक निर्णय नहीं लिया है कुमारी। वे तो अत्यन्त कुरूप, अत्यन्त मलीन वेश वाले, अत्यन्त दुर्गुणों से भरे हुए हैं। उनके शरीर में सर्प लिपटे रहते हैं, अस्थियों का हार और मुण्डों की माला गले में, यह गृहस्थ के लक्षण कदापि नहीं हैं। इसलिए मेरी बात मानकर शिव से

विवाह करने का विचार छोड़ दो। देवताओं में सर्वश्रेष्ठ विष्णु हैं, देवराज इन्द्र हैं और अनेक परम वैभवशाली और रूपवान पुरुष तुम्हारे योग्य हो सकते हैं। यह सुनकर गिरिजा को अत्यन्त दुःख हुआ और हाथ जोड़कर कहने लगी—आप चले जाइए यहां से। मैं किसी की सीख नहीं सुनना चाहती। मैं तो शिव को ही पूर्ण समर्पित हूं, उन्हीं से विवाह करूंगी। यदि उन्होंने मेरी प्रार्थना नहीं सुनी तो अपने प्राण त्याग दूंगी।

पार्वती का अपने प्रति पूर्ण समर्पण भाव तथा सच्ची प्रीति देखकर भगवान् शंकर प्रसन्न हुए। उन्होंने तुरन्त ही सुन्दर रूप-लावण्य-युक्त सुवेश में दर्शन दिए और कहा—गिरिजे ! मैं शिव तुम्हारी सुदृढ़ प्रीति के बन्धन में बंधकर यहां आ गया हूं। अब तपस्या पूर्ण हुई जानकर अपने घर जाओ।

गिरिराज कुमारी के नेत्रों में हर्ष से आंसू आ गए, वह उनके चरणों में गिर गई। शंकर प्रभु ने उसे उठाया और फिर अन्तर्ध्यान हो गए। माता-पिता दोनों ने अत्यन्त स्नेह से उनका स्वागत किया। हिमाचल ने वैदिक मंत्रों की ध्वनियों के मध्य अपनी कन्या का समर्पण किया और भगवान् शंकर ने उसका पाणिग्रहण कर लिया। उस समय सर्वत्र परमानन्द प्रदायक महोत्सव मनाया गया और तीनों लोकों में जय-जयकार की ध्वनि गूंजने लगी। भगवान् शंकर का विवाहोत्सव सानन्द सम्पन्न हो गया। उसके पश्चात् समय प्राप्त होने पर कुमार कार्तिकेय की उत्पत्ति हुई। माता पार्वती द्वारा अत्यन्त लाड़ से पालित-पोषित कुमार शीघ्र ही सर्वज्ञाता और सर्व समर्थ हो गए। वे महाबली, धर्म रक्षक और समस्त शस्त्रास्त्रों के ज्ञाता हुए। उन्होंने देवताओं के प्रार्थना करने पर क्रूरकर्मा, अत्याचारी एवं महापापी तारकासुर से भयंकर संग्राम किया, वह युद्ध बहुत समय तक चला, अन्त में तारकासुर अपने अनुयायियों, सहायकों आदि के सहित मारा गया। उनकी इस विजय से देवगण भय रहित हो गए तथा उनकी जय-जयकार करते हुए पुष्प वृष्टि करने लगे।

# देवताओं की दैत्यों पर विजय

सूतजी बोले—हे शौनकजी ! देवताओं को अमृत पिलाकर भगवान् विष्णु ने मोहिनी रूप का परित्याग किया। जब शिवजी के मन में उस रूप दर्शन करने की उत्कण्ठा उत्पन्न हुई और उन्होंने विष्णु जी से वह रूप पुनः दिखाने की प्रार्थना की तब भगवान् श्रीहरि ने अपना मोहिनी रूप पुनः धारण किया। उसकी रूप-माया से विमोहित हुए शम्भू ने साथ बैठी हुई पार्वती जी की ओर भी ध्यान नहीं दिया और उन्हें वहीं छोड़कर मोहिनी जी के पीछे चल पड़े।

किन्तु भगवान् ने तुरन्त अपना मोहिनी रूप अन्तर्हित कर लिया। यह देखकर

शिवजी उन्मुक्त-से हो गए। तभी उन्हें दिखाई दिया कि वही अत्यन्त रूपवती तरुणी पुनः व्यक्त हो गई है। इस समय उसके हाथ में एक गेंद है, उसे उछालने के कारण उसके अंग-प्रत्यंग में कम्पन हो रही है। उससे उसके रेशमी वस्त्र खिसक जाते हैं और बार-बार वह उन्हें संभालती हुई उस कन्दुक-क्रीड़ा में लगी रहती है। तभी मोहिनी जी के हाथ से उछलकर वह गेंद दूर चली गई। यह देखकर मोहिनी जी भी उसे पकड़ने को तीव्र गति से भागीं। उसी समय तीव्र वायु का झोंका चलने के कारण उसके अत्यन्त सूक्ष्म वस्त्र कटिमेखला से उड़ गए और उसी समय उसने शिवजी को मुस्कान भरी चितवन से देखा।

तब तो शिव जी अत्यन्त भावुक होकर उसे पकड़ने के लिए पीछे-पीछे भागे। किन्तु ज्यों-ज्यों शिवजी भागते त्यों-त्यों वह तरुणी भागती और फिर उन्हें दूर हुए देखकर, उनके आने की प्रतीक्षा करती हुई रुक जाती। जब शिवजी निकट आ जाते, तब वह पुनः एक छलांग-सी लगाकर दूर चली जाती। उसका इस प्रकार छिपना और प्रकट होना शिवजी के लिए अधिक उत्तेजित करने का साधन बना। वे उसे पकड़ने को बहुत लालायित हो गए।

हे मुने ! इस बार तीव्र गति से आगे बढ़कर उन्होंने मोहिनीजी को पकड़ लिया और उसकी वेणी पकड़कर अपनी ओर खींचने लगे। किन्तु मोहिनी जी शीघ्रतापूर्वक अपनी वेणी छुड़ाकर और शिवजी के बहुत प्रयत्न करने पर भी उनके हाथ नहीं आई। अत्यन्त मोह में पड़े हुए शिवजी, फिर भी पीछे-पीछे दौड़ते रहे, किन्तु इसी में अधिक उत्तेजना बढ़ने पर शुक्र स्खलन हो गया। अब उन्हें चेत हुआ कि मुझसे यह कैसा अनुचित कार्य हो गया।

हे शौनकजी ! शिवजी को उस समय अत्यन्त लज्जित और खिन्न देखकर भगवान् विष्णु मन ही मन हंसे और फिर अपना मोहिनी रूप छोड़कर, उन्होंने अपना वही आदि पुरुष रूप धारण किया और शिवजी के समक्ष प्रकट होकर बोले—हे आशुतोष ! आप बधाई के पात्र हैं कि शीघ्र ही विमोह का त्याग करके सावधान हो गए। वस्तुतः नारी के सौन्दर्य-मोह में पड़ा हुआ कोई भी पुरुष इतने शीघ्र चेत में नहीं आ सकता।

हे गिरिजानाथ ! इस प्रकार आपने मेरी माया पर विजय प्राप्त कर ली है। इस पर सब कोई विजय प्राप्त करने में समर्थ नहीं है। मैं जानता हूं कि मेरी गुणमयी माया अपने त्रिगुणात्मक गुणों के घटने-बढ़ने के कारण अपनी शक्ति बदलती रहती है। वह अत्यन्त शक्ति-सामर्थ्य से सम्पन्न होकर भी आपका पराभव करने में समर्थ नहीं है।

भगवान् विष्णु के ऐसे वचन सुनकर शिवजी ने अपना संकोच त्याग दिया और उनका अभिवादन करके अपने धाम को गए। भगवान् श्रीहरि भी वैकुण्ठ लोक को पधारे। जब शिवजी कैलाश-शिखर पर पहुंचे, तब उन्हें पार्वतीजी उसी स्थान पर बैठी

दिखाई दीं।

शिवजी उनके पास जाकर विराजमान हुए, तब पार्वतीजी ने पूछा—प्रभु ! आप सहसा उठकर कहां चले गए थे ? शिवजी बोले—हे गिरि नन्दिनी ! मुझे उस समय भगवान् विष्णु की माया अपने विचित्र स्वरूप में दिखाई दी और मैं उससे विमोहित होकर उसके पीछे-पीछे चला गया था। शिवजी बोले—हे शिवा ! उस माया ने मुझ सर्व विभूतियों से सम्पन्न ईश्वर को भी मोहित कर लिया, तब सामान्य जन के विषय में क्या कहा जा सकता है ?

वस्तुतः उन क्षीरशायी भगवान् की महिमा विचित्र और अत्यन्त बलवती है, उसका पार पाना कठिन है। मैं उनकी उसी माया के विषय में सोचता हुआ अत्यन्त आश्चर्यचकित हो रहा हूं।

शिवजी की बात सुनकर पार्वती जी मुस्कराईं। किन्तु कुछ कह नहीं सकीं। उन्होंने जान लिया कि शिवजी ने उस माया का रहस्य जानकर उसे जीत लिया है। क्योंकि भगवान् शंकर को कोई भी माया छल नहीं सकती।

शौनक ने पूछा—हे सूतजी ! भगवान् शंकर तो परम ज्ञानी और किसी भी प्रकार से मोहित नहीं होने वाले हैं। फिर वे श्रीहरि की माया में कैसे विमोहित हो गए ?

इस पर सूतजी ने कहा—हे मुनिवर ! भगवान् शिव अवश्य ही सर्व ऐश्वर्य निधान हैं, वे अव्यक्त प्रभु के ही व्यक्त रूप हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर तीनों ही एक ही परमात्मा के तीन रूप हैं, इसलिए यह इनका विमोह नहीं लीला है। वे लोक-शिक्षा के लिए ऐसी लीलाएं करते हैं, जिससे सभी यह समझ लें कि अकारण कामावेश उचित नहीं है। ज्ञानी जनों का मानना है कि उनका शुक्र जहां-जहां गिरा, वहां-वहां सोने-चांदी की खानें बन गईं। इसका अभिप्राय यह भी है कि सोने-चांदी में शिव-शक्ति ही व्याप्त है। इन बहुमूल्य धातुओं को देखकर सभी मनुष्यादि उन्हें ललचायी दृष्टि से देखते हैं।

# वामनावतार का अवतरण

सूतजी बोले—हे शौनकजी ! जिस प्रकार परमदेव भगवान् विष्णु ने पूर्वकाल में अपने युद्ध का न्यास किया था। यह उस समय की बात है, जब दैत्यगणों ने अधिक शक्तिशाली होकर तीनों लोकों को वशीभूत कर लिया था तथा देवताओं को जीतकर वे दैत्य ही समस्त यज्ञों के भोक्ता हो गए थे। अपने पुत्रों का इस प्रकार पराभव देखकर अदिति ने कश्यपजी से दैत्यों को परास्त करने वाले पुत्र की प्रार्थना की थी।

कश्यपजी ने प्रसन्न होकर अदिति को पयोव्रत करने का निर्देश देकर उसकी विधि भी बताई थी। अदिति ने घर लौटकर बारह दिन तक वह व्रत किया, जिसमें वासुदेव की स्तुति की जाती है। उसके एकाग्र ध्यान और विधिपूर्वक पूजन से प्रसन्न होकर गदा, शंख, चक्र पद्मधारी चतुर्भुज भगवान् स्वयं प्रकट हुए।

अदिति उनके दर्शन करके गदगद् कण्ठ से स्तुति करती हुई बोली—हे प्रभु ! आप शरणागत के रक्षक की शरण में हूं, आप ही संसार की त्रिगति के कारण हैं और अपनी माया के अनेक गुणों को धारण करके भक्तों पर कृपा करने के लिए प्रकट होते हैं। हे नारायण ! आप घट-घट में निवास करने वाले, सभी की कामनाओं को जानते हैं, इसलिए मैं अपनी आकांक्षा कहना उचित नहीं समझती। मैं तो यही कामना करती हूं कि मैं आपकी शरण में हूं।

हे शौनकजी ! कृपालु भगवान् ने उसे आश्वस्त किया—हे देवमाता ! मैं तुम्हारी आकांक्षा को जानता हूं। दैत्यों ने देवताओं का सब कुछ हरण कर लिया है, इसलिए तुझे दैत्यों का पराभव करने वाला पुत्र चाहिए। मैं तुम्हारा इच्छित पूरा करने के लिए स्वयं प्रकट होऊंगा और देवताओं को उनका स्थान-सम्मान पुनः प्राप्त करा दूंगा। यह कहकर भगवान् परमेश्वर तुरन्त अन्तर्ध्यान हो गए।

हे महामते शौनक ! भाद्रपद के शुक्लपक्ष के द्वादशी में अभिजित नक्षत्र था, तब मध्याह्नकाल में भगवान् वामनदेव प्रकट हुए थे। वे उज्जवल श्यामवर्ण वाले, कण्ठहार, सुन्दर मुकुट-मण्डल एवं अन्यान्य आभूषण धारण किए हुए तथा चारों भुजाओं में शंख, गदा, चक्र, पद्म से सुशोभित और अत्यन्त तेजोमय थे। उनके प्रकट होते ही वहां समस्त जग में प्रकाश हो गया था। वे प्रभु माता के समक्ष जिस स्वरूप में प्रकट हुए थे, उसी रूप में वामन रूप धारण कर लिया। उनका वह वामन वटु रूप देखकर महर्षियों ने बहुत प्रसन्नता का अनुभव किया तथा कश्यपजी द्वारा निवेदन करने पर उनका यज्ञोपवीत संस्कार किया।

पृथ्वी ने उनको मृगचर्म धारण कराया, चन्द्रमा ने दण्ड ग्रहण कराया, सरस्वती ने देवी अक्षमाल प्रदान की। कुबेर ने भिक्षापात्र दिया और जगज्जननी पार्वती ने भिक्षा दी। इस प्रकार वे वामनदेव यज्ञोपवीत होने पर ब्रह्मतेज से अधिक शोभावान हुए।

हे मुने ! इसी अवसर पर वामनदेव को ज्ञात हुआ कि दैत्यराज बलि अवश्वमेध यज्ञ कर रहे हैं, जिससे उनका सब प्रकार से यश हो रहा है। तब अपने सार से सम्पन्न हुए वे भगवान् पग-पग पर अपने भार से धरती को कम्पायमान करते हुए उधर ही चल पड़े।

उनके वहां पहुंचने पर राजा बलि और याज्ञिक ब्राह्मण आदि ने सूर्य के समान महान् तेज वाले उन प्रभु को देखकर सोचा कि यह कौन पधार रहे हैं ? साक्षात् सूर्य, अग्नि अथवा अन्य कोई। उनके ऐसा विचार करने के समय में ही भगवान् वामनदेव दण्ड, छत्र जलयुक्त कमण्डलु लिए वहां पधारे। मूंज मेखला, उपवीत, कृष्णाजिन और

उत्तरीय धारण किए हुए तथा बांधे हुए उन वामनदेव को समागत देखकर राजा बलि ने उन्हें श्रेष्ठ आसन दिया और स्वागत सत्कार सहित उनके चरण पखारकर पूजन किया। उस दैत्यराज ने उनके चरणामृत को सिर पर चढ़ा लिया।

फिर उसने विनीत शब्दों में कहा—हे ब्रह्मन् ! आपके शुभागमन से मैं धन्य हो गया। यह राज्य, यह धरती पवित्र हो गई। मेरा कुल पवित्र और यज्ञ भी सफल हो गया है। मैं आपको प्रणाम करता हूं। हे प्रभु ! हे ब्राह्मण देव ! मैं आपको, आपकी इच्छानुसार दान करने को उत्सुक हूं, अतएव आप जो कुछ भी चाहें, मुझसे मांग लें, मैं आपकी इच्छा अवश्य पूरी करूंगा।

राजा बलि के अत्यन्त विनीत वचन सुनकर भगवान वामनदेव ने कहा—राजन् ! तुम पुण्यवान् और धर्मज्ञ हो। तुमने इस समय जो कहा है, वह तुम्हारी दानशील प्रवृत्ति के ही अनुसार है। तुम्हारे पितामह भक्तवर प्रह्लादजी को कौन नहीं जानता ! वे परम दानशील और धर्मा हैं। वही गुण कुल परम्परा से तुम्हें भी प्राप्त हुए हैं।

तुम्हारे कुल में सभी सत्यवादी हुए हैं। उनकी ख्याति रही है कि जो कुछ कह दिया, उससे कभी पीछे नहीं हटे। जिस याचक ने जो कुछ प्रार्थना की, वही उसे दिया। इसी कुल में परम वीर हिरण्याक्ष हुए, जिन्हें बड़ी कठिनाई से वाराह भगवान् ने मारा। किन्तु उसे मारने पर भी भगवान् ने उसे अपनी विजय नहीं मानी। उन्हें ऐसे वीर को पृथ्वी का उद्धार करने के लिए ही मारना पड़ा था।

तुम्हारे प्रपितामह हिरण्यकशिपु हुए थे, जो कि तुम्हारे बाबा प्रह्लादजी के पिता थे। उन्हें अपने भ्राता हिरण्याक्ष के मारने वाले के प्रति द्वेष था, किन्तु प्रह्लादजी ने विष्णु से द्वेष न करने का उनसे निवेदन किया। इस पर वे अपने धर्मज्ञ पुत्र प्रह्लाद पर कुपित हो गए और उनका वध करने लगे।

प्रह्लाद की रक्षा के लिए ही भगवान् विष्णु को नृसिंह का रूप रखना पड़ा और विवश होकर उन्हें मारना पड़ा। इस कार्य में भी भगवान् को उनसे द्वेष नहीं था, वरन् परम भक्त की रक्षा का ही मुख्य उद्देश्य था। तुम्हारे पिता विरोचन इतने अधिक दयावान् और महादानी थे कि उन्होंने ब्राह्मण के वेश में याचक बनकर आए हुए देवताओं को पहचान कर भी अपनी आयु दे डाली।

हे महाराज ! सांसारिक राग-द्वेष तो मिथ्याभिमान है और प्रीति या द्वेष तभी तक रहता है, जब तक कि यह जीवन है। सत्य वही है जो ज्ञानियों ने समय-समय पर कहा है। इसलिए उस सत्य धर्म में आचरणपूर्वक असत्य का सर्वथा त्याग कर देना चाहिए। हे राजन् ! तुमसे इस विषय में अधिक क्या कहना है ? तुम तो सदा ही सन्मार्ग पर चलने का प्रयत्न करते रहे हो। तुम्हारी दानशीलता की सर्वत्र ख्याति है, इसलिए मैं भी केवल थोड़ी-सी भूमि प्राप्त करने की इच्छा से यहां आ गया हूं। मुझे अधिक भूमि भी नहीं चाहिए, केवल तीन पग भूमि से ही मेरा कार्य चल जाएगा।

यह सुनकर दैत्यराज बलि ने विस्मयपूर्वक कहा—ब्रह्मन् ! आपने केवल तीन डग भूमि ही क्यों मांगी। इतनी भूमि से कोई भी कार्य नहीं हो सकता, उठने-बैठने को भी यह पर्याप्त नहीं होगी। हे वामनदेव ! मैं तो तुम्हें तीन पग क्या, तीन द्वीप दे सकता हूं।

वामनदेव बोले—महाराज ! अपनी आवश्यकता से अधिक कुछ मांगना, एक प्रकार से पाप करना ही है। किसी ब्राह्मण को तो अल्प साधनों से ही काम चलाना चाहिए। अन्यथा इच्छाओं की तो कहीं सीमा नहीं होती, लोभी पुरुष तो तीन द्वीप क्या तीनों लोकों को प्राप्त करके भी उससे अधिक पाने की इच्छा करते हैं। इस प्रकार तृष्णा का तो कहीं अन्त है ही नहीं। जो ब्राह्मण दैवेच्छा से प्राप्त हुए साधन में सन्तुष्ट हो जाता है, उसका तेज वृद्धि को प्राप्त होता है, अन्यथा उसका तेज नष्ट हो जाता है। इसीलिए मैं अपने कार्य योग्य भूमि की ही इच्छा रखता हूं।

सूतजी बोले—हे शौनक ! राजा बलि ने वामनजी की बात मान ली और उन्हें तीन पग पृथ्वी देने के संकल्प हेतु जल-पात्र हाथ में उठाया। किन्तु विष्णु भाव के ज्ञाता, वेदा शुक्राचार्यजी ने अपने शिष्य बलि को रोकते हुए कहा—हे राजन् ! तुम क्या करने जा रहे हो ? तुमसे तीन पग की याचना करने वाले यह वामनदेव, स्वयं भगवान् विष्णु हैं, जो देवताओं का हित साधने के लिए ही कश्यपजी के यहां देवमाता अदिति से उत्पन्न हुए हैं। तुमने बिना विचारे ही इन्हें तीन पग भूमि देना स्वीकार कर लिया है, इससे दैत्यों का विनाश ही होगा।

हे राजन् ! यह तुम्हारे समस्त वैभव आदि को लेकर इन्द्र को दे देंगे। इनमें वह शक्ति है कि तीन पग में तीन लोक नाप लेंगे और तुम्हारे पास कुछ भी शेष नहीं रहने देंगे। किन्तु तुम्हारे सामने भी एक समस्या उपस्थित है कि दिए हुए वचन का पालन करोगे तो लौकिक श्री से हीन हो जाओगे और वचन का पालन नहीं करोगे तो तुम्हें नरक की प्राप्ति होगी।

वस्तुतः ऐसे दान की प्रतिज्ञा की जानी चाहिए, जिससे कि यह लोक और परलोक दोनों में ही सुख उपलब्ध रहे। वेद-शास्त्रादि में पारंगत तथा नीतिशास्त्र के अद्वितीय दैत्यगुरु शुक्राचार्य जी के ऐसे वचन सुनकर राजा बलि ने कुछ विचार करके कहा—गुरुदेव ! आपका कथन सत्य है और हमारा कर्तव्य है कि आपके वचनों का पालन करें।

परन्तु हे ब्रह्मन् ! मैं सत्यवादी, धर्मज्ञ एवं ज्ञानशील प्रह्लादजी का पौत्र होकर अपने वचनों से कैसे हट जाऊं। मुझे नरक से उतना भय नहीं है, जितना किसी विप्र के साथ छल-प्रपंच करने में भय लगता है।

हे विप्र श्रेष्ठ ! धन, वैभव, पद-प्रतिष्ठा आदि चाहे नष्ट हो जाए, चाहे मेरी कीर्ति भी न रहे, मेरी निन्दा भी की जाती रहे अथवा मेरी मृत्यु ही क्यों न हो जाए, किन्तु मुझे अपने वचन से फिर ना सबसे बड़ा पाप दिखाई देता है।

हे प्रभु ! धन, वैभव आदि सभी कुछ मृत्यु प्राप्त होने पर तो नष्ट हो ही जाएगा, तब उसे अपने जीवन में, अपने हाथ से ही क्यों न दान कर दूं ? यदि किसी याचक की इच्छापूर्ति कर सकूं तो इससे बढ़कर और क्या पुण्यकार्य हो सकता है ? इसलिए हे गुरुदेव ! मैंने देने का जो वचन दे दिया, उसे अपनी अपूरणीय क्षति मानते हुए भी पूरी करूंगा।

सूतजी बोले—हे महामुने ! अपने शिष्य राजा बलि को अपना परामर्श न मानने और अवज्ञा करने के कारण शुक्राचार्य जी के मुख से शाप निकल पड़ा—अरे मूर्ख राजा ! तू स्वयं को परम सत्यवादी मानकर मेरे वचनों की उपेक्षा करता है, इसलिए अवश्य ही राज्यलक्ष्मी से भ्रष्ट हो जाएगा। यह वचन अवश्य सत्य होगा। गुरु द्वारा इस प्रकार का शाप सुनकर भी राजा बलि अपने वचन पर दृढ़ रहे और उन्होंने अपनी रानी विन्ध्या को वटुक देव के चरण धोने हेतु जल लाने का संकेत किया। रानी तुरन्त ही जल कलश लेकर आई और राजा ने सुखपूर्वक उनके चरण धोए और उस जल को अपने सिर पर धारण किया।

हे मुने ! उस समय राजा बलि का, जानकर यह दुष्कर कार्य किया जाना देखकर आकाशस्थ देवता, गन्धर्व, यक्ष, सिद्ध, चारण आदि भी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करते हुए पुष्प बरसाने लगे। तभी राजा ने तीन डग भूमि वामन भगवान् को देने का संकल्प किया।

उसके तुरन्त बाद उनका वह त्रिगुणात्मक वटुक रूप तीव्रता से वृद्धि को प्राप्त हो गया, जिसमें धरती, आकाश, दिशाएं, पर्वत, समुद्र, मर्त्य लोक एवं स्वर्ग लोक आदि के सभी प्राणी समाविष्ट हो रहे थे। अब तो उनके इस विराट् शरीर में समस्त विश्व ही दिखाई देने लगा।

उस समय उनके चरण-तल में पाताल, चरणों में धरती, जंघाओं में पर्वत, घुटनों में पक्षीगण और वायु, नेत्रों में सन्ध्या, गुह्य भाग में प्रजापति, जंघाओं में समस्त दैत्य, नाभि में गगन, कुक्षि में समुद्र, वक्षस्थल में कमल लिए लक्ष्मी जी कण्ठ में साम, मन में चन्द्रमा, भुजाओं में देवगण, मस्तक में स्वर्ग, कानों में दिशाएं, केशों में मेघ, नासा में वायु, नेत्रों में सूर्य और मुख में अग्नि दिखाई दी।

हे मुने ! भगवान् के दोनों ओर से अंगों में इस प्रकार तीनों लोक और उनमें विद्यमान सम्पूर्ण जीव समूह राजा बलि ने देखा। इस प्रकार सर्वात्मा श्रीहरि के उस विराट् रूप में सम्पूर्ण विश्व को देखकर सभी दैत्य चकित थे।

हे मुने ! भगवान् वामनदेव ने एक पग में सम्पूर्ण पृथ्वी नाप ली, दूसरे पग तथा भुजाओं से आकाश और दिशाओं को नापा। अब तीसरा पग रखने के लिए कहीं कोई स्थान नहीं बचा। उनका चरण ऊपर की ओर बढ़ा, जो महर्लोक, जनलोक और तपोलोक से भी ऊपर चला गया। इस प्रकार जब वामनदेव ने तीन पग के बहाने ही सम्पूर्ण पृथ्वी और लोकों का हरण कर लिया, तब तो राजा बलि के सभी सहायक

वीर दैत्यगण अत्यन्त क्रोधित हो उठे और अपने राजा की उच्च स्वर में निन्दा करने लगे कि इन्होंने यह कैसा मूर्खता का कार्य कर डाला ?

याचक के भेष में आए हुए शत्रु को जानकर भी दैत्यगुरु के वचन न मानना, कैसा अनुचित हुआ, यह प्रत्यक्ष हो गया है। हमारे स्वामी कितने सत्यवादी और श्रेष्ठ आचरण वाले हैं, जिन्होंने दरिद्र होना स्वीकार करके अपना सब कुछ खो दिया है। किन्तु भाइयो ! अपने राजा के प्रति देवताओं के इस छल का निवारण हमें अवश्य करना चाहिए। ऐसा निश्चय करके दैत्यों ने हाथों में शस्त्र उठाए और वामन भगवान् को मारने के लिए बढ़े।

तभी राजा बलि ने उन्हें रोका और आज्ञा दी—दैत्यगण ! मैं अपने वचन पर दृढ़ हूं, जो दे चुका हूं, वह दे चुका, उसमें कैसा भी छल मेरे साथ हुआ हो, इसकी चिन्ता मैं नहीं करता। फिर, इस समय तो मुझे श्रीहीन होने का शाप हमारे ही गुरुदेव ने दे दिया है, इसलिए भी यह समय हमारे अनुकूल नहीं है।

हे मेरे आज्ञाकारी बन्धुओ ! शान्त हो जाओ, अपने हथियारों को रखकर जो कुछ होता है, उसे देखो। हे वीरो ! समय बलवान है उसकी उपेक्षा कोई नहीं कर सकता। जो समय अब तक हमारे सुख का साथी बना हुआ था, आज वह विपरीत हो गया है, हमें उसका सामना भी धैर्यपूर्वक करना चाहिए। ऐसा निश्चय करके तुम अपने क्रोध को शान्त करो।

हे मुने ! उन अपने अनुयायी दैत्यों को राजा बलि ने इस प्रकार समझाकर शान्त किया और वामन भगवान् के समक्ष विनीत भाव से बैठे रहे। इधर वामन भगवान् का प्रिय वाहन गरुड़, जो उस समय वहां उपस्थित हो गया था, उसने राजा बलि को अपने गरुड़ पाश में बांध लिया। यह देखकर तीनों लोकों में हाहाकार मच गया। यहां तक कि बलि-बन्धन से ऋषि-मुनि तथा देवता आदि भी दुःखित हुए। किन्तु, भगवान् की इच्छा के समक्ष किसी का वश नहीं चलता है, होना वही होता है जो उनकी इच्छा होती है।

# श्री रामावतार वर्णन

सूतजी बोले—हे शौनक जी एवं महर्षिगण ! भगवान् विष्णु के जय-विजय नामक पार्षदों के हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु नामक दैत्य होने का वृत्तान्त पहले कह चुका हूं। उन पार्षदों को तीन जन्मों तक दैत्य होने का शाप था, इसलिए दूसरे जन्म में वे रावण-कुम्भकरण नामक राक्षस हुए थे। उन रावणादि राक्षसों को मारने के लिए स्वयं भगवान् श्रीहरि ने ही चार रूपों में अवतार लिया था।

राजा दशरथ की रानी कौशल्या के राम, कैकेयी के भरत और सुमित्रा के लक्ष्मण और शत्रुघ्न हुए थे। हे मुने ! इन चार रूपों में अंश-अंश करके स्वयं भगवान् श्रीहरि ही हुए थे। वे चारों पुत्र महाराज दशरथ की आज्ञा का सदैव पालन करने वाले हुए। उन्होंने बाल्यकाल में समस्त वेद-शास्त्र एवं अस्त्र-शस्त्र विद्या, धनुर्वेद आदि में पूर्ण दक्षता प्राप्त कर ली थी। हे शौनकजी सब ज्ञानों के स्वामी ने लोकाचार के लिए वह सब किया जो मनुष्य करते हैं। वे खेले भी शिक्षित भी हुए और फिर विश्वामित्र के द्वारा याचना करने पर अपने पिता राजा दशरथ की आज्ञा से उनके साथ यज्ञ की रक्षा के लिए गए। वहां उन्होंने अनेक राक्षसों को मारकर भगाया और ताड़का का वध किया।

फिर विश्वामित्रजी के साथ जानकी स्वयंवर में राम और लक्ष्मण दोनों पहुंचे। मार्ग में उन्होंने पाषाण बनी हुई गौतम-पत्नी अहिल्या का उद्धार किया, उसे पाषाण से मानुषी बनाया।

फिर भगवान् अपने अनुज लक्ष्मण और महर्षि विश्वामित्र के साथ जनकपुर की ओर चले। जनकपुर पहुंचने पर महाराज जनक ने इन दोनों भाइयों सहित महर्षि का बहुत स्वागत किया और एक सुन्दर भवन में ठहराया।

प्रातःकाल गुरु के पूजनार्थ पुष्ट वाटिका में गए, वहां इन्होंने जनक पुत्री सीताजी को देखा। दोनों ही दोनों की ओर आकर्षित हुए। सीता ने भगवती गौरी से श्रीराम को वर रूप में प्राप्त करने की कामना की तो भगवती ने इच्छा पूर्ण होने का वर प्रदान किया। एक दिन राजा जनक के यहां सीता-स्वयंवर था। मुख्य एवं सुसज्जित स्थान पर शिव धनुष रखा था। उसे उठाकर सीता के साथ विवाह होने की लालसा लिए लंकापति रावण, सहस्रबाहु जैसे महाबली तथा देश-विदेश के अनेकानेक राजागण एकत्रित हुए थे।

उसी स्वयंवर में विश्वामित्रजी के साथ राम लक्ष्मण भी पहुंच गए। उस धनुष को उठाने में सभी वीर राजा, देवता, असुर भी असफल रहे तब विश्वामित्रजी की आज्ञा से श्रीराम ने उस धनुष को क्रीड़ापूर्वक उठाकर तोड़ दिया। धनुर्भंग की तीव्र ध्वनि से सब ओर व्याप्त हो गई। सीताजी ने आकर वरमाला श्रीराम के कण्ठ में डाल दी।

सूतजी बोले—हे शौनक जी ! सीताजी के साथ श्रीराम का विवाह हुआ। अन्य तीन राजकुमारियों के साथ भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न का विवाह सम्पन्न हुआ। इस प्रकार विवाहोपरान्त चारों कुमारों सहित महाराज दशरथ अपनी राजधानी अयोध्या में लौट आए। तदुपरान्त एक दिन महाराज ने विचार किया कि मैं अधिक वृद्ध हो गया हूं, ऐसा निश्चय करके उन्होंने अपने ज्येष्ठ कुमार राम को राज्य पद पर अभिषिक्त करने की घोषणा की। किन्तु रानी कैकेयी की दासी मन्थरा ने कैकेयी को समझाया कि राम के राजा बनने पर भरत की कुछ पूछ नहीं रहेगी, इसलिए इस कपटपूर्ण निर्णय

को बदलवाओ और भरत को राज्य पद की प्राप्ति कराने के लिए राम को वन भिजवा दो। रानी की मति भ्रमित हो गई और उसने महाराज दशरथ को हठपूर्वक भरत को राज्य देने और राम को वन में भेज देने के लिए विवश किया।

इस प्रकार राम को राजगद्दी की अपेक्षा वन गमन की आज्ञा कैकेयी के मुख से सुनाई गई। राम सहर्ष वन गमन के लिए तैयार हुए। उनके साथ उनकी पतिव्रता भार्या सीताजी तथा अनुज लक्ष्मणजी भी वन को चले गए। राम, सीता, लक्ष्मण के वन में चले जाने से उनके पिता महाराज दशरथ शोक में ऐसे डूबे कि उनके प्राण पखेरू ही उड़ गए। श्रीराम के वन में जाने के पश्चात् भरतजी अपनी ननिहाल से लौटे तो माता द्वारा राम को वन में भेजने तथा पिता का मरण देखकर उन्होंने माता कैकेयी की बहुत निन्दा की और पिता का दाह संस्कार किया।

अपनी माताओं, गुरु वशिष्ठ तथा प्रमुख प्रजाजन आदि वन में जाकर श्रीराम से मिले और उनसे अयोध्या लौट चलने का निवेदन किया, किन्तु उन्होंने स्वीकार नहीं किया। विवश भरत उनकी खड़ाऊं लेकर लौटे और राजगद्दी पर खड़ाऊंओं को रखकर, श्रीराम के नाम पर ही राज्य चलाने लगे।

उधर श्रीराम सीता और लक्ष्मण पंचवटी पर रहने लगे। उसी अवसर पर लंकापति रावण की बहन शूर्पणखा अत्यन्त सुन्दर तरुणी का वेश बनाकर श्रीराम के पास आकर विवाह का प्रस्ताव करने लगी। उन्होंने उसे लक्ष्मणजी के पास भेज दिया। लक्ष्मणजी से भी निराश होने पर वह खिसिया गई और उसने अपना भयंकर रूप प्रकट किया। उसकी उद्दण्डता और आक्रामक मुद्रा देखकर लक्ष्मणजी ने उसके नाक-कान काट लिए।

हे मुनिवर ! उस शूर्पणखा ने खरदूषण के पास जाकर अपनी नाक कटने का वृत्तान्त सुनाया। इससे क्रोधित हुए वे असुर अपनी असंख्य असुरी सेना सहित राम-लक्ष्मण का वध करने के विचार से, उनके पास पहुंचे, किन्तु वे सब पराभव को प्राप्त हुए। अधिकांश मारे गए, जो बचे वे भाग गए।

तब वह शूर्पणखा लंकाधिपति रावण के पास रोती हुई पहुंची और उसने राम लक्ष्मण, सीता के विषय में सब बात बताई, अपने नाक-कान के कटने के वृत्तान्त के साथ ही खर-दूषण वध की बात भी कही। इस सबको सुनकर रावण बहुत क्रोधित हुआ, शंकित और भयभीत भी हुआ। उसने कहा कि मैं उस स्त्री को बलपूर्वक ले आऊंगा और उन दोनों वनवासियों को भी मार डालूंगा। तब रावण ने मारीच को स्वर्ण मृग बनने की आज्ञा दी। उस मृग को देखकर सीताजी ने राम से उसे लाने को कहा। राम उस मृग के पीछे-पीछे गए। इधर सीता ने कुछ बुरे शब्द सुनकर लक्ष्मण को राम के पास भेज दिया।

इसी अवसर पर साधु वेश धारण करके रावण सीता से भिक्षा मांगने लगा। सीता भिक्षा देने लगीं, तभी उसने उनका बलपूर्वक हरण कर लिया। इधर राम-लक्ष्मण

ने लौटकर सीता को नहीं देखा तो वे उसकी खोज करने लगे।

इस प्रकार चलते हुए मार्ग में पक्षीराज जटायु को मरणासन्न अवस्था में देखा, जो सीता को बचाने के उद्योग में रावण के द्वारा आहत किया गया था। जटायु ने सीता को रावण द्वारा ले जाने की बात बताई और प्राण त्याग दिए। जटायु को मोक्ष प्रदान करके लक्ष्मण सहित राम आगे चले तो ऋष्यमूक नामक पर्वत के समीप जा पहुंचे।

वहां उनकी भेंट हनुमानजी से हुई। वे उन्हें वानर श्रेष्ठ सुग्रीव के पास ले गए। राम-सुग्रीव की मित्रता हुई। सुग्रीव ने पूछने पर बताया कि प्रभु ! मेरे बड़े भाई ने मुझे शत्रु समझकर नगर से निकाल दिया और मेरा सब कुछ छीन लिया और अब भी मेरी हत्या करने पर उतारू है। शापवश वह इस पर्वत पर नहीं आ सकता, इसलिए मैं उसके भय से यहीं रह रहा हूं। यह सुनकर भगवान राम ने सुग्रीव को अभय प्रदान किया।

राम ने सुग्रीव के हितार्थ महाबली वानराधीश बाली को युद्ध में मारकर उस राज्यपद पर सुग्रीव को अभिषिक्त कर दिया। सुग्रीव ने सीताजी की खोज के लिए हनुमान आदि अनेकानेक वानरों को विभिन्न दिशाओं में भेजा। हनुमान, जामवन्त, अंगद आदि प्रमुख वानरों का दल दक्षिण दिशा में गया था।

हनुमान ने लंका में जाकर सीताजी से भेंट की, उन्हें आश्वासन दिया और फिर रावण की सोने की लंका भस्म कर डाली। उस दल ने सुग्रीव के पास लौटकर पूरा वृत्तान्त कहा, तब वानरों की असंख्य सेना के साथ सुग्रीव, राम और लक्ष्मण ने लंका पर आक्रमण कर दिया।

रावण के दो भाई थे—कुम्भकरण और विभीषण। कुम्भकरण अत्यन्त बलवान और तामसी पुरुष था। वह वर्ष भर में छः महीने सोता। जब राम ने लंका पर आक्रमण किया था, तब वह सो रहा था।

विभीषण श्रीराम के भक्त थे। उन्होंने रावण को बहुत समझाया कि राम से सन्धि कर लो और सीता उन्हें लौटा दो। रावण को विभीषण के कथन पर क्रोध आ गया, उसने लात मारकर विभीषण को लंका से निकाल दिया। तब विभीषण राम से मिल गए और रावण के सभी भेद उन्हें बताने लगे।

हे महामते ! राम की सेना का लंका में पहुंचना बहुत कठिन था। क्योंकि मार्ग में अत्यन्त विस्तार वाला समुद्र था। अन्य कोई मार्ग वहां पहुंचने का नहीं था। इसलिए राम की आज्ञा से वानरों और भालुओं ने मिलकर वृक्षों और पाषाणों के योग से समुद्र पर पुल बनाया, जिससे होकर सभी वानरी सेना उस पार पहुंच गई।

रावण ने वानरों का इस पार आना सुना तो अपने दुर्ग को अधिक सुदृढ़ किया। उस दुर्ग का बाह्य भाग पूर्ण रूपेण यांत्रिक था। उसमें प्रवेश सहज रूप से सम्भव नहीं था। उसे तोड़ा भी नहीं जा सकता था।

सूतजी बोले—हे शौनकजी ! रावण महाबली था, वह किसी के द्वारा जीता नहीं जा सकता था। उसने कैलाश पर्वत तक को उठा लिया था। पर परम शक्तिशाली अपने भक्त रावण पर शिवजी अत्यन्त प्रसन्न थे। उसने भगवान् शंकर की भूक्तिपूर्वक कठिन तपस्या की थी। इस कारण वे प्रभु उस पर सबसे अधिक कृपा करते थे। इसीलिए उन्होंने उसे अतीव दुर्लभ वर प्रदान किए थे। शिवजी ने उसे ज्ञान-विज्ञान के साथ अजेयत्व भी प्रदान किया था।

उसे त्रिकूट के पूरे क्षेत्र का अधीश्वर बना दिया। तभी विजेता रावण ने कुबेर का भी अधिकांश धन वैभव छीन लिया। उसके तपोबल से प्रसन्न हुए शिवजी ने भगवान् विश्वकर्मा से अनुरोधपूर्वक उसकी लंकापुरी का नव निर्माण कराया, जिसमें सब प्रकार के रक्षा-साधन तथा विविध प्रकार की उपभोग्य सामग्रियां सब समय विद्यमान रहते थे, कभी किसी वस्तु का अभाव नहीं होता था। रावण को अद्भुत शक्ति-सामर्थ्य की प्राप्ति हुई थी, इसलिए उसने अपने अनुकूल रखने की इच्छा से सृष्टि की रचना तक में अन्तर कर दिया।

समस्त लोकपालों को जीतकर उसने ब्रह्माजी को भी अपने वश में कर लिया। सूर्य, चन्द्र, अग्नि, काल आदि सभी पर विजय प्राप्त कर ली थी। सभी देवता रावण से पराभव को प्राप्त होकर निर्जन अरण्यादि में जा छिपे थे। इस प्रकार रावण अद्भुत कर्म करने वाला हो गया था।

शौनकजी ने पूछा—रावण को ऐसी सिद्धि किस प्रकार प्राप्त हो गई थी ?

सूतजी बोले—रावण भगवान् शंकर का अनन्य भक्त था। वे भगवान् समस्त सिद्धियों के आश्रयभूत तथा सभी सिद्धों के भी स्वामी हैं। उसने उन्हें प्रसन्न करने के लिए अपने दस मस्तक काटकर चढ़ा दिए थे। उसका ऐसा कठोर तप देखकर शिवजी प्रकट होकर बोले—हे रावण ! मैं तुझ पर अत्यन्त प्रसन्न हूं, जो इच्छित हो, वही वर मांग ले।

हे मुनीश्वर ! यह सुनकर रावण ने उनके समक्ष हाथ जोड़कर निवेदन किया था कि प्रभु ! मुझे तो आपकी भक्ति की ही आकांक्षा है। क्योंकि आपकी भक्ति में सभी सुख विद्यमान हैं। यदि आपने मुझे अपना शरणागत भक्त मान्य कर दिया तो मुझे सब कुछ उपलब्ध हो जाएगा। संसार में ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जो आपके भक्त को स्वतः ही प्राप्त न हो जाती हो। रावण के ऐसे विनीत वचन सुनकर भगवान् भोलेनाथ तुरन्त ही अधिक कृपालु हो गए। उन्होंने रावण को सहज भाव से यह वर दे दिया कि वत्स ! तू जो कुछ चाहता है, वह सब तुझे अवश्य प्राप्त होगा। तेरी किसी भी कामना में कोई भी विघ्न उपस्थित नहीं होगा। तुझे कोई जीत नहीं सकेगा।

हे शौनकजी ! रावण को यह सुअवसर अधिक अनुकूल प्रतीत हुआ। उसने पुनः प्रार्थना की प्रभु ! संसार में अनेक प्रकार के भय विद्यमान हैं। उनसे मेरी रक्षा किस प्रकार प्राप्त हो सकेगी ? शिवजी हंसे और कहने लगे—दशानन ! तेरा भय

तो मैंने पहले ही समाप्त कर दिया है। किसी भी प्रकार का भय तुझे नहीं सतायेगा। फिर भी, तुझे भय की आशंका है तो तेरी रक्षा मैं स्वयं करूंगा। यह इच्छित वर देकर महान् वरदाता भगवान् आशुतोष शंकर वहीं अन्तर्ध्यान हो गए।

हे महामते ! इस प्रकार रावण भगवान् शिव से इच्छित वर प्राप्त करके निर्भय हो गया था और तभी उसने समस्त देवताओं को जीत लिया था। अब किसी में ऐसी सामर्थ्य नहीं थी, जो रावण पर विजय प्राप्त कर सकता।

यह देखकर देवताओं ने भगवान् विष्णु को प्रसन्न करके अपने संकट का वृत्तान्त सुनाया, तभी राम रूप धारण करके उन्हें अवतार लेना पड़ा। बहुत-से देवताओं ने वानरों और भालुओं का रूप धारण किया। वानरराज सुग्रीव भगवान् आदित्य के अंशावतार थे। कपीश्वर हनुमान शिवांश से समुत्पन्न हुए थे, वे ग्यारहवें रुद्र कहलाए।

हे शौनकजी ! विभीषण द्वारा रावण के रक्षा स्थानों के अनेक रहस्य श्रीराम के प्रति कहे थे। हनुमानजी ने जब लंका नगरी जलाई थी, तब उन्होंने स्वयं भी रावण के रक्षा संसाधनों को देखा और उन्होंने यह भी जानकारी प्राप्त कर ली थी कि दुर्ग में कहां-कहां रक्षात्मक उपायों की कमी है। इस कारण वानर सेना ने लंकापुरी पर जोरदार आक्रमण कर दिया और अनेकानेक महारथियों का वध कर दिया। रावण के सभी पुत्र, सभ बांधव मार डाले। लक्ष्मणजी ने उसके परम प्रतापी पुत्र इन्द्रजीत मेघनाद का वध कर दिया।

रावण अधिक शोकाकुल और भयभीत हुआ। उसकी पत्नी मन्दोदरी ने फिर भी उसे समझाया कि सीता को अब भी लौटा दीजिए, जिससे कि अब शेष व्यक्तियों का संहार तो न हो। किन्तु रावण ने उसकी बात नहीं मानी और उसने कुम्भकरण को जगाकर युद्ध के विषय में बताया तो उसे अत्यन्त आश्चर्य हुआ।

कुम्भकरण ने रावण से कहा—भाई ! तुम्हें पर-स्त्री हरण की बात क्यों सूझी ? एक से बढ़कर एक सुन्दर नारियां आपके अपने ही रनिवास में विद्यमान हैं, चाहते तो अन्य स्त्रियां भी सुलभ हो सकती थीं।

हे महाराज ! जब विनाश काल उपस्थित होता है, तब बुद्धि विपरीत हो ही जाती है। लगता है कि इस युद्ध में अपने पक्ष की विजय तो होनी नहीं, मुझे भी अपने प्राण देने पड़ेंगे। चलो, जो होना है, वह होकर ही रहेगा। मैं अभी रणभूमि में जा रहा हूं। यह कहकर कुम्भकरण वहां जाकर भयंकर युद्ध करने लगा। उसने अपने पराक्रम से वानरों की सेना में हाहाकार मचा दिया। अनगिनत वानर मारे गए। यह देखकर राम-लक्ष्मण ने अधिक पराक्रम से काम लिया और तब कहीं वह महाबली कुम्भकरण मारा जा सका। उसके मरने पर आसुरी सेना में हलचल मच गई। वानरों के द्वारा अनेकानेक राक्षस सैनिक मारे गए। जो शेष बचे वे भागकर रावण के पास पहुंचकर पुकार करने लगे।

कुम्भकरण का मरण सुनकर रावण को बहुत शोक हुआ तथा भय के कारण थर-थर कांपने लगा। फिर स्वस्थ चित्त होकर रणभूमि में स्वयं पहुंचा। रावण ने युद्ध में आकर वानर दल को व्याकुल कर दिया। उसके सम्मुख कोई भी ठहर नहीं पाता था। हनुमानजी भी उसके समक्ष श्रीराम-लक्ष्मण के सहायक के रूप में युद्ध कर रहे थे। एक बार तो उन्होंने रावण पर इतना तीव्र मुष्टिक-प्रहार किया कि रावण पृथ्वी पर गिर गया। फिर होश आने पर उसने हनुमानजी पर प्रहार किया तो वे क्षणमात्र के लिए व्यथित हुए और पुनः उसके समक्ष डट गए। किन्तु रावण की मृत्यु होना बड़ा कठिन कार्य था। श्रीराम के अमोघ बाणों से उसके सिर कट-कटकर भी नवीन हो जाते थे। इस कारण समस्त वानर समूह अपने आपको संकट में पा रहा था।

हे शौनकजी ! जब विभीषण ने राम की सेना को विचलित देखा तो रावण की नाभि में छिपा अमृत कुण्ड सोख लेने का रहस्य प्रभु राम को बताया। राम ने प्रभु शिव को प्रणाम करके अपने बाण से रावण के नाभि का अमृत सोख लिया तब उसका वध करके लंका का राज्य विभीषण को दे दिया। फिर सीता सहित अयोध्या आकर रामराज्य की स्थापना की।

# श्रीकृष्णावतार वर्णन

सूतजी बोले—हे शौनकादि मुनिवर ! योगेश्वर प्रभु श्रीकृष्ण का जन्मदिन समस्त विश्व को आनन्दायक था। उस समय सभी दिशाएं अत्यन्त स्वच्छ हो गईं। उनके अवतरित होने पर महात्माओं को बहुत प्रसन्नता हुई, प्रचण्ड वायु शान्त हो गया और सभी नदियां निर्मल हो गईं। आकाशस्थ देवगण पुष्प वर्षा करने लगे। जो यज्ञाग्नि दुष्टों के भय से शान्त हो गई थी, वह पुनः प्रदीप्त हो उठी तथा वेद ध्वनि और स्वाहा का शब्द सुनाई देने लगा।

हे मुने ! भगवान् श्रीकृष्ण का यह अवतार भक्तों के लिए अत्यधिक सुखदायक हुआ था। जय-विजय नामक जो दोनों पार्षद एक जन्म में हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष हुए थे, जो भगवान् नृसिंह और वाराह के द्वारा मारे गए थे। वे दूसरे जन्म में रावण-कुम्भकर्ण हुए, जो भगवान् राम के द्वारा मारे गए। अब उनका जन्म शिशुपाल और दन्तवक्त्र के रूप में हुआ, जिनका वध भगवान् कृष्ण के हाथों हुआ था।

भगवान् कृष्ण के अवतार के समय में सर्वप्रथम ब्रह्माजी आदि देवताओं ने उनकी स्तुति की थी। तदुपरान्त वसुदेवजी एवं कंस के भय से डरी हुई देवकी ने कारागार में भगवान नारायण की स्तुति की।

जिसे सुनकर भगवान् ने उन्हें सांत्वना दी और कहा—आप इस प्रकार भयभीत न हों, मुझे कोई नहीं मार सकता। फिर भी ऐसा कीजिए कि इसी समय नन्दजी की पत्नी यशोदा ने एक कन्या को जन्म दिया है। मुझे गोकुल में उस स्थान पर पहुंचाकर उस कन्या को यहां ले आइए और कंस से कह दीजिए कि यह आठवीं कन्या हुई है। वह उस कन्या को ही मारकर चुप बैठ जाएगा। आप जब मुझे गोकुल के लिए ले जाएंगे, तब किसी प्रकार की बाधा नहीं होगी, लौटने में भी किसी प्रकार का व्यवधान नहीं होगा। सब कार्य सरलता से सम्पन्न हो जाएगा। इतना कहकर भगवान् ने अपना वह चतुर्भुज रूप छिपा लिया और नवजात शिशु हो गए।

तभी नन्दजी के पांवों की बेड़ियां स्वतः खुल गईं, कारागार की किवाड़ें भी अपने आप खुल गईं। वसुदेवजी ने बाहर झांककर देखा तो सभी पहरेदार और सिपाहियों को गहरी नींद में सोते हुए पाया। भगवान् की इच्छा को बलवती जानकर वसुदेवजी उन शिशु रूप भगवान् को गोद में लेकर चल पड़े। मार्ग में युमना बढ़ी हुई थी, वसुदेवजी कुछ सोचकर यमुनाजल में प्रविष्ट हुए। भगवान् के चरणों से जल का स्पर्श होते ही यमुना उतर गई। वर्षा पड़ रही थी, उससे रक्षा के लिए स्वयं सहस्रशीर्ष नाग ने अपने फनों को छाता के समान ऊपर की ओर फैला लिया।

हे शौनकजी ! इस प्रकार वसुदेवजी उस बाढ़ और वर्षा से बचते हुए इस गोकुल में विद्यमान नन्दजी के घर में प्रविष्ट हुए। वहां भी किवाड़ें खुली पड़ी थीं। यशोदा के समीप नजवात बालिका सो रही थी, वे अपने पुत्र को वहां लिटाकर और उस कन्या को गोद में उठाकर चुपचाप लौट आए।

हे मुने ! वसुदेवजी के कारागार में प्रवेश करते ही, वहां फाटक बन्द हो गए, वसुदेवजी के पांवों में बेड़ियां पड़ गईं। पहरेदारों और रक्षक सैनिकों की नींद खुली तो उन्होंने नवजात शिशु के रोने की ध्वनि सुनी तो वे तुरन्त कंस के पास जाकर बोले—हे महाराज ! हे अन्नदाता ! देवकी के आठवें पुत्र ने जन्म ले लिया है। प्रहरियों की बात सुनकर कंस उस आधी रात के समय भी तुरन्त उठकर कारागार की ओर भागा। वह कुछ भयभीत-सा, कुछ हर्षित-सा और अधिक सतर्क-सा कारागार में पहुंचा। भयभीत इसलिए था कि कहीं बालक अपनी माया से विकराल रूप धारण करके युद्ध ही न करने लगे। हर्षित इसलिए था कि आज मैं इसे मार डालूंगा और सदा के लिए झंझट से उबर जाऊंगा। सतर्क इसलिए था कि कहीं कोई उस बालक को वहां से निकाल न ले जाए। इन्हीं आशंकाओं के कारण वह वेग पूर्वक भागा-भागा वहां आया और उस शिशु पर झपट पड़ा।

देवकी ने कहा—भैया ! यह तो कन्या हुई है, पुत्र नहीं है, इसलिए इससे तुम्हें किसी प्रकार का भय नहीं हो सकता। हे भैया ! अपनी इस अबोध भानजी की हत्या मत करो।

यह सुनकर कंस ने अट्टहास पूर्वक कहा—मेरे भय से स्वयं तो नहीं आया,

किन्तु उसने अपनी गुप्तचरी भेज दी। यह जीवित रहेगी तो यहां के भेद लेकर उसके पास पहुंचाएगी। यह भी सम्भव है कि यह यहां मेरे लोगों में तोड़-फोड़ करने का षड्यंत्र ही रचने लगे। इसलिए मैं इसे भी अवश्य मारूंगा।

हे शौनकजी ! यह कहकर कंस ने उस रोती हुई कन्या को तीव्रतापूर्वक पाषाण शिला पर दे मारा। किन्तु वह भी विस्मय में पड़ गया कि वह कन्या शिला पर पछाड़ी जाने से पहले ही हाथ से छूटकर आकाश में जा पहुंची, उसने गम्भीर वाणी से कंस को ललकारते हुए कहा–

अरे पापी ! अरे कंस ! मेरे मारने से क्या लाभ है, तेरा बलवान् शत्रु तो जन्म ले चुका है। हे मूर्ख ! वह बालक ही तेरा काल बनेगा।

यह सुनकर कंस ने अत्यन्त आश्चर्यचकित रूप से आकाश की ओर देखा, वहां देवी रूप में विद्यमान वह ज्योतिर्मयी कन्या देवी के रूप में पूजी जा रही है। बहुत-से आकाशचारी ऋषि आदि उस देवी की अनेक प्रकार से स्तुतियां कर रहे हैं। उसके उस ऐश्वर्य को देखकर कंस भयभीत हो गया।

हे शौनक ! उस समय कंस सोचने लगा। आकाशवाणी ने मिथ्या ही कहा, उसकी कोई बात सत्य नहीं हुई। यह देवता भी कितने असत्यवादी हैं ? नारदजी ने मुझे यह नहीं कहा देवकी की आठवीं सन्तान पुत्र नहीं होगी। इस प्रकार सोच-विचार करता हुआ कंस वहां से चला गया।

वह देवी के उस वचन से अधिक भयभीत हो गया कि तुझे मारने वाला बालक कहीं उत्पन्न हो गया है। इसलिए उसकी व्याकुलता अधिक बढ़ गई। अब यह एक नई समस्या उत्पन्न हो गई कि उसको मारने वाला उत्पन्न हुआ तो कहां ? वह देवकी के गर्भ से क्यों नहीं हुआ ? इस तर्क का समाधान नहीं हो रहा था। उधर नन्दजी के घर में यशोदा अपना पुत्र हुआ जानकर बहुत प्रसन्न हुई। गोकुल में सर्वत्र मंगल उत्सव मनाया गया। घर-घर मंगलाचार होने लगा। गोपियां यशोदा के पास आकर बधाइयां देने लगीं। सभी गोप-गोपियां बालकृष्ण भगवान् के जन्म लेने से सुखी हो गए। किन्तु कभी-कभी उत्पात भी हो जाते थे। बालक कृष्ण को भयभीत करने के लिए आसुरी वृत्तियां भी सजग थीं।

एक दिन नन्दजी के यहां उत्सव मनाया जा रहा था कि कोई राक्षस बालक को मारने के लिए प्रयत्नशील हुआ। वह अदृश्य रूप से शकट अर्थात् गाड़ा में प्रविष्ट होकर कृष्ण को मारने ही वाला था कि तभी उन्होंने अपने चरण की ठोकर मारी, जिससे शकट औंधा हो गया और शकटासुर मारा गया।

हे शौनक ! कंस को यह अनुमान हो गया कि उसी रात कोई बालक गोकुल में उत्पन्न हुआ है। उसने आदेश दिया कि वहां जो भी उस रात्रि में जन्मे हों, उन्हें किसी प्रकार छलपूर्वक मार दिया जाए, जिससे कि प्रजा को पता ही न चले कि यह बालक किसने मारे ? अन्यथा प्रजा में विद्रोह फैल सकता है।

उसने मायामयी पूतना को इस कार्य के लिए नियुक्त किया। वह इच्छित रूप बनाने में भी कुशल थी। उसने गोकुल में जाकर पता लगाया और कृष्ण को मारने के लिए एक सुन्दरी नवयुवती का रूप धारण करके नन्दगृह में घुस गई। उसने पालने में झूलते हुए कृष्ण को गोदी में लेकर स्तनपान कराना चाहा। उसने स्तनमुख पर विष लगा रखा था। कृष्ण ने स्तनपान क्या किया, उसने प्राणों को ही पी लिया। वेदना से छटपटाती हुई पूतना अपने मूल राक्षसी रूप में हो गई और उसका अन्त हो गया।

इसी प्रकार कंस के भेजे हुए अनेक असुर विविध रूप रखकर वहां आये। एक दिन वायु के बवूले के रूप में तृणावर्त नामक असुर वहां आया और कृष्ण को उठाकर आकाश मार्ग से उड़ा ले गया। उसी समय कृष्ण ने अपने शरीर का बोझ इतना अधिक बढ़ा लिया कि वह उन्हें लिए हुए ही भूमि पर आ गिरा। उस समय कृष्ण ने उसका कण्ठ भींच दिया, जिससे उस दैत्य की मृत्यु हो गई।

तदनन्तर एक दिन अधिक उत्पात करने के कारण माता यशोदा ने उन्हें ऊखल से बांध दिया। वे उस ऊखल सहित यमलार्जुन अर्थात् अर्जुन नामक दो जुड़े हुए वृक्षों के मध्य से निकले और उन्होंने वह ऊखल वृक्षों के मध्य में अड़ाकर जोर से खींचा, जिससे वे दोनों वृक्ष समूल उखड़ गए। वे वृक्ष रूप से शापग्रस्त नलकुबेर और मणिग्रीव नामक कुबेर पुत्र थे। भगवान् की इस कृपा से वे शाप मुक्त होकर अपने धाम को चले गए।

हे शौनकजी ! किन्तु ब्रजवासियों ने उस लीला को भी आसुरी उपद्रव ही समझा। उन्होंने परस्पर विचार किया कि यहां नित्य कुछ न कुछ अमंगल होता ही रहता है, इसलिए इस स्थान को छोड़कर हमें अन्यत्र कहीं रहना चाहिए।

ऐसा निश्चय करके उन्होंने वृन्दावन नामक तुलसी के विशाल वन में जाकर रहना आरम्भ किया। वहीं नन्दजी ने नन्दगांव और उनके मित्र वृषभानु ने बरसाना नामक गांव बसाया। इसी के निकट गोवर्धन नामक पुण्य पर्वत है।

हे शौनकजी ! एक दिन सब गोप-बालकों के साथ कृष्ण बलराम दोनों ही वन में भोजन करके धेनु चराते हुए लौट रहे थे, तभी उन्होंने पर्वत के समान विशालकाय अजगर को देखा, जिसका मुख पर्वत की गुफा के समान बहुत बड़ा था। कौतूहलवश अनेक ग्वाल-बाल उसमें घुस गए।

कृष्ण जान गए कि यह अघासुर नामक दैत्य इस रूप में हम सबको निगलने के लिए ही मार्ग में आ बैठा है। ऐसा निश्चय करके कृष्ण उसके मुख में घुसे और उन्होंने अपना शरीर इस प्रकार बढ़ाया कि भीतर से उसका शरीर चटकने लगा, कण्ठ में वायु रुकने लगी, श्वासोच्छ्वास बन्द होने पर अघासुर की मृत्यु हो गई और सभी वहां से सकुशल अजगर के मुख द्वार से बाहर निकल आये।

हे मुनीन्द्र ! एक दिन सभी ग्वाल-बाल वन भोजन कर रहे थे तभी ब्रह्माजी

ने उनकी गायों के बछड़ों का हरण कर लिया। ब्रह्माजी ने यह कार्य कृष्ण के ईश्वरत्व की परीक्षा लेने के लिए किया था। भगवान् कृष्ण ने यह जानकर उसी प्रकार के नए बछड़े उत्पन्न कर दिए और ऐसा भाव प्रदर्शित किया, मानो कुछ हुआ ही न हो। यह देखकर ब्रह्माजी का भ्रम दूर हो गया, उन्होंने भगवान् कृष्ण के समक्ष आकर अपने अपराध की क्षमा मांगी। एक दिवस कृष्ण-बलराम तथा सभी गोप बालक तालवन में, वहां के मीठे फल खाने के विचार से गए। वहां गधे के रूप में धेनुकासुर नामक एक दैत्य सपरिवार रहता था। उसने क्रोधावेश में भरकर उन पर आक्रमण कर दिया। तब बलराम और कृष्ण दोनों ही भाई ने उसे और उसके बन्धुओं को मार दिया।

सूतजी बोले हे मुनीश्वर ! वृन्दावन में कालीदह नामक एक स्थान है। वह यमुनाजी की धारा का ही एक भाग है, जो कुण्ड के समान अधिक गहरा है। वहां कालिया नामक नाग सपरिवार रहता था। उसके विष के कारण यमुनाजी का जल अत्यधिक दूषित हो रहा था। जो भी वहां का पानी पीता मृत्यु के मुख में चला जाता। इस कारण उस क्षेत्र में अधिक संत्रास व्याप्त था।

श्रीकृष्ण ने उस जलाशय को निर्मल करने का निश्चय किया। उन्होंने खेल-खेल में अपने सखा श्रीदामा की गेंद उस दह में फेंक दी। तब श्रीदामा ने हठ पकड़ लिया कि मेरी गेंद लाकर दो। वह कोई अन्य गेंद लेने के लिए भी तैयार न था। इसलिए कृष्ण उस दह में कूद गए। किसी मनुष्य-बालक को वहां आया देखकर नाग अत्यन्त क्रोध से फुंकार उठा ! कृष्ण उसके अनेक फनों वाले मस्तक पर चढ़कर पद प्रहार से पीड़ित करने लगे। इस प्रकार अपने पद प्रहार से ही उन्होंने नाग को घायल कर दिया। अब उसमें प्रतिरोध की शक्ति ही नहीं रही। वह मरणासन्न जैसी अवस्था में पहुंच गया। तब नाग पत्नियों ने श्रीकृष्ण की स्तुति की और वह नाग भी विवश होकर उनसे प्राण-रक्षा की प्रार्थना करने लगा।

श्रीकृष्ण ने उसे क्षमादान देते हुए कहा—हे कालियानाग ! तेरे यहां रहने से यमुना का जल विषाक्त हो गया है और इसमें बहुत से प्राणी मर चुके हैं, इसलिए अब तू इस दह को छोड़कर सपरिवार समुद्र में जाकर रह। मेरी कृपा से तू वहां सब प्रकार से सुखी रहेगा, कोई जल-जन्तु अथवा अन्य जीव तेरा अनिष्ट नहीं करेगा। इस प्रकार की आज्ञा सुनकर कालियानाग वहां से चला गया। यमुना-जल निर्विष और स्वच्छ हो गया।

कृष्ण जल से निकलकर बाहर आये तब ब्रजवासियों की चिन्ता और व्याकुलता मिटी। किन्तु सभी अधिक थक गए थे। सायंकाल का झुकमुका घिर आया था। निवास स्थान अधिक दूर होने के कारण वे रात में वहीं सो गए तभी आधी रात के समय उस वन में आग लग गई। ब्रजवासी त्राहि-त्राहि करने लगे, तब उस भयंकर दावाग्नि का पान करके भगवान ने उन सबकी रक्षा की। एक दिन बलराम, कृष्ण तथा गोप-बालक वन में गौएं चरा रहे थे तभी प्रलम्ब नामक एक असुर गोप

के वेश में वन में वहां आकर, उनके साथ बैठ गया। तब वे सब दो पंक्तियों में बैठकर क्रीड़ा करने लगे। जो हारता, वह जीते हुए को कन्धे पर बैठाकर सवारी कराता।

तभी प्रलम्बासुर ने अपनी हार का बहाना करके बलरामजी को अपने कन्धे पर चढ़ाया और दूर ले चला। तभी बलराम ने उसे दैत्य जानकर अपना भार बढ़ाया और उसे धरती पर डालकर मुष्टिका-प्रहार से मार डाला।

सूतजी बोले—हे मुनीश्वर ! श्रीकृष्ण चाहते थे कि सभी गोप समान रूप से रहें। इसी भावना को जाग्रत करने की दृष्टि से वह चाहे जिस घर में घुस जाते और माखन आदि वस्तुएं निकालकर खा लिया करते थे।

यही नहीं, वे सब प्राणियों के प्रति समान भाव रखते थे, इसलिए भोज्य पदार्थों को अकेले ही नहीं खाते, सब ग्वाल-बालों को खिलाते। यहां तक कि मनुष्यों को ही नहीं, बन्दर आदि पशुओं तथा पक्षियों को भी खिलाते थे। उन्होंने उन गोपियों को भी रोकने का प्रयत्न किया था, जो दही, दूध, माखन आदि उपयोगी पदार्थों को लोभवश स्वयं न खाकर, मथुरा नगर में बेचतीं और मूल्य प्राप्त करके धन जोड़ने का प्रयत्न करतीं।

उनका कथन था कि इससे अन्न और दूध-दही आदि के हम उत्पादक तो अपुष्ट रह जाते हैं और नगर के धनवान अथवा प्रशासक लोग पुष्ट होकर दुर्बलों पर अत्याचार करते हैं।

चीर हरण के प्रसंग में भी ऐसी ही भावना निहित है। गोप-कन्याएं कात्यायनी देवी का पूजन करने के लिए प्रातःकाल अपने वस्त्र उतारकर यमुना में नग्न स्नान करती थीं, जिसे श्रीकृष्ण अनुचित मानते थे। इसीलिए, जब वे अपने-अपने वस्त्र उतारकर नंगी ही यमुना में स्नान कर रही थीं, तब उन्होंने उनके वस्त्र चुरा लिए थे। इस प्रकार उन्होंने उन गोप-बालाओं को नग्न-स्नान न करने की शिक्षा दी।

हे शौनकजी ! भगवान् कृष्ण ने इस प्रकार व्रज में अनेकों हितकर लीलाएं की थीं। उनमें मानवों का ही नहीं, प्राणीमात्र का कल्याण निहित था।

# गोवर्धन-धारण वर्णन

सूतजी बोले—हे शौनकादि एवं मुनिगण ! एक दिन गोकुलवासी इन्द्रदेव के यज्ञ की तैयारी कर रहे थे तब गोकुल में इन्द्रयाग की हर्ष तथा कौतूहल में भरे हुए गोपों के तैयारी करते हुए देखा तो श्रीकृष्ण ने पूछा—यह शक्र कौन हैं ? यह सुनकर वहां उपस्थित एक वृद्ध ने कहा कि यह शक्र अर्थात् इन्द्र मेघों के स्वामी हैं, हे कृष्ण ! हम उन्हीं शाश्वत लोकनायक इन्द्रदेव का यज्ञ करेंगे। वे ही भगवान् खेतों

में बोए हुए बीजों को पुष्ट करके पौधों का रूप देते हैं, वे ही अन्न की वृद्धि करते हैं। वे देवाधिदेव हमारे लिए किसी प्रकार का अभाव नहीं रहने देते, इस कारण हम प्रति वर्ष भक्तिभाव पूर्वक उनका पूजन किया करते हैं।

यह सुनकर श्रीकृष्ण ने अपने पिता नन्दजी से कहा—हे पिताजी ! हमारी जीविका तो गोधन से चलती है। उन गोवर्धन की कृपा से ही हम सब प्रकार अन्न, दूध, दही, माखन, घृत आदि प्राप्त करते हैं। इसलिए गिरि गोवर्धन हमारे लिए सबसे अधिक पूजनीय देवता हैं। मेघों का राजा इन्द्र हमारे लिए कुछ नहीं करता।

वस्तुतः अन्न की उपज आदि हमारे कर्म पर निर्भर है। यदि हम खेत में हल न चलाएं, बीज न बोएं तो इन्द्र कितनी भी वर्षा क्यों न करें अन्नादि कुछ नहीं हो सकता। श्रीकृष्ण के वचन सुनकर गोपों ने परस्पर विचार-विमर्श किया और अन्त में निर्णय लिया कि कृष्ण बहुत तेजस्वी और बुद्धिमान है इसलिए इसकी बात मानना ही हितकर है। अन्त में ऐसा निश्चय करके गोप-गोपियां सभी मिलकर गोवर्धन पर्वत की पूजा करके अपने को धन्य समझने लगे। किन्तु इन्द्र ने अपना पूजन न होने से रुष्ट होकर अपने सहायकों को बुलाकर आज्ञा दी कि नन्दजी के वृन्दावन और गोवर्धन में घनघोर वर्षा द्वारा प्रलय का दृश्य उपस्थित कर दो। मेघों ने आज्ञा सुनकर ब्रजमण्डल पर भयंकर वर्षा ओला डालना आरम्भ किया। प्रलय के समान इस वर्षा ने सभी गोप-गोपियों को अत्यन्त कष्ट दिया। सभी गोपजन परस्पर कहने लगे कि इन्द्र यज्ञ न करने से ही यह संकट उपस्थित हुआ है। कहां हैं नन्दराय जी ! वे कृष्ण से कहें कि इस संकट से रक्षा का कुछ उपाय करें।

हे शौनकजी ! श्रीकृष्ण ने गिरि गोवर्धन अपनी अंगुली पर धारण कर लिया और समस्त गोप-गोपियों से कहा कि आप सब इस पर्वत के नीच आ जाइए, अपने पशुओं को भी यहीं ले आइए। कृष्ण की बात सुनकर और गिरिवर को अनामिका अंगुली पर उठाए हुए देखकर सभी विस्मित हो गए। समस्त नर, नारी, बालक, पशु आदि ने गिरिवर के नीचे शरण लीं। किन्तु कुछ को भय लगा कि कहीं पर्वत गिर न जाए, इसलिए उन्होंने अपनी-अपनी लाठियां भी अड़ा लीं।

इस प्रकार उस पर्वत को श्रीकृष्ण ने सात दिन-रात तक अनामिका पर उठाए रखा। तब मेघों ने समझ लिया कि ब्रजवासियों का अनिष्ट असम्भव है इसलिए धीरे-धीरे वे शान्त हो गए। वर्षा रुकी देखकर सभी गोप-गोपी आदि पर्वत के नीचे से बाहर निकल आए, तब श्रीकृष्ण ने गिरिराज को यथा स्थान स्थापित कर दिया और सभी नर-नारी, बालक-वृद्ध नन्दलाल कृष्ण की जय बोलने लगे। इस प्रकार गोवर्धन पूजा के सानन्द सम्पन्न हो जाने के कारण इन्द्र लज्जित हो उठा, उसने सुरभि सहित ब्रज में आकर श्रीकृष्ण की स्तुति की और अपने अपराध की क्षमा मांगी तथा देव धेनु सुरभि ने उनका अभिषेक किया और तब से श्रीकृष्ण का नाम गोविन्द अर्थात् गौओं के इन्द्र हो गया। फिर सुरभि और इन्द्र दोनों ही भगवान् को प्रणाम

करके अन्तर्ध्यान हो गए।

हे शौनकजी ! मण्डल में भगवान् अद्भुत लीलाएं करते रहे। नन्दजी ही नहीं, समस्त गोप उन पर अत्यन्त स्नेह रखते थे। गोपियों के तो वे जीवन-प्राण ही थे। उन्हें उनको देखे बिना चैन नहीं पड़ता था। वे मुरली बजाने में अधिक कुशल थे।

हे मुने ! गोपियां उनकी मुरली से भी ईर्ष्या करने लगीं। वे कहतीं कि यह मुरली कैसी सौभाग्यशालिनी है, जो सब समय कृष्ण के अधरों से लगी रहती है। नन्दजी का नन्दगांव और वृषभानुजी का बरसाना—दोनों ही महत्वपूर्ण मित्र व गांव बन गए। यह दोनों गांव पास-पास ही बसे हैं। इसलिए परस्पर गोपजन नित्य प्रति मिलते और अपनी-अपनी समस्याओं का समाधान सोचते।

हे महामुने ! वृषभानु की कन्या थी राधा। बहुत सुन्दर, अत्यन्त प्रेममयी, वह साक्षात् लक्ष्मीजी का अवतार थी। कृष्ण परम पुरुष थे तो राधा उनकी परा प्रकृति थी। गोकुल से ही उनका परस्पर प्रेम-भाव था, वृन्दावन में वह अधिक प्रगाढ़ हो गया। राधा-कृष्ण का नित्य मिलन होता, नित्य विहार होता।

हे शौनकजी ! परमात्मा और उनकी माया में कोई भेद नहीं है। इसी प्रकार कृष्ण-राधा में भी भेद नहीं मानना चाहिए। वे एक प्राणी दो शरीर हैं।

## रासलीला वर्णन

इतनी कथा सुनकर शौनकजी ने कहा—हे प्रभु ! कहते हैं कि वहीं यमुना पुलिन पर भगवान् कृष्ण ने गोपियों के साथ रासलीला की थी। कृष्ण तो एक थे गोपियां अनेक थीं तो यह क्रीड़ा किस प्रकार अत्यन्त अद्भुत हुई ? सूतजी बोले-हे शौनक ! हे महामुने ! कहता हूं।

सुनो एक समय की बात है—पूर्ण चन्द्रोदय वाली, शुक्लपक्ष की शोभामयी रात्रि थी, तब भगवान् श्रीहरि वृन्दावन के एक सुरम्य वन में गए। वहां उन्होंने योगमाया के आश्रय से रासलीला करने का निश्चय किया। तदनन्तर उन्होंने मन को हरण करने वाली दिव्य ध्वनि अपनी वंशी से निकाली।

हे मुने ! उस वंशी नाद को सुनकर समस्त गोपियां मोहजाल में लीन हो गई जो नारी जिस कार्य को कर रही थी, वह उसे छोड़कर वंशी नाद के लक्ष्य की ओर भाग चली। कोई भोजन कर रही थी, कोई पति को भोजन करा रही थी, कोई बालक को दूध पिला रही थी, कोई पति के साथ निद्रा में लीन थी। इस प्रकार सभी जल्दी में उल्टे-सीधे वस्त्र पहनकर, बिना कुछ कहे घर से निकल पड़ीं। उनमें से कुछ के पतियों ने रोका तो भी नहीं रुकीं। कुछ ने तो अपनी-अपनी पत्नियों को घर के भीतर ताले में बन्द कर दिया। वे वहां न जा सकीं, इसलिए उस समय का अपना बंधन देखकर निर्जीव हो गई। सभी वहां पहुंच गईं जहां श्यामसुन्दर बड़े मनोयोग से वंशी बजा रहे थे।

हे मुने ! श्रीकृष्ण ने उन्हें समागत देखकर पतिव्रत धर्म का उपदेश दिया और

रात्रि के समय वहां आना अनुचित बताया।

किन्तु गोपियां बोलीं—हे कृष्ण हमने पतिव्रत धर्म का उल्लंघन नहीं किया है। केवल इसी वंशीनाद को सुनने के लिए ही पतियों के भी पति के पास चली आई हैं। जिसमें शारीरिक सुख की अपेक्षा न हो और केवल आत्मानन्द की चाह हो, उस कार्य में किसी प्रकार का पाप नहीं हो सकता। गोपियों की बात सुनकर श्रीकृष्ण ने रासलीला की। एक ही कृष्ण ने अनेक गोपियों के साथ नृत्यमयी वह लीला की।

हे मुने ! भगवान् ने अनेक कृष्ण बनकर, प्रत्येक गोपी के साथ समान रूप से रास किया। इस प्रकार वह रासलीला रात भर चलती रही। उसे देखने के लिए देवता, यक्ष, किन्नर, नाग आदि भी ब्रज में उतर आए। प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रहकर उस लीला को देखते हुए आनन्दमय हो गए। रासलीला के पूर्ण होने पर गोपियों को अभिमान हो गया था। प्रत्येक गोपी अपने को कृष्ण की कृपापात्र समझने लगी।

हे शौनकजी ! भगवान् अपने भक्तों में अभिमान तो रहने ही नहीं देना चाहते। उन्होंने गोपियों के मान-खण्डन का भी निश्चय किया। इस कार्य में उन्होंने अपनी प्रेयसी राधा को भी नहीं छोड़ा।

हे मुने ! वे राधा को साथ लेकर प्रफुल्लित एवं सुरम्य वन-मार्ग पर चले। एक स्थान पर उन्होंने राधा की वेणी गूंथी, उसमें सुगन्धित सुन्दर पुष्प भी सजाये और फिर और आगे बढ़े। तभी राधा बोली—हे गोविन्द ! अब यहां से लौट चलिए, मैं बहुत थक गई हूं। पांव में कांटा भी लग गया है, इस कारण चला भी नहीं जा रहा है।

कृष्ण ने उन्हें सांत्वना देते हुए कहा कि मेरे कन्धे पर चढ़ जाओ, मैं अभी तुम्हें घर पहुंचाये देता हूं। यह सुनकर राधा तैयार हो गईं, कृष्ण आगे की ओर झुक गए, राधा पीठ भाग से चढ़ने को हुई, तभी कृष्ण अन्तर्ध्यान हो गए। राधा धरती पर गिर गईं और कृष्ण को न देखकर रोने लगीं। तभी उनके पदचिन्हों के सहारे से खोजती हुई अन्य सभी गोपियां वहां आ गईं।

अब वे सब प्रेमोन्मादिनी बनकर कृष्ण का गुणगान करने लगीं, कोई उनका ध्यान करती, कोई उनके चरित्र का अभिनय करती, कोई आंसू बहाती। अन्त में कृष्ण को उन पर दया आई और उन्होंने दर्शन देकर आनन्द प्रदान किया।

# उग्रसेन-अभिषेक

सूतजी बोले—हे शौनकजी ! मथुरा के राजा कंस ने यज्ञ का आयोजन किया और उस यज्ञ में बुलाए जाने पर भगवान् कृष्ण वहां पहुंचे। अक्रूरजी को गोकुल में, कृष्ण-बलराम को बुलाने हेतु भेजा। वहां उन्होंने कंस का निमंत्रण कहते हुए नन्दजी

से आग्रह किया कि दोनों भाइयों को मेरे साथ भेज दें और आप भी धनुर्यज्ञ के महोत्सव में सम्मिलित होने के लिए मथुरा पधारें।

कृष्ण-बलराम दोनों भाइयों को भी उन्होंने अनुनय-विनय तथा नीतियुक्त वचनों से समझाया। बलराम-कृष्ण दोनों ही वहां जाने को उत्सुक हुए। क्योंकि उन्हें तो अपना दुष्ट-दलन वाला कार्य करना था। माता यशोदा और गोपियों ने उन्हें रोकने का बहुत प्रयत्न किया, किन्तु वे नहीं रुक सके।

हे शौनकजी ! दोनों भाई अक्रूरजी के रथ पर चढ़ चले। नन्दजी भी मथुरा पहुंचे। उस अत्यन्त सुसज्जित स्थान में दोनों भाई घुस गए। प्रहरियों के रोकने पर भी कृष्ण ने उस शिव धनुष को उठाया और प्रत्यंचा चढ़ाकर जोर से खींचा। इससे वह धनुष क्षण भर में ही बीच से टूट गया। उसके टूटने का शब्द आकाश, पृथ्वी और स्वर्ग में व्याप्त हो गया। सभी दिशाएं गूंज उठीं।

रक्षकों ने धनुष टूटा देखा तो उन्हें मारने को दौड़े तो कृष्ण-बलराम ने उन्हें मारकर भगा दिया और स्वयं उस धनुष के एक-एक खण्ड को हाथ में लेकर, नगर देखते हुए रंगशाला के द्वार पर पहुंच गए। कंस के आदेश से महावत ने वहां कुबलियापीड़ नामक हाथी को अड़ा दिया था, जिससे कि दोनों भाई भीतर प्रविष्ट होने से पहले ही मारे जा सकें। महावत की प्रेरणा से वह हाथी दोनों भाइयों को कुचलने और उनको चीरने के लिए उनकी ओर बढ़ा।

श्रीकृष्ण ने उसे सूंड़ पकड़कर धरती पर पटक दिया और लीलापूर्वक उसे मार दिया तथा दांत उखाड़कर अपने कन्धे पर रख लिया और फिर महावत का भी वध कर दिया।

फिर दोनों भाई रंगशाला में पधारे। तभी मल्लोत्सव प्रारम्भ हुआ, अनेक प्रकार के बाजे बजने लगे, तभी मल्लयुद्ध में अत्यन्त कुशल चाणूर नामक मल्ल ने बलराम और कृष्ण दोनों को मल्लयुद्ध के लिए आह्वान किया। तब श्रीकृष्ण वहां आ गए और चाणूर से भिड़ गए। वह दुष्ट भांति-भांति के दांव-पेंचों को दिखाता हुआ मल्लयुद्ध करने लगा।

यद्यपि प्रजाजनों ने उस युद्ध का विरोध करते हुए कहा था कि मल्लविद्या पारंगत महाबली चाणूर मल्ल का इस बालक के साथ युद्ध होना अन्याय है। किन्तु उनकी बात किसी ने भी नहीं सुनी। तभी श्रीकृष्ण ने उस युद्ध में चाणूर को पछाड़ दिया, इससे उनकी जय-जयकार होने लगी। उसी समय बलराम ने मुष्टिक नामक महामल्ल को धराशायी कर दिया। तब कूट, शल और तोशल नामक मल्ल ताल ठोकने लगे। बलराम ने कूट को मार गिराया और कृष्ण ने शल का वध किया तथा तोशल की भी यही गति हुई। तदुपरान्त मल्लशाला में सन्नाटा छा गया। अब सभी के मुख से दोनों भाइयों की जय-जयकार गूंजने लगी।

सूतजी बोले—हे शौनकजी ! उस समय कंस को कृष्ण का स्वरूप कालपुरुष

के समान दिखाई दिया। समस्त यादवों को वे प्राण के समान दिखाई दिए जब सभी वीर मारे गए, तब कंस भय से विह्वल हो गया। उसने आदेश दिया कि सभी बाजे बन्द कर दो और वासुदेव के इन दुष्ट पुत्रों को तथा उनके पालक नन्द को बांध लो।

हे मुने ! उसका इस प्रकार प्रलाप सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण तुरन्त उछलकर उस मंच पर चढ़ गए, जहां कंस बैठा था। उन्हें पास आए देखकर कंस ने तलवार खींच ली, किन्तु उसे प्रकार का अवसर दिए बिना ही श्रीकृष्ण ने उसके सिर से मुकुट उतारकर मल्लशाला में फेंक दिया और उसके केश पकड़कर घसीटने लगे। इस प्रकार कंस का वध कर दिया। कंस का इस प्रकार संहार होने पर आकाश से पुष्पवृष्टि हुई, दुन्दुभि आदि बजने लगे और सब देवता, ऋषि-मुनि आदि प्रसन्न हो उनका गुणगान करने लगे।

हे मुनेश्रेष्ठ ! तत्पश्चात् दोनों भाई कारागृह में गए। उन्होंने वहां बन्धन में पड़े हुए वसुदेव-देवकी को बन्धन मुक्त किया और फिर अपने नाना उग्रसेन को भी कारागृह से निकाला तथा उन्हें मथुरा का पुनः राजा बनाया। उग्रसेनजी ने कहा कि वत्स ! अब इस राज्य को तुम्हीं संभालो। किन्तु कृष्णजी ने कहा कि हमारे कुल को तो राजपद पर न बैठने का शाप लगा है, इसलिए आपको ही राजा बनना होगा। हम आपके इस राज्य की सब प्रकार से रक्षा करेंगे।

हे शौनकजी ! उग्रसेन जी के राजा होने के पश्चात् दोनों भाइयों ने नन्दजी से ब्रज में लौटने का निवेदन किया और कहा कि हे तात ! हमारे माता-पिता तो आप ही हैं। आपने हमारा चिरकाल तक पालन-पोषण किया है। आप माता यशोदा और सब गोपियों को समझाकर हमारा वियोग दुःख न होने दें। इस समय राज्य-रक्षा के लिए हमारा यहां रहना आवश्यक है। इधर से कुछ उचित होते ही मैं शीघ्र ही ब्रज में फिर आऊंगा।

हे मुने ! इस प्रकार नन्दजी को सान्त्वना देकर तथा वस्त्राभूषण, बर्तन आदि की भेंट द्वारा उनका सत्कार किया। सब गोपों के साथ नन्दजी बड़े अनमने भाव से वहां से लौटे। दोनों भाइयों के ब्रजवासी सखा भी दुःखित मन से ब्रज को गए।

तदुपरान्त वासुदेवजी ने दोनों भाइयों का उपनयन संस्कार कराया और बहुत-सा धन ब्राह्मण और भिक्षुओं को दान में दिया। इसके पश्चात् वेद-वेदांगादि की शिक्षा के लिए उन्हें सान्दीपन गुरु के गुरुकुल में भेजा। वहां वे बहुत शीघ्र ही शिक्षित हो गए। जो सभी ज्ञानों और परम ज्ञानियों के आत्मा हैं, उनको ज्ञान तो स्वभाव से ही सिद्ध है। फिर भी उन्होंने अपनी शिक्षा पूरी की और गुरुदेव से गुरुदक्षिणा मांगने का निवेदन किया। अपने इन शिष्यों को दिव्य सिद्धियों से सम्पन्न और समर्थ जानकर गुरु ने प्रभास क्षेत्र के समीप गिरकर मरे हुए अपने पुत्र को गुरु दक्षिणा के रूप में मांगा। यह सुनकर दोनों भाई प्रभास क्षेत्र में जाकर समुद्र से बोले कि हमारे गुरुपुत्र को लाकर दो।

हे महामते ! समुद्र ने कहा—प्रभु ! मेरे भीतर एक महाबली दैत्य रहता है जिसका नाम पंचजन्य है, उसी ने आपके गुरुपुत्र का हरण किया था। यह सुनकर उन्होंने जल में घुसकर उस दैत्य से युद्ध किया और उसे मारकर, उसके शरीर से शंख ले लिया। हे मुने ! वही शंख भगवान् का प्रसिद्ध पंचजन्य नामक शंख हुआ।

तदुपरान्त भगवान् यमराज की संयमिनी नगरी में गए। वहां प्रभु की समागत देखकर यमराज ने उनका पूजन किया और आज्ञा होने उनके गुरुपुत्र को उन्हें दे दिया। दोनों यदुवीर उसे लेकर गुरुदेव के पास आए और उनका पुत्र उन्हें सौंप दिया। इससे गुरुदेव ने अत्यनत प्रसन्न होकर उन्हें आशीर्वाद दिया।

हे शौनकजी ! फिर वे दोनों भाई मथुरा में लौट आए। हे शौनकजी ! भगवान् श्रीकृष्ण का ऐसा अद्वितीय पराक्रम है, उनके मथुरा लौटने पर सभी स्वजनों ने अत्यन्त सुख माना और राजकार्य के प्रति भी सब निश्चिन्त हो गए।

## जरासंध का आक्रमण

हे शौनक ! हे महामते ! कंस की दो पत्नियां थीं, जो महाबली जरासंध की पुत्रियां थीं। अपने पति के मारे जाने पर वे दोनों दुःख से व्याकुल थी। अपने पिता के यहां गई और उसे मथुरा के सभी घटनाक्रम से अवगत कराया। अपने जामाता की मृत्यु का समाचार सुनकर जरासंध शोक और क्रोध से व्याकुल हो गया और वह अपनी तेईस अक्षौहिणी सेना लेकर चल दिया। उसने मथुरापुरी को सब ओर से घेर लिया। तब दोनों भाई यादव सेनाओं सहित रणभूमि में आए और भयंकर युद्ध में प्रवृत्त हुए। किन्तु जरासंध चतुरंगिणी सेना से पूर्णरूपेण सुसज्जित था, यह देखकर भगवान् को भी रथ आदि की आवश्यकता प्रतीत हुई।

हे मुने ! उसी समय आकाश से दो दिव्य रथ सारथियों सहित उतरे, उनमें प्राचीन दिव्य आयुध तथ युद्ध की अन्य सामग्री भी थे। उन रथों पर बलराम और कृष्ण आरूढ़ हुए और उन्होंने सब ओर से घिरकर आती हुई शत्रु-सेना का संहार आरम्भ किया। इस प्रकार उस भयंकर युद्ध में जरासंध की सब सेना नष्ट हो गई अथवा भाग गई, तब बलरामजी ने उसका रथ और सारथि मार डाला तथा जरासंध को पकड़कर, जैसे ही मारने को उद्यत हुए तभी श्रीकृष्ण ने उन्हें रोक दिया।

श्रीकृष्ण ने कहा—हे भाई ! आप इन्हें मत मारिए। अभी तो इनसे बहुत काम लेना है। बलरामजी ने यह सुनकर जरासंध को छोड़ दिया। तब वह अपनी पराजय से लज्जित होता हुआ अपने नगर को लौट गया। उस समय मथुरा में विजयोत्सव मनाया गया। राजा जरासंध ने पुनः उतनी ही सेना के साथ मथुरा पर आक्रमण किया। इस बार भी उसकी सेना नष्ट हो गई और श्रीकृष्ण ने उसे पुनः छुड़वा दिया। इस प्रकार जरासंध ने मथुरा पर सत्रह बार असफल आक्रमण किए थे। फिर भी हारकर भी वह युद्ध से विरत नहीं हुआ और अन्त में कृष्ण के द्वारा कालग्रास बन गया।

# विश्वकर्मा का निर्माण : द्वारिकापुरी

सूतजी बोले—हे शौनकजी ! भगवान् श्रीकृष्ण मथुरापुरी लौटे। कालयवन की शक्ति का अनुमान लगाया और उन्होंने लवणसागर तथा विश्वकर्मा प्रभु को मस्तक झुकाकर प्रणाम किया और अपनी अभीष्ट पूर्ति के लिए उनका स्मरण किया। इसी मध्य सूर्य के समान तेजोमय सुदर्शन चक्र स्वयं ही भगवान श्रीहरि के पास आ गया। उस समय दिव्य शस्त्रों सहित गरुड़ जी भी वहां उपस्थित हो गए। इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण की इच्छा होते ही युद्ध के समस्त उपकरण स्वतः वहां आ गए।

हे मुने ! सर्वेश्वर श्रीकृष्ण समस्त सिद्धियों के स्वामी हैं, सम्पूर्ण ज्ञान-विज्ञान उन्हीं के आश्रित हैं। उनकी इच्छा मात्र से यह विश्व प्रपंच क्षण मात्र में प्रकट हो जाता है, तब शस्त्रों उपकरणों के स्वतः प्राप्त हो जाने में कोई आश्चर्य नहीं है।

श्रीकृष्ण ने बलरामजी से परामर्श किया—हे देव ! मथुरा नगरी में अब यादवों का जीवन सुरक्षित नहीं है। इसलिए हमें कहीं अन्यत्र किसी अनुकूल स्थान पर अपने आवास की व्यवस्था करनी चाहिए।

बलरामजी बोले—कृष्ण ! तुम्हारा विचार ठीक ही है। हमें मथुरा छोड़ना ही पड़ेगा। कहीं अन्यत्र वह सब व्यवस्था करके यादवों को पहुंचा दें और स्वयं हम भी नगरी की उचित सुरक्षा व्यवस्था करके यहां से चल दें।

बलराम से मंत्रणा करके और उनकी आज्ञा लेकर श्रीकृष्ण भगवान् विश्वकर्मा का स्मरण एवं स्तुति करने लगे।

हे शौनकजी ! भगवान् श्रीकृष्ण की प्रार्थना सुनकर परमदेव विश्वकर्मा तुरन्त ही प्रकट होकर बोले—हे मधुसूदन ! आपने किसलिए मेरा स्मरण किया है ? मैं अवश्य ही आपकी अभिलाषा पूरी करूंगा। बताइए, क्या कामना है ?

प्रभु श्रीकृष्ण ने कहा—विश्वकर्मा प्रभु ! यादवों पर इस समय घोर संकट आन पड़ा है, वह आपसे छिपा नहीं है। कालयवन की करोड़ों संख्या वाली विशाल सेना मथुरापुरी को घेरे हुए है। जरासंध की भी बहुत बड़ी सेना पुनः यहां आने वाली है। यद्यपि मथुरा का दुर्ग अत्यन्त दृढ़ है, वे लोग प्रयत्न करते-करते दुर्ग द्वार तोड़ने में सफल हो ही जायेंगे। इसलिए हे विश्वनिर्माता ! आप इस संकट की घड़ी में कोई युक्ति हमारी रक्षा हेतु करें।

विश्वकर्मा ने कहा—हे केशव ! आप जो चाहें, वही करने को मैं प्रस्तुत हूं। आप मुझे तुरन्त उपाय बताइए, जिसे करके मैं यादवों का हित-साधन कर सकूं।

श्रीकृष्ण बोले—आप लवणसागर के मध्य शतयोजन विस्तार वाला एक ऐसा दुर्ग बनाने की कृपा कीजिए, जो सर्वसुख सम्पन्न हो, सभी के लिए आवास व्यवस्था तथा यादवों के लिए, उनकी पद-प्रतिष्ठा के अनुरूप भवनों का निर्माण हो। कोषागार, अन्न भण्डार, देव मन्दिर तथा यज्ञशाला आदि भी उसमें रहें। तात्पर्य यह है कि

मानवोपयोगी समस्त साधन हों, किसी वस्तु का अभाव न हो। सुरक्षा-व्यवस्था विशेष अनिवार्य है।

विश्वकर्मा ने कहा—हे वासुदेव ! आप निश्चिन्त रहिए। आपने जो कामना व्यक्त की है, वह सब शीघ्र ही पूरी हो जाएगी। यह कहकर भगवान् विश्वकर्मा तुरन्त अन्तर्ध्यान हो गए और सागर के मध्य में उन्होंने शतयोजन विस्तृत एक बहुत ही दृढ़ दुर्ग का निर्माण किया। चारों ओर दुर्ग की प्राचीर इतनी सुदृढ़ थी कि उसे समुद्र के ज्वार-भाटे से नष्ट होने का भय नहीं था। कोई शत्रु भी उस प्राचीर अथवा दुर्ग के तोरणद्वार को नहीं तोड़ सकता था।

उसके अन्दर राजसभा, राजभवन, सुरक्षाकेन्द्र, कोषागार, अन्न भंडार, गोशाला, गजशाला, अश्वशाला, यज्ञशाला, मन्दिर आदि सभी कुछ था। शालाएं बारह थीं, ऊंचे-ऊंचे सुन्दर भवन थे। उन भवनों के द्वार पर सुन्दर-सुन्दर, चित्र-विचित्र किवाड़ें लगाई गई थीं।

राजमार्ग बहुत चौड़े थे, जिनके दोनों ओर अत्यन्त शोभा-सम्पन्न फल-पुष्पों से समन्वित वृक्ष लगाए गए थे। उन वृक्षों में नारियल वृक्ष अत्यन्त शुभ माना गया है। वह शिविरों की पूर्व दिशा में रखे गए थे। इस प्रकार नारियल वृक्ष रहता है तो वह पुत्र प्रदान करने वाला होता है। आम और कदली के वृक्ष भी बहुत-से लगाए गए थे, वे सर्वत्र मंगलदायक और सम्पत्तियों को प्रदान करने वाले होते हैं।

विभिन्न स्थानों पर निम्ब, कदम्ब, अश्वत्थ वट आदि के दिव्य तरु एवं अनेक प्रकार की वनौषधियां लगाई गईं। हे मुने ! इसी प्रकार देव पूजनार्थ अनेक प्रकार के पुष्प-फल वाले वृक्ष भी लगाए गए। पलाश के वृक्ष आदि सुन्दर पुष्प युक्त औषधि आदि में भी प्रयुक्त होते हैं तथा उनका काष्ठ यज्ञादि कार्यों में भी लिया जाता है। अनेक स्थानों पर कूप, वापी, तड़ाग आदि की भी रचना की गई थी। अन्नादि के लिए कृषि क्षेत्र भी उस दुर्ग में रखा गया था। सभी प्रकार की उपभोग्य वस्तुएं प्रचुर प्रमाण में उपलब्ध थीं, जिससे कि कभी किसी वस्तु का अभाव न खटके। उस सुन्दर दुर्ग में सभी सुख-सुविधाओं का ध्यान भगवान् विश्वकर्मा ने रखा था। इस द्वारिकापुरी में भगवान् विश्वकर्मा की समस्त कारीगरी और चतुराई दिखाई दे रही थी। उसमें राजमार्ग, चौराहे, गलियां आदि सभी वास्तुकला के नियमों के अनुसार तथा सुविधात्मक रूप से बने थे।

देव-वृक्षादि से युक्त उद्यान तथा स्फटिक मणियों से निर्मित ऊंची-ऊंची अट्टालिकाएं तथा द्वारों पर स्वर्ण के गगनचुम्बी शिखर चमचमा रहे थे। लौह, पीतल आदि धातुओं के किवाड़ों वाली शालाओं और भण्डारों पर भी कंचन कलश सुशोभित थे। दीवारों और फर्शों पर स्वर्ण-रत्नादि से चित्रकारी की गई थी। देवमन्दिरों और राजभवनों में सुन्दर वैभव था। अन्यान्य भवनों का निर्माण भी बहुत सुन्दर रूप में हुआ था। सभी घरों में सब प्रकार की सुख-सुविधा थी।

हे शौनकजी ! आमोद-प्रमोद के लिए रंगशालाएं निर्मित हुई थीं। यादवों के अतिरिक्त अन्य सब वर्गों के मनुष्य अपनी-अपनी जीविका के साधनों सहित रह सकें, इसका भी ध्यान रखा गया था। विद्याध्ययन के लिए शिक्षाशाला भी बनाई गई थीं। इस प्रकार जो-जो वस्तु मानव जीवन के लिए अनिवार्य होती हैं, वह सभी उस विश्वकर्मा द्वारा निर्मित नगरी में विराजमान थीं।

भगवान् कृष्ण के अपने दिव्य वाहन गरुड़ भी उसे देखकर आश्चर्य चकित रह गए थे। क्योंकि नारायण ने विश्वकर्मा प्रभु से जिस प्रकार की पुरी बनाने की प्रार्थना की थी उससे भी सुन्दर, सुदृढ़ और अत्यन्त उपयोगी पुरी का निर्माण उन्होंने कर दिया था।

हे मुने श्रेष्ठ जी ! विश्वकर्मा की रचना से प्रभावित हुए वरुण ने ऐसे अश्व भेजे, जो श्वेत वर्ण के तथा श्याम वर्ण के कानों वाले थे। वे घोड़े मन के समान वेग वाले और अबाध गति वाले थे। कुबेर ने भी अपनी परम सम्पदा रूप अष्टनिधियों को वहां भेजकर विश्वकर्मा द्वारा स्थापित कराया। इस प्रकार सभी बड़े-बड़े देवताओं ने अपने-अपने ऐश्वर्यों से उस नगरी को सम्पन्न करा दिया। अब वह नगरी सब सुविधाओं तथा समस्त ऐश्वर्यों से युक्त होकर अजेय भी हो गई थी।

हे शौनकादि ! हे महामते ! उस नगरी का निर्माण कार्य अत्यन्त अल्प समय में पूरा हो गया तथा कुछ समय में ही वह सभी ऐश्वर्यों से सम्पन्न हो गई। तब तुरन्त ही भगवान् विश्वकर्मा ने श्रीकृष्ण भगवान् के समक्ष प्रकट होकर कहा—हे प्रभु ! हे केशव ! आपकी इच्छा के अनुरूप द्वारिकापुरी का निर्माण हो चुका है। उसमें सभी प्रकार की सुविधाएं उपलब्ध हैं। ऐसी कोई आवश्यक वस्तु नहीं रह गई है।

यह सुनकर भगवान् कृष्ण ने नतमस्तक पूर्ण भगवान् विश्वकर्मा से निवेदन किया हे वास्तुदक्ष ! हे प्रभु ! आपकी कृपा के प्रति आभार व्यक्त करता हुआ प्रणाम करता हूं। यह निवेदन करके भगवान् श्रीहरि ने समस्त यादवों को द्वारिकापुरी में भेजा। महाराज उग्रसेन, देवक, वसुदेव, अक्रूर, उद्धव आदि सभी बान्धवों को सपरिवार बसने में विश्वकर्मा ने सहायता की। इस प्रकार, सभी कार्य सुचारू रूप से सम्पन्न करके भगवान् विश्वकर्मा अपने धाम को चले गए।

सूतजी बोले—हे शौनकजी ! भगवान् श्रीकृष्ण ने द्वारिकापुरी को विनष्ट करने के साथ ही अपने मनुष्य देह को छोड़ दिया और अंशों सहित अपने विष्णुधाम में चले गए। यह वर्णन मैं तुम्हें सुना रहा हूं। एक बार अनेकों सिद्ध, महात्मा, ऋषि महर्षि आकर ठहरे। यादव बालकों ने उन्हें देखकर छेड़-छाड़ करने का विचार किया। उन्होंने जाम्बवती के पुत्र साम्ब को स्त्रीवेश में सुसज्जित किया तथा पेट पर कुछ गूदड़ लपेट दिया जिससे पेट भारी होने लगा। उस साम्ब को लेकर वे सब बालक उन ऋषियों से जाकर बोले—हे मुनीश्वर यह स्त्री गर्भवती है, इसके पुत्र होगा या पुत्री ? उनकी कौतुक धृष्टता देखकर मुनियों को क्रोध आ गया और वे बोले कि

इसके उदर में यादव वंश का नाश वाला मूसल उत्पन्न होगा।

हे मुने ! उनके शाप द्वारा वास्तव में साम्ब के उदर से लोहे का एक मूसल उत्पन्न हो गया। तब तो वे यादवकुमार अत्यन्त चिन्तित हुए और राजा उग्रसेन की सभा में जाकर श्रीकृष्ण के समक्ष ही सब वर्णन कह सुनाया। उग्रसेन, वसुदेव आदि सभी चिन्तित हो उठे, किन्तु श्रीकृष्ण मौन बैठे रहे। राजा ने उस मूसल का चूर्ण कराकर समुद्र में फेंकवा दिया, जिससे अनेकों लोहे की छड़ें पैदा हो गईं। उन्हीं दिनों द्वारिकापुरी में कुछ उपद्रव होने लगे, जिन्हें देखकर भगवान् ने यादवों से कहा कि इन उपद्रवों की शान्ति के लिए हमें प्रभास क्षेत्र में चलकर पुण्य-दानादि शान्ति उपाय करने चाहिए।

दानादि सुकर्म करने के पश्चात् उन्होंने मद्यपान किया तथा कुछ यादव उन्मत्त होकर परस्पर विवाद करने लगे। यह विवाद बढ़ते-बढ़ते द्वन्द्व का रूप ले बैठा। जो समुद्र की छड़ें उखाड़कर लड़ने लगे। वे छड़ तलवार के समान तीक्ष्ण धार वाले थे, इस कारण उनके लगने से, शरीरों से रक्त बहने लगा और वे उग्र होकर लड़ने-मरने लगे।

बलराम और कृष्ण ने उन्हें लड़ने से रोकने का प्रयत्न किया तो वे उन पर भी प्रहार करने को उद्यत हुए। तब बलरामजी एक वृक्ष के नीचे जा बैठे, उन्होंने समाधि लगाई और उनके मुख से एक परम तेजस्वी सर्प निकलकर कहीं विलीन हो गया।

हे शौनकजी ! तब श्रीकृष्ण ने भी एक वृक्ष के नीचे बैठकर समाधि लगाने का विचार किया और अपने सारथि दारुक को बुलाकर कहा कि मैं अब स्वधाम जा रहा हूं। तुम द्वारिका में जाकर महाराज और वसुदेवजी आदि से कहना कि द्वारिकापुरी तुरन्त छोड़ दें, क्योंकि इसे समुद्र अब अपने में ही विलीन कर लेगा। वहां अर्जुन भी होंगे, उन्हें भी मेरा सन्देश देना कि शेष यादव नर-नारियों आदि की रक्षा करें और उन्हें मथुरा पहुंचा दें।

हे मुने श्रेष्ठ ! दारुक भरे मन से वहां से चलने को ही था कि जरा व्याध ने मृग समझकर श्रीकृष्ण पर बाण चला दिया, जो कि उनके चरणों में लगा। व्याध को ज्यों ही अपनी भूल प्रतीत हुई, त्योंही वह आकर उनके चरणों में गिर गया और क्षमा मांगने लगा। भगवान् ने उसे अभय प्रदान करते हुए कहा कि तू चिन्ता न कर, यह तो ऐसा ही होना था।

दारुक ने उग्रसेनजी, वसुदेवजी तथा अर्जुनादि को उनका सन्देश देकर भगवान् के स्वधाम गमन का समाचार सुनाया। अर्जुन श्रीकृष्ण की आज्ञा के अनुसार उनकी रानी आदि को लेकर हस्तिनापुर की ओर चले, तभी मार्ग में दस्यु आभीरों ने उन स्त्रियों और धन को लूट लिया। महारथी अर्जुन जो अजेय थे, विधाता के प्रतिकूल होने के कारण पराजय को प्राप्त हुए।

हे शौनकजी ! हस्तिनापुर पहुंचकर उन्होंने राजा युधिष्ठिर को सब वृत्तान्त सुनाया जो उनकी आज्ञा से सभी पांडव, द्रौपदी सहित हिमालय को चल दिए। उन्होंने हस्तिनापुर राज्य परीक्षित को और मथुरा का राज्य श्रीकृष्ण के पौत्र पद्मनाम को संभाल दिया। हे शौनकजी ! भगवान् के इन अवतारों का वर्णन किया जा चुका है।

# समुद्र-मंथन

सूतजी बोले--हे शौनकादि ! ऋषिवरो ! समुद्र-मंथन विषय जो आपने पूछा है, सुनो--प्राचीनकाल में देवताओं और दैत्यों के मध्य घोर संग्राम हुआ था, उसमें दैत्यों से देवगण पराजित हो गए थे। ऐसा दुर्वासा महर्षि द्वारा दिए गए शाप के कारण हुआ। तब सभी देवता क्षीरसिन्धु में शयन करने वाले भगवान् विष्णु के पास गए और उनसे प्रार्थना करने लगे कि हे प्रभु ! हमारी रक्षा कीजिए। आप सभी के रचयिता, रक्षक और संहारकर्ता हैं। हे जनार्दन ! हम बहुत बड़ी आशा लेकर आप नारायण की शरण में उपस्थित हुए हैं। आप हम पर प्रसन्न हो जाइए प्रभु !

भगवान् विष्णु ने देवताओं को सान्त्वना देते हुए कहा—हे देवगण ! हे देवराज इन्द्र ! मैं आपके प्रति नीति की बात कहता हूं। जब किसी प्रकार अपना पक्ष दुर्बल दिखाई दे तो समय के अनुसार चलना ही बुद्धिमानी है। राजनीति यही कहती है कि शत्रु प्रबल हो तो उससे सन्धि कर ली जाए। इसलिए आप दैत्यों से तुरन्त मेल कर लो। इस समय मेल करने में ही भलाई है। विनाश से सुर समाज को बचाने के लिए अपना काम निकाल लो।

देवराज इन्द्र ने फिर भगवान् से निवेदन किया—हे विश्वेश्वर ! आपने सन्धि की आज्ञा दी है, किन्तु इससे तो शत्रुओं का साहस और भी अधिक बढ़ जायेगा।

श्री नारायण हंसे, उन्होंने कहा—मेरी पूरी बात ध्यान से सुनो। देखो, समुद्र में बहुत-सा ऐश्वर्य विद्यमान है। वहां से बहुत-सी ऐसी अनमोल वस्तुएं निकलेंगी, जिनकी प्राप्ति होने पर देवताओं की श्रीवृद्धि होगी और दैत्यों की हानि होगी। जब समुद्र मथा जाएगा, तब अनेक रत्नों की और अमृत की भी प्राप्ति होगी। उसी समय समुद्र से लक्ष्मीजी का भी उद्भव होगा। जो अमृत निकलेगा, उसका पान आप सब को कराऊंगा, किन्तु दैत्यगण अमृत की प्राप्ति की कामना करते हुए देखते ही रह जायेंगे। हे देवगण ! समुद्र का मन्थन करने के लिए मन्दराचल की रई और वासुकी नाग की रस्सी बनाओ। उस रई को मैं अपनी पीठ पर साधे रहूंगा। यह सुनकर देवता 'जो आज्ञा' कहकर चल दिए। उन्होंने दैत्यराज बलि के पास जाकर कहा—हे

दैत्यराज ! हम चाहते हैं कि दैत्यों और देवताओं में सन्धि हो जाए। हमें पता चला है कि समुद्र में अमृत आदि बहुत-सी दुर्लभ वस्तुएं विद्यमान हैं, जिन्हें हम दोनों मिलकर ही, समुद्र का मन्थन करके प्राप्त कर लें। दैत्यराज वलि ने इन्द्र का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। फिर उन दोनों ने मन्दार पर्वत को उठाकर समुद्र में डाल दिया और वासुकी नाग को मथानी बनाने के लिए विवश कर दिया और उसकी मथनी बना डाली। अब देवता और दैत्य उसे मथने के लिए तत्पर हुए।

परन्तु मन्दराचल समुद्र में धसकने लगा तो स्वयं भगवान् ने कूर्मावतार धारण करके पर्वत को अपनी पीठ पर रख लिया। देवगण वासुकी को मुख की ओर से पकड़कर और दैत्यगण वासुकी की पूंछ की ओर रखे गए। किन्तु दैत्यों ने कहा कि हम मुख की ओर रहेंगे। यह सुनकर भगवान् ने देवताओं को पूंछ पकड़ने का निर्देश दिया। इस प्रकार समुद्र मंथन के समय देवता पूंछ की ओर और दैत्य वासुकी के मुख की ओर रहकर समुद्र मंथन करने लगे। समुद्र मथा जाने लगा, उससे सर्वप्रथम हलाहल विष निकला। तब सभी प्राणियों ने भगवान् शंकर से पुकार की कि हे प्रभु ! यह हलाहल विष सम्पूर्ण विश्व को प्रभावित कर रहा है। उससे संसार नष्ट हुआ जा रहा है। इस समय आपके अतिरिक्त ऐसा कोई नहीं है, जो विश्व की रक्षा कर सके। उनकी प्रार्थना सुनकर भगवान् शंकर ने हलाहल विष को धारण कर लिया, जिसके प्रभाव से उनका कण्ठ नीला हो गया, इसलिए वे नीलकण्ठ कहलाए। तदुपरान्त उत्साहपूर्वक मन्थन चलता रहा और इस बार कामधेनु प्रकट हुई, जिसे यज्ञ-सम्बन्धी हवि के लिए ब्रह्मवादी महर्षियों ने ग्रहण कर लिया।

उसके पश्चात् श्वेत रंग का एक अश्व निकला, जिसका नाम उच्चैःश्रवा था। वह घोड़ा राजा बलि ने ले लिया। उसके पश्चात् ऐरावत नामक गजेन्द्र उत्पन्न हुआ, वह इन्द्र ने लिया। पुनः समुद्र से कौस्तुभ मणि निकली, वह भगवान् विष्णु ने ले ली। उसके बाद कल्पवृक्ष प्रकट हुआ, वह स्वर्गलोक की शोभा बढ़ाने वाला और स्वर्गवासियों की कामना पूर्ण करने वाला हुआ। तदुपरान्त अप्सराएं उत्पन्न हुईं। देवता दैत्यों का उत्साह बढ़ गया। वे निरन्तर समुद्र मंथन कर रहे थे।

हे मुने ! इस बार ऐश्वर्यशाली लक्ष्मीजी प्रकट हुईं। उनका रूप, लावण्य, तेज अद्वितीय था। वैसी सुन्दरता कभी किसी ने देखी नहीं थी। उनकी कामना देवता और दैत्य, सभी ने की थी। देवराज इन्द्र ने उन समुद्र सुता को दिव्य आसन दिया।

हे मुने ! वहां जो ऋषि-महर्षि समुद्र-मंथन के कुतूहल के दर्शनार्थ के लिए उपस्थित थे, उन्होंने लक्ष्मीजी का विधिपूर्वक अभिषेक किया। महर्षियों ने मन्त्रोच्चारण पूर्वक उन कमलहस्ता लक्ष्मी जी का अभिषेक किया। तदुपरान्त समुद्र ने पीत रेशमी वस्त्र दिए और वरुण वैजयन्ती माला धारण कराई। प्रजापति विश्वकर्मा ने विचित्र आभूषण, सरस्वती ने हार, ब्रह्माजी ने कमल और नागों ने कुण्डल भेंट किए। तब लक्ष्मीजी उन मांगलिक वस्त्राभूषणों को धारण करके तथा वर माला हाथ में लेकर

अपने लिए वर खोजने निकलीं। उन्होंने सब देवता, गन्धर्व, यक्ष, सिद्ध, दैत्य आदि देख डाले। किन्तु किसी को भी योग्य नहीं समझा। तभी उन्हें सर्वोत्कृष्ट यश से सम्पन्न तथा परम ऐश्वर्यशाली भगवान् विष्णु दिखाई दिए। उन्हें देखकर लक्ष्मीजी अत्यन्त प्रसन्न हुई और उन्होंने अपने हाथ में ली हुई वर माला उनके कण्ठ में डाली और उनके वाम भाग में चुपचाप खड़ी हो गई। तब भगवान् विष्णु ने प्रसन्नचित्त से उन्हें अपनी पत्नी स्वीकार किया। उस समय महान् उत्सव मनाया गया तथा ब्रह्मा, शिव एवं महर्षिगण उनकी मन्त्रमयी स्तुति करने लगे। उसके पश्चात् वारुणीदेवी का उद्भव हुआ, भगवान् की आज्ञा से उसे दैत्यों ने ग्रहण कर लिया।

हे मुने ! तत्पश्चात् समुद्र से सुपुष्ट और लम्बी भुजाओं वाला श्यामवर्ण का एक तरुणावस्था से युक्त अद्भुत पुरुष धन्वन्तरि उत्पन्न हुआ, जो पीताम्बरधारी, दिव्य मालाओं और मुकुट-कुण्डलादि से सुशोभित अपने शीश पर अमृत-कलश रखे हुए उत्पन्न हुआ। उसे देखते ही दैत्यों ने अमृत प्राप्ति की इच्छा से वह कलश धन्वन्तरि से छीन लिया और भाग गए।

हे शौनकजी ! अपने को अमृत से वंचित हुआ देखकर देवता अत्यन्त व्यथित एवं निराश होकर भगवान् विष्णु के समक्ष हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगे हे जनार्दन ! हमारा परिश्रम व्यर्थ हो गया। दैत्यगण अमृत-कलश छीनकर ले गए, इससे वे अमर हो जायेंगे। भगवान् विष्णु ने उन्हें सांत्वना दी। देवगण ! तुम व्यर्थ चिन्ता मत करो। मैं उन्हें माया के वशीभूत करके अमृत कलश लेता हूं। उस अमृत का पान तुम अकेले ही करोगे। दैत्य नहीं कर सकेंगे।

सूतजी बोले—हे मुने ! दैत्यगण उस कलश को छीनकर तो ले गए, किन्तु सभी पहले अमृत पीने के विचार से परस्पर ही छीना-झपटी करने लगे। इस प्रकार वे आपस में ही लड़ने लगे। उस समय भगवान् विष्णु स्वयं को अनुपम सुन्दर नारी का अद्भुत रूप बनाकर जो नीलकमल के समान सुन्दर वर्ण, क्षौम वस्त्र और रत्नों के कण्ठहार, दिव्य पुष्पों की माला, विभिन्न अंगों में आभूषण, पतली कमर में कौंधनी, नवीन तरुणावस्था, चरणों में क्वणित नूपुर कमल के समान नेत्रों से इधर-उधर देखती हुई वह मोहिनी दैत्य दल में प्रवेश कर गई। उसके उस अद्भुत और परम सुन्दर रूप को देखकर दैत्य अवाक् रह गए। अमृत प्राप्ति के लिए जो पारस्परिक संघर्ष हो रहा था, वह रुक गया।

सभी दैत्य मोहिनी जी को प्राप्त करने की उत्कट अभिलाषा में सब कुछ भूलकर उनके पास गए और पूछने लगे—हे परम शोभने ! तुम कौन हो ? कहां से आई हो ? क्यों आई हो ? क्या तुम वर की खोज में निकली हो ? मोहिनी ने मुस्कान भरी चितवन से उनकी ओर देखा और कहने लगीं—हे असुरगण ! मैं इधर भ्रमण के लिए निकली थी, यह बताओ कि तुम लोग कौन हो ? हो सकता है कि मैं तुम्हारी कुछ समस्या हल कर सकूं। विवेकी पुरुष सदा धैर्य और मेल से काम लिया करते हैं।

यह सुनकर दैत्यों ने कहा—हे सुन्दरी ! हम कश्यप सन्तान होने के कारण भाई-भाई हैं। अमृत-कलश ही हमारे संघर्ष का कारण है, इसकी प्राप्ति के लिए हम सबने मिलकर परिश्रम किया है। क्या तुम इस अमृत का बंटवारा इस प्रकार कर सकती हो, जिससे हमारी पारस्परिक कलह दूर हो जाए और हम एक होकर अमृत-पान कर सकें।

मोहिनी रूपधारी नारायण ने उनको भ्रमित करने के उद्देश्य से कहा—दैत्य-गण ! तुम कश्यप जैसे महान् ऋषि की सन्तान हो। परन्तु मैं तो पुंश्चली हूं, मुझ चरित्रहीन पर कैसे विश्वास कर रहे हो ? देखो, बुद्धिमानों को किसी स्त्री पर विश्वास नहीं करना चाहिए। उचित यही है कि तुम संयम चित्त होकर ही शांतिपूर्वक परस्पर में अमृत का बंटवारा कर लो। दैत्यों ने कहा—तुम्हारे स्पष्ट व मधुर वचन और सुन्दर सूरत देखकर हमें विश्वास होता है कि तुम हमारे साथ विश्वासघात नहीं करोगी। लो, यह कलश संभालो और हम सबमें अमृत बांट दो।

हे शौनकजी ! मोहिनी रूपी विष्णु जी ने अमृत-कलश ले लिया और मोहक चितवन से उनकी ओर देखती हुई बोली—यह कलश तो मैं लिए लेती हूं, किन्तु अमृत बांटते समय यदि कुछ अनुचित कार्य भी मुझसे हो जाए तो उस पर विरोध नहीं करोगे। ऐसा वचन देने पर ही मैं यह कार्य पूरा कर सकूंगी। क्योंकि बांटने वाला कार्य बहुत उलझा हुआ होता है, उस समय जैसी स्थिति होती है, उसी के अनुसार कार्य करना होता है, तब यह ध्यान रखना सम्भव नहीं होता कि किसको ज्यादा दिया गया या किसको कम ? किसको पहले या किसको बाद में ?

# देवताओं द्वारा अमृतपान

दैत्यों ने उनकी बात स्वीकार कर ली और विश्वास दिलाया कि वह किसी प्रकार बांटें। तब मोहिनी जी ने पुनः कहा—दैत्यगण ! तुम्हारे साथ देवताओं ने भी उतना ही परिश्रम किया था, जितना तुमने। देखो, देवगण भी तुम्हारे बन्धु हैं, उन्हें भी अमृत का अंश मिलना चाहिए। यदि तुम्हें यह स्वीकार हो, तभी मैं इसे करूंगी।

दैत्यगण मोहिनी जी के मायारूप में फंसे थे, इसलिए स्वीकार करते रहे। तभी उन्होंने देवताओं को बुला लिया और बोली—सभी दैत्य एक पंक्ति में बैठें और सभी देवता दूसरी पंक्ति में। उनके कहे अनुसार देवताओं और दैत्यों ने वैसा ही किया। उस समय सभी उनके कटाक्षों से विमोहित हो रहे थे। मोहिनी जी ने अमृत पिलाने का कार्य देवताओं की पंक्ति से आरम्भ किया, किन्तु मोहिनी माया में आसक्त हुए दैत्यों ने उसका विरोध नहीं किया। वे धैर्यपूर्वक अपनी बारी की प्रतीक्षा करने लगे।

किन्तु राहु ने देखा कि यह तो सब अमृत देवताओं में ही बंट जायेगा, इसलिए छद्मवेश बनाकर सूर्य-चन्द्रमा के मध्य जा बैठा और अमृत-पान कर लिया। सूर्य चन्द्रमा ने संकेत से यह बात मोहिनी को बता दी तो अमृत पीते हुए राहु का सिर भगवान् ने अपने चक्र से काट दिया। वही अमृत पी लेने के कारण राहु और केतु हुए, जो ग्रहण रूप में सूर्य और चन्द्रमा को अमावस और पूर्णिमा में कभी-कभी कष्ट देते रहते हैं।

हे मुनि श्रेष्ठ ! देवताओं ने जब सब अमृत पी लिया और दैत्यगण उससे वंचित रह गए, तब भगवान् ने अपना मोहिनी रूप छिपा लिया। इस प्रकार भगवान् ने दैत्यों को अधिक लालच करने के कारण अमृत रूपी श्रेष्ठ फल को प्राप्त नहीं होने दिया। इसलिए लालच का परित्याग सदैव करना चाहिए।

## देवताओं की देवासुर-संग्राम में विजय

हे शौनकजी ! अमृत से वंचित रह जाने के कारण दैत्यगण अत्यन्त क्रोध में भर गए और वे तुरन्त ही देवताओं पर शस्त्राशस्त्र लेकर टूट पड़े। किन्तु देवगण अब उतने दुर्बल तो रह नहीं गए थे, उनके आक्रमणों से हार मान लेते।

तब देवगण भी अमृतपान करके इन्द्रादि सभी पुष्ट शरीर हुए, हाथों में शस्त्रास्त्र लेकर दैत्यों से युद्ध करने को उद्यत हुए। तब तो उस समुद्र-तट पर ही देवताओं और दैत्यों के मध्य घोर युद्ध होने लगा। उस समय युद्ध के बाजों का नाद सब ओर व्याप्त हो गया। हाथी, रथ, घोड़े आदि के चलने-भागने आदि से शब्द भी बढ़ रहा था, धूल भी उड़ रही थी। पैदल सेनाएं भी इधर से उधर मार-काट करती हुई कोलाहल कर रही थीं, इसलिए मारो-काटो के अतिरिक्त कुछ सुनाई ही नहीं दे रहा था।

हे शौनकजी ! कोई-कोई तो ऊंटों, गधों, रीछों, मृगों आदि को भी सवारी के लिए पकड़ लाए थे। कुछ दैत्य ऐसे बलवान थे कि सिंह की सवारी करते हुए लड़ रहे थे। अनेक प्रकार की ध्वजाएं उस रणभूमि में फहरा रही थीं। उधर समस्त दैत्य-सेनाओं के प्रमुख सेनापति थे दैत्यराज विरोचन के पुत्र राजा बलि, जो उस समय अपने अद्भुत विमान पर चढ़कर युद्ध कर रहा था। वह आवश्यक होने पर अदृश्य भी हो जाता था और बादलों में छिपे हुए सूर्य से बादल हटने पर प्रकट हो जाता था। इस प्रकार राजा बलि का वह विमान विचित्र था, वैसा विमान कोई दूसरा नहीं था।

हे मुने ! बलि के साथ अनगिनती दैत्य सेना थी जो किसी के द्वारा सहज में ही पराजित नहीं की जा सकती थी। वे सभी इस समय देवताओं को मार डालना चाहते थे। उन वीर दैत्यों में शम्बर, बाण, आयोमुख, कालनाभ, शंकुशिरा, उत्कल, कालकेय आदि अपने-अपने वाहनों पर बैठे हुए विविध प्रकार के शस्त्रों से प्रहार कर रहे थे।

इधर देवराज इन्द्र अपने ऐरावत हाथी पर आरूढ़ हुए अत्यन्त सुशोभित थे। उनके कन्धे पर धनुष और हाथ वज्र था, उनके सब ओर बहुत-से सुरनायक अपने-अपने वाहनों पर चढ़े हुए युद्ध करने लगे थे। उनके साथ कुबेर, वायु, वरुण, अग्नि आदि देवनायक, लोकपाल आदि संग्राम में जुटे थे। युद्ध इतना भयंकर था कि दैत्यगणों ने उसे निर्णायक मान लिया था। ऐरावत पर शोभायुक्त दिखाई देने वाले इन्द्र से बलि ने कहा था—धूर्त इन्द्र ! सन्धि के प्रस्ताव में भ्रमित करके नीति को भी छोड़ देना, क्या यह किसी धर्मज्ञ और न्यायवान का कार्य हो सकता है। तुझ अन्यायी को मैं आज जीवित नहीं रहने दूंगा।

इन्द्र बोले—मूर्ख ! अब इन्द्र इतना दुर्बल नहीं रहा है कि तू उसका सामना कर सके। इस समय तो तू अपने ही प्राणों को बचा। आज तेरा अन्तिम समय आ गया है। ऐसा कहकर इन्द्र ने वज्र संभाला, बलि ने भी अपने हाथ में गदा ले ली तथा एक-दूसरे पर प्रहार करने लगे। दैत्य सेना की बहुत हानि हुई। यह देखकर दैत्य-दलपतियों ने प्रमुख देवताओं पर कठोर प्रहार आरम्भ किए, किन्तु उनका कर्म निष्फल ही हुआ। यह देखकर दैत्यराज बलि क्रोध करके देवताओं पर शस्त्रास्त्र चलाने लगा। इस कारण बहुत-से वीर देवता आहत होकर गिरने लगे। फिर बलि ने शीघ्रता से इन्द्र पर गदा से प्रहार किया। वह प्रहार इतना प्रबल था कि एक बार तो इन्द्र भी चेतनाहीन हो गए। फिर शीघ्र ही संभलकर उठ खड़े हुए। अब बलि ने उन पर घोर बाण-वर्षा की, जिसे इन्द्र अपने बाणों के बीच में ही नष्ट करने लगे। इस प्रकार बलि और इन्द्र के मध्य वह युद्ध बहुत ही भयंकर था। एक बार तो इन्द्र को भी अपनी विजय के प्रति शंका होने लगी। उन्होंने बलि पर शक्ति से प्रहार किया, जिसे बलि ने अपनी शक्ति से नष्ट कर दिया और अपनी आसुरी माया से भीषण अग्नि-वर्षा की। वह अग्नि अपनी तीव्र ज्वालाओं की लपटों से देवताओं को दग्ध करने लगी। तभी आसुरी माया से बलि ने समुद्र को भी अमर्यादित कर दिया। उसमें ऊंची-ऊंची लहरें उठ-उठ कर देवताओं को बहाने लगीं। इस प्रकार दैत्यराज ने देव सेना सहित इन्द्र को व्यग्र कर दिया। तभी देवताओं पर घोर विपत्ति आई जानकर भगवान् स्वयं गरुड़ पर आरूढ़ होकर वहां आ गए। उन्होंने बहुत-सी दैत्य सेना का कुछ ही समय में संहार कर डाला।

हे शौनक ! भगवान् को युद्ध में देखकर इन्द्र का भी साहस और उत्साह बढ़ गया तथा उन्होंने राजा बलि का वध करने के उद्देश्य से वज्र उठाया, तभी बलि ने भी उन पर अपने नाराच बाणों से प्रहार आरम्भ किया। किन्तु अमृत पान से अत्यन्त पुष्ट हुए इन्द्र को वह कुछ भी क्षति नहीं पहुंचा सका। इधर इन्द्र ने और उनके सहायकों ने दैत्यों का संहार आरम्भ कर दिया। बहुत-से दैत्य-दलपति और महारथी उस युद्ध में मारे गए।

हे मुने ! दैत्य कुल का ऐसा भयंकर संहार देखकर ब्रह्माजी ने सोचा कि इस

समय तो दैत्यगण निर्दोष हैं, देवताओं ने ही उनके साथ अमृत पीने में छल किया है, इसलिए उनका पूर्ण विनाश कदापि उचित नहीं है। तब नारद जी ने चतुरानन के कहने पर इन्द्र को संदेश दिया तो इन्द्र ने मार-काट से हाथ खींच लिए, तब शेष बचे हुए दैत्यगण युद्धभूमि से भाग गए। हे मुने ! समुद्र मंथन और देवासुर संग्राम का यह वृत्तान्त मैंने सुनाया। अब कहो क्या जानने की इच्छा है। इस पर शौनकजी ने कहा–हे सूतजी सुनते हैं कि भगवान् वामनदेव ने राजा बलि को बांध लिया था, कृपा करके वह वृत्तान्त विस्तार से कहिए।

# वज्र-निर्माण

हे शौनकजी ! वसु की पत्नी आंगिरसी के पुत्र स्वामी विश्वकर्मा नाम से प्रकट हुए। उन विश्वकर्मा के चाक्षुष नामक पुत्र हआ। चाक्षुष मनु के दो पुत्र हुए, जिनके नाम विश्वे और साध्या थे। विश्वकर्मा के ही विशालरूप नामक पुत्र तथ संज्ञा नाम की एक कन्या हुई थी। एक बार देवगुरु बृहस्पतिजी इन्द्र की सभा में गए थे, इन्द्र सभा में इतने अधिक आनन्द में मग्न हुए बैठे थे कि उन्होंने अपने गुरु को देखकर भी अनदेखा कर दिया। सम्मान तो दूर, वाणी से भी सत्कार नहीं किया। तब उसे ऐश्वर्य मद में चूर जानकर बृहस्पति जी वहां से रुष्ट होकर चुपचाप लौट गए। इस कारण इन्द्र श्रीहीन होने लगे, तब उन्हें ध्यान आया कि मैंने गुरुदेव का तिरस्कार किया था। वे उन्हें मनाने के विचार से उनके घर पर गए, किन्तु बृहस्पति जी वहां से अदृश्य हो गए। तब इन्द्र ने ब्रह्मलोक में जाकर ब्रह्माजी से अपने अपराध की बात कही और उसके निवारण का उपाय पूछा। ब्रह्माजी बोले–हे देवेन्द्र ! तुमने ऐश्वर्यमद में अपने गुरुदेव का भी तिरस्कार कर दिया, यह अवश्य ही अकल्याणकारी हुआ। अतः तुम बृहस्पतिजी जब तक न आयें, तब तक के लिए विश्वकर्मा के पुत्र विश्वरूप को अपना पुरोहित नियुक्त कर लो। तुम उनका सदा सम्मान करते रहना। किसी भी कार्य पक्ष-विपक्ष में भी उनका विरोध मत करना, वरन् सब कुछ चुपचाप सहन करते रहना। यदि ऐसा करोगे तो तुम्हारा मनोरथ अवश्य पूर्ण होगा। जैसी आपकी आज्ञा।

हे शौनक ! ब्रह्माजी का आदेश सुनकर इन्द्रादि प्रमुख देवता विश्वकर्मा के पुत्र विश्वरूप के पास गए और प्रणाम करके प्रार्थना करने लगे–हे प्रभु ! आपको नमस्कार है। हम सब आपके पास अतिथि के रूप में उपस्थित हुए हैं। आप कृपया अपने तपोबल से हमारा सन्ताप दूर कीजिए। हम आपको अपना गुरु बनाना चाहते हैं, इस निवेदन को स्वीकार करके हमें इस संकट से दूर कीजिए। आपकी ही कृपा

से हम अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर सकते हैं।

इन्द्र के वचनों से विश्वरूप सन्तुष्ट होकर बोले—हे इन्द्र ! मुझे आपकी इच्छा पूरी करना स्वीकार है। मैं उसे हर सम्भव पूर्ण करने का प्रयत्न करूंगा। यह कहकर विश्वरूप देवताओं के पुरोहित बन गए। उन्होंने नारायण कवच के द्वारा विजय प्राप्त कराई। उन्होंने बताया कि इसका उच्चारण दोनों पांवों, घुटनों, जंघाओं, उदर, हृदय, वक्षस्थल, मुख और मस्तक में क्रम पूर्वक करना चाहिए। फिर अंगुलियों और अंगूठों के अग्रभाग में 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' के मंत्र के एक-एक अक्षर से स्तुति करें। उसके पश्चात् 'ॐ विष्णवे नमः' मंत्र के ओंकार को हृदय में, विकार को मूर्धा में, षकार को भौंहों के मध्य, णकार को शिखा में, वकार को नेत्रों में तथा नकार को सभी सन्धियों में न्यास करके 'मः अस्त्राय फट्' कहते हुए दिग्बन्ध करे। ऐसा करने वाला ज्ञानी मंत्रमूर्ति स्वरूप हो जाता है।

हे मुने ! कवच का उपदेश करके विश्वकर्मा विश्वरूप ने कहा—हे सुरराज ! इस नारायण कवच को धारण करने वाला सब प्रकार के भय से मुक्त हो जाता है। वह जिसे देखे अथवा जिस किसी को छू ले, वह भी भय से छूट जाता है।

सूतजी बोले—हे मुने ! इन्द्र ने विश्वकर्मा-पुत्र भगवान् विश्वरूप के निर्देशानुसार महा महिमा वाले उस नारायण कवच को सिद्ध किया और तब दैत्यों को युद्ध की चुनौती दी। तदनन्तर अत्यन्त क्रोध करके दैत्यगण अपनी विशाल सेना के सहित युद्ध में आ डटे। इन्द्र के सेनापतित्व में देवगण भी सामने जाकर भयंकर युद्ध करने लगे। हे मुने ! विश्वरूप के द्वारा प्रदत्त नारायण कवच के प्रभाव से दैत्यों की हार हुई। इस प्रकार विश्वरूप ने दैत्यों से राज्यलक्ष्मी छीनकर देवताओं को दे दी। उनकी विजय में परम कल्याणकारी भगवान् विश्वरूप ही थे। किन्तु इन्द्र ने अपने ऊपर अनुग्रह और उपकार करने वाले विश्वरूप का भी निरादर ही किया। हे मुने ! इन्द्र की प्रीति तभी तक अधिक रहती है, जब तक उनका कार्य पूरा नहीं होता। अपनी इच्छा के विरुद्ध कुछ थोड़ा-सा भी कार्य हो जाए तो वे शीघ्र ही क्रुद्ध होकर सब-कुछ भूल जाते हैं।

शौनकजी ने प्रश्न किया—हे प्रभु ! विश्वकर्मा पुत्र विश्वरूप के उपकार का बदला इन्द्र ने अपकार में क्यों दिया ? उन्होंने इन्द्र को क्या हानि पहुंचाई थी ?

सूतजी बोले—हे शौनकजी ! विश्वरूप के तीन मस्तक थे—एक सोमपानार्थ, दूसरा सुरापानार्थ और तीसरा अन्नाहारार्थ। इन्द्र ने उनके तीनों सिर काट डाले। अब उनके सिर काटने का कारण सुनो—देवगण विश्वरूप से बड़े थे, इसलिए देवताओं का नाम आदरपूर्वक उच्च स्वर से उच्चारण करते हुए यज्ञ भाग देते थे, किन्तु उनकी माता दैत्य-कन्या थी, इसलिए उनका स्नेह दैत्यों के प्रति भी था, इस कारण देवताओं की दृष्टि बचाकर दैत्यों को भी भाग दे दिया करते। उनके इस कपट व्यवहार का पता इन्द्र को लग गया तो उन्होंने अत्यन्त क्रोधित होकर विश्वरूप को इस प्रकार

मार डाला।

हे शौनक ! विश्वरूप के मरने से जो ब्रह्महत्या लगी, इन्द्र उसे एक वर्ष तक सहन करते रहे। फिर वह हत्या उनको अधिक असह्य प्रतीत हुई तो उन्होंने उस हत्या के चार खण्ड किए और एक-एक खण्ड पृथ्वी, जल, वृक्ष और स्त्रियों को बांट दिया। पहला पृथ्वी में जो भूभाग अनुर्वर है, वह ब्रह्म हत्या का ही लक्षण है। दूसरा जल में उठने वाले बुलबुले उस हत्या के ही लक्षण समझो।

तीसरा भी उन वृक्षों में जो गोंद होता है, वह ब्रह्महत्या का ही चिन्ह है। चौथा स्त्रियों में होने वाला रजोधर्म ब्रह्महत्या का ही रूप है।

हे मुने ! हे शौनक ! अपने पुत्र विश्वरूप का इन्द्र द्वारा वध किए जाने पर विश्वकर्मा अत्यन्त क्रोधित हो उठे। उन्होंने इन्द्र को मारने वाले शत्रु की उत्पत्ति के लिए यज्ञ किया। उस यज्ञ से एक विकराल पुरुष उत्पन्न हुआ, उसी पुरुष का नाम वृत्रासुर हुआ, जो देवताओं का घोर शत्रु। उसका वह विकट रूप अत्यन्त सन्तापकारी था।

हे मुने ! उस असुर का उत्पात बढ़ने लगा। यह देखकर सब देवता एकत्र हुए और निश्चय करके उसे मारने को उद्यत हुए। भयंकर शस्त्रास्त्रों से प्रहार करने लगे। किन्तु वृत्रासुर ने देवताओं के सब शस्त्रास्त्र शीघ्र ही निगल लिए और देवताओं को अपनी मुष्टिका से ही चूर्ण-चूर्ण करने लगा। इस प्रकार वृत्रासुर के समक्ष देवताओं की बहुत बड़ी हार हुई।

सूतजी ने कहा—हे शौनक ! वृत्रासुर से पराभव को प्राप्त हुए देवगण इन्द्र सहित भगवान् नारायण की शरण में गए और उन्होंने उस असुर को मारकर अभय प्रदान करने की प्रार्थना की, जिसे सुनकर भगवान् बोले—देवगण ! विश्वकर्मा पुत्र विश्वरूप का वध करना कितना भयानक सिद्ध हुआ, यह तुमने देख लिया है। ब्रह्माजी ने तुमसे कहा था कि विश्वरूप यदि कभी दैत्यों का कुछ पक्षपात भी करें तो सहन कर लेना। किन्तु अपने अभिमान के कारण तुमने उनकी आज्ञा का उल्लंघन करके ब्राह्मण के सिर काट डाले। इससे विश्वकर्मा का क्रोधित होना स्वाभाविक था। अब तुम्हें उस वृत्रासुर का दमन करने के लिए महर्षि दधीचि के पास जाकर उनकी वज्रतुल्य अस्थियां मांगनी होंगी। अब तुम विश्वकर्मा को रुष्ट करने वाला कोई कार्य न करना, वरन् उन्हें भी प्रसन्न करने का प्रयत्न करते रहना।

इन्द्र ने भगवान् की आज्ञा सिर पर धारण की और अपनी भूल पर पश्चाताप पूर्वक नारायण को प्रणाम करके सब देवताओं सहित वहां से प्रस्थान किया। तदुपरान्त इन्द्र ऋषियों को साथ लेकर महर्षि दधीचि के पास गए और उनसे इच्छित प्रार्थना की, जिसे सुनकर दधीचि ने कहा—हे देवेन्द्र ! ज्ञानी पुरुष अपनी कार्यसिद्धि के लिए दूसरों के अहित की नहीं सोचते। किन्तु तुम्हारे जैसे पुरुष सदैव स्वार्थ ही देखते हैं। तुमने अपने मिथ्याभिमान के वश विश्वरूप की हत्या की और अब चाहते

हो कि तुम्हारे अभिमान की रक्षा के लिए, मैं अपना जीवन दे दूं। किन्तु जो पूर्णकाम हैं और परमात्मा की इच्छा को सर्वोपरि मानकर उसी में सन्तुष्ट हैं, उन्हें प्राणों की भी चिन्ता नहीं होती और वे मांगने वाले को कभी निराश भी नहीं करते। मैं तुम्हें अपना शरीर दान करने को प्रस्तुत हूं। क्योंकि इस शरीर को कभी तो नष्ट होना ही है, यदि किसी के कार्य में सहायक होता हुआ नष्ट हो तो यह शरीरधारी के लिए सौभाग्य की ही बात होगी।

सूतजी बोले—हे मुनिवर ! यह कहकर उन परोपकाररत मुनिवर दधीचि ने अपने प्रभु का ध्यान करते हुए देह का त्याग कर दिया और समस्त बन्धनों को काटकर ब्रह्मलोक में लीन हो गए। उस समय वहां पुष्प वर्षा होने लगी, जिसे देखकर सभी का ध्यान करते हुए उनकी स्तुति की। इससे विश्वकर्मा प्रभु ने इन्द्र के प्रति क्रोध त्याग दिया और प्रकट होकर बोले—देवराज ! तुम्हारी स्तुति से मैं प्रसन्न हो गया हूं। बोलो, क्या चाहते हो ? इन्द्र ने प्रार्थना की—प्रभु ! हम अज्ञान में भटक गए थे, उसी से आपका अपराध कर बैठे। इसलिए मुझे क्षमा कर दीजिए।

विश्वकर्मा ने सन्तुष्ट भाव से कहा—देवराज इन्द्र ! क्रोध ही पुरुष का शत्रु है, वह सुबुद्धि का हरण कर लेता है। उसी से हिंसा की भावना उत्पन्न होती है। आज मैं तुम्हें तुम्हारे अपराधों के लिए क्षमा करता हूं।

शौनक ने प्रश्न किया—हे वक्ता श्रेष्ठ सूतजी ! मैंने यह भी सुना है कि विश्वकर्मा की कन्या संज्ञा भगवान् भास्कर को विवाही गई थी। हे सूतजी ! इस उपाख्यान पर प्रकाश डालने की कृपा कीजिए।

सूतजी ने शौनकजी की जिज्ञासा पर प्रसन्न होते हुए कहा—हे मुनीश्वर ! सूर्य संज्ञा विवाह आदि का वृत्तान्त भी सुनने योग्य है। इसलिए वह तुम्हें सुनाता हूं।

# संज्ञा-विवाह

सूतजी बोले—हे शौनक ! विश्वकर्मा की अत्यन्त प्रभावमयी संज्ञा नाम की एक कन्या थी वह कन्या विश्वकर्मा भगवान् ने सूर्य के साथ विवाह दी थी। उस संज्ञा के दो सन्तानें हुईं—एक यम नामक पुत्र और दूसरी यमुना नामक की कन्या थी। संज्ञा के एक अन्य पुत्र हुआ था जो मनु हुआ।

विश्वकर्मा की कन्या संज्ञा सूर्य के बढ़ते हुए तेज को सहन नहीं कर सकी। इसलिए उसने वहां से चले जाना ही उचित समझा। किन्तु वह नहीं चाहती थी कि उसके पति सूर्य को यह पता चले कि संज्ञा कहीं चली गई है। इसलिए उसने अपने शरीर से अपने ही समान एक सुन्दर नारी को उत्पन्न किया, जिसका नाम छाया हुआ।

हे मुने ! वह नारी संज्ञा के शरीर की ही छाया थी, इसीलिए उसका नाम छाया हुआ। उसने उत्पन्न होते ही संज्ञा से कहा कि बताओ, मैं क्या करूं। तुमने मुझे किसलिए उत्पन्न किया है ? उससे संज्ञा ने कहा—हे बहन ! तुम भगवान् सूर्य के लिए उत्पन्न हुई हो, इसलिए सूर्य से ही प्रीति करो। उनके पास जाओ और जो मेरी सन्तान है, उसका माता के ही समान पालन करो। हे छाये ! मेरी सन्तान को माता का अभाव प्रतीत न हो। यह सुनकर छाया ने तथास्तु कहा और वह वहां से सूर्यदेव के पास चली गई।

सूर्य को संज्ञा के चले जाने का पता नहीं था। छाया संज्ञा के समान ही सुन्दर थी, इसलिए वे छाया को संज्ञा ही समझने लगे और उससे पूर्ववत् प्रेम करते रहे। संज्ञा का जो पुत्र मनु कहा गया है, वह छाया से हुआ था। सवर्ण होने के कारण उसका नाम सावर्णि भी हुआ। छाया की अन्य सन्तानों का नाम शनि, तप्ती और विष्टि था। सूर्य भगवान् को तब भी यह पता नहीं चला कि यह स्त्री संज्ञा नहीं है छाया है। हे मुने ! छाया का अधिक स्नेह अपने पुत्र मनु के प्रति था, एक बार यम ने मनु पर अपने दायें पगतल से प्रहार किया। यह देखकर छाया ने यम को शाप दे दिया कि उस पांव में कीड़े पड़ जाएं। इस शाप को सुनकर यम ने भगवान् सूर्य से कहा—हे पितजी ! माता ने मुझे अकारण ही शाप दे दिया है। उनका क्रोध अभी भी शान्त नहीं हुआ है। मैंने अपना अपमान होने के कारण मनु को मारने के लिए पांव दिखाया ही था, फिर भी माता अत्यन्त रोषपूर्वक मुझे शाप देने लगीं, तब मनु ने भी उनको रोकना चाहा, किन्तु वे नहीं मानीं। माता पहले तो कभी क्रोध नहीं करती थीं, अब स्वभाव में ही क्रोध भर गया लगता है।

सूर्यदेव ने कहा—हे पुत्र ! यद्यपि तुमको शाप से कष्ट अवश्य होगा, किन्तु अब मैं इस विषय में कर भी क्या सकता हूं ? हे वत्स ! सब प्रकार के कष्ट शुभ या अशुभ कर्म वृद्धि के द्वारा होते हैं, किन्तु उनका अच्छा या बुरा फल प्राणी को ही भोगना होता है। माता का शाप किसी भी प्रकार दुःखदायी न हो, इसके लिए तुम्हें तपस्या करनी चाहिए। क्योंकि तपस्या से ही शक्ति अर्जित होती है। ब्रह्मा, विष्णु शंकर, इन्द्र आदि तपस्या करके ही अपनी महिमा में प्रतिष्ठित होते हैं। यदि यह भी तपस्या न करते तो अपने-अपने अधिकार से वंचित रह जाते। वस्तुतः यह संसार ही तपस्या का फल है। भगवान् नारायण तप के ही प्रभाव से प्रलयोपरान्त सृष्टि को अपने में लीन रखते हैं ओर सर्ग काल में उसे व्यक्त कर देते हैं।

यह सुनकर यम ने काफी समय तक कठोर तपस्या की। उसके तप को देखकर इन्द्र को भी शंका होने लगी कि संज्ञा का यह पुत्र कहीं इन्द्रासन की इच्छा तो नहीं करता ? उन्होंने ब्रह्माजी के पास जाकर निवेदन किया हे पितामह ! संज्ञापुत्र यम बड़ी कठिन तपस्या में लगा है, आप इसका निवारण कीजिए, अन्यथा यह स्वर्ग के राज्यपद का अधिकारी हो जाएगा।

सूतजी बोले—हे मुने ! इन्द्र की बात सुनकर एक बार तो ब्रह्माजी हंस पड़े। फिर कुछ गम्भीर होकर बोले हे देवराज ! तुम्हारी शंका व्यर्थ है। भगवान् विश्वकर्मा ने तो एक ही इन्द्रलोक का निर्माण किया है। यह सुनकर इन्द्र कुछ लज्जित हुए। इधर ब्रह्माजी तपस्या में निरत यम के पास पहुंचे—वत्स ! तेरी तपस्या से मैं बहुत प्रसन्न हूं, वर मांग। किन्तु यम ने उन्हें प्रणाम तो किया, पर किसी प्रकार का वर नहीं मांगा। ब्रह्माजी उसका हठ योग देखकर अपने स्थान को लौट आए। उधर यम ने और भी कठोर तपस्या आरम्भ की और शिव-शिव रटता हुआ, भगवान् शंकर का ही स्मरण करने लगा।

हे महामते शौनक ! तपस्या का फल तो इच्छानुसार मिलता ही है। भगवान् शंकर ने देखा कि यह भक्त दिन-रात मेरे ही भजन में लगा है, इसलिए मुझे चलना ही होगा। ऐसा विचार करके भगवान् शिव ने यम को दर्शन देकर कहा—हे यम ! मैं प्रसन्न हो गया हूं। तेरी जो इच्छा हो, वही वर मुझसे मांग ले। मैं तुझे सभी कुछ प्रदान करूंगा।

भगवान् शंकर की वरद वाणी सुनकर यम हाथ जोड़े हुए उठ खड़ा हुआ और शिवजी के चरणों में सिर रखकर बोला—प्रभु ! आपके दर्शन हो गए, इसी में सब कुछ प्राप्त हो गया मुझे।

यम की भक्ति देखकर भगवान् शंकर ने प्रसन्न मुद्रा में कहा—वत्स ! मेरे दर्शन दुर्लभ हैं यह निष्फल नहीं रह सकते। तुझे मेरी अनन्य भक्ति तो मिल ही गई। तुझे मैं यमलोक का स्वामी बनाता हूं यमराज व धर्मराज के नाम से जाना जायेगा। सभी प्राणियों के पाप-पुण्य का न्याय तेरे द्वारा ही होगा और तभी उन्हें स्वर्ग व नरक प्राप्त होगा। यह कहकर शिवजी अन्तर्ध्यान हो गए।

# सूर्य-तेज पर विश्वकर्मा का अंकुश

सूतजी ने कहा—हे मुनीन्द्र ! विश्वकर्मा ने सूर्य के तेज के पन्द्रह अंश निकाल दिए, सोलहवां अंश शेष रहने दिया। ऐसा करने से सूर्य की काया अत्यन्त सुन्दर, सौम्य तथा कान्ति से सम्पन्न हो गई। जो पन्द्रह अंश प्रमाण तेज भगवान् विश्वकर्मा ने निकाल दिया था, उससे स्वयं विश्वकर्मा ने ही भगवान् विष्णु के लिए चक्र का कुबेर के लिए पालकी का यमराज के लिए दण्ड का तथा कार्तिकेय के लिए शक्ति का निर्माण किया। इन निर्माणों के अतिरिक्त देवता की विजय हेतु अनेकों अमोघ शस्त्रों का निर्माण किया। विश्वकर्मा का यह कर्म समस्त प्राणियों को तथा देव, ऋषि, मनुष्य आदि को भी सुख देने वाला हुआ।

हे शौनकजी ! सूर्यदेव ने ध्यान योग के द्वारा अपनी पत्नी संज्ञा को देखा, जो घोड़ी के रूप में उन्हीं के लिए नियमपूर्वक तपस्या में लगी थी। यह देखकर सूर्य देव उसके पास पहुंचे। उन्हें बदले रूप में देखकर संज्ञा को अपनी सतीत्व रक्षा की चिन्ता हुई, वह उन्हें नहीं पहचान सकी थी। इसीलिए, अपने बचाव हेतु वह उनके सामने मुख करके खड़ी हो गई। किन्तु सूर्य उस समय अपने उद्रेक को नहीं रोक सके, उन्होंने घोड़ी रूपिणी संज्ञा में तभी अपना तेज छोड़ दिया। जिससे दोनों अश्विनी कुमारों की उत्पत्ति हुई। यह रूपवान् अश्विनी कुमार देवताओं के श्रेष्ठ चिकित्सक हुए।

हे मुने ! फिर उनके मुख से निकले हुए तेज से नासत्य दस्त्र, रेवत की उत्पत्ति हुई। तदुपरान्त सूर्य देव ने संज्ञा से कहा हे-भामिनी ! मैं तेरा पति आदित्य हूं। तेरे पिता भगवान् विश्वकर्मा ने मेरे शरीर को ऐसा आकार दे दिया है। मेरे तेज में भी बहुत कमी आ गई है।

हे मुनिश्रेष्ठ शौनक ! घोड़ी बनी हुई संज्ञा सूर्यदेव के अपूर्व सौम्य, सुन्दर आकार वाले तथा नियंत्रित तेज से सम्पन्न रूप के दर्शन करके बहुत प्रसन्न हुई। अब संज्ञा अपने पूर्व रूप को धारण करके, सूर्यदेव के ही साथ अपने घर लौट आई और सुखपूर्वक रहने लगी।

# युद्ध में दैत्यों की पराजय

सूतजी बोले—हे महामते ! हे शौनकजी ! अब आप भगवान् विश्वकर्मा के विश्व का व्याख्यान सुनो। सतयुग में उनमें विष्णु रूप से हरित्व की विद्यमानता रहती है। देव-लोक में उनका शेषशायी रूप रहता है। मर्त्यलोक में उनका कृष्णत्व प्रसिद्ध है। हे मुने ! ब्रह्मा, इन्द्र, चन्द्रमा, धर्मराज, शुक्र, बृहस्पति आदि भी उन्हीं के स्वरूप हैं। वे ही अदिति के उदर से इन्द्र के अनुज रूप में उत्पन्न हुए थे।

हे मुने ! भगवान् विश्वकर्मा ने देवों की सदा सहायता की, उन्हीं की कृपा से विजय प्राप्त कर सके। जब उनके स्थल सब नष्ट हो गए तब उन्होंने सब लोकों की वहां-वहां के अनुरूप रचना की। स्वर्गलोक, वरुण लोक, धनेश्वर का लोक, सूर्यलोक, चन्द्रलोक यहां तक कि ब्रह्मलोक का निर्माण भी उन्हीं ने किया। ऐसा कोई भी लोक नहीं है, जो उनके बनाए बिना बन गया हो।

हे शौनकजी ! देवताओं के ही नहीं, दैत्यों के भी समस्त वैभव विश्वकर्मा की ही कृपा रूप समझो। वे सब उन्होंने विश्वकर्मा प्रभु को प्रसन्न करके ही प्राप्त किए थे। उन प्रभु के लिए न कोई शत्रु है, न कोई मित्र, इसलिए देवता और दैत्य सभी

समान हैं। एक बार के वृत्तान्त के अनुसार दैत्यों की प्रबलता बढ़ गई तब उन्होंने अनायास ही देवता, यक्ष, गन्धर्व, सर्प आदि पर आक्रमण कर दिया। मनुष्यों को तो वे तिनके के समान समझते ही थे, जिससे कि वे देवता पर विजय प्राप्त कर तीनों लोकों पर अपना राज्य स्थापित कर सकें। वे मायावी अत्यन्त अहंकारी और बल से सम्पन्न थे, इस प्रकार साहस में अधिक वृद्धि हो गई, तब देवताओं को मारना आरम्भ किया। वे दैत्यों की मार से बुरी तरह व्याकुल होकर इधर-उधर भागने लगे।

हे मुने ! देवताओं को भागने में कई कठिनाई हुई। अन्धकार के कारण कहीं कुछ दिखाई नहीं दे रहा था। मार्ग भी कहीं दिखाई नहीं देता था। भागे हुए देवगण सोचने लगे कि हम कहां आ गए ? कैसे प्राण रक्षा करें ? उन्होंने वहीं से रहकर भगवान् श्री विष्णु की स्तुति की—हे दैत्यों का संहार करने वाले परमेश्वर ! हम आपके भक्त इस ओर संकट में फंस गए हैं, उसमें से हमें निकालिए। उनकी पुकार सुनकर भगवान् विष्णु ने प्रकट होकर कहा—देवताओ ! तुमने मेरा स्मरण किया है, इसलिए इस संकट से भी रक्षा करूंगा। विश्वकर्मा देव से भी प्रार्थना करो कि वे तुम्हारे लिए मार्ग खोल दें। मैं दैत्यों का पराभव अवश्य कर दूंगा।

जब भगवान् श्री नारायण अन्तर्ध्यान हो गए। तब देवताओं ने भगवान् विश्वकर्मा की स्तुति की। वे भगवान् तुरन्त प्रकट हुए। विश्वकर्मा ने उनसे कहा—मैं तुम्हारे लिए मार्ग बनाए देता हूं। देखो, उस पर्वत में मार्ग खुल गया है, तुम उधर से जहां जाना चाहो, चले जाओ। और भी, जब तुम्हें सहायता की आवश्यकता होगी, करूंगा। यह कहकर विश्वकर्मा भी अन्तर्ध्यान हो गए।

हे शौनक ! इसके पश्चात् देवताओं ने साहस करके दैत्यों का सामना किया। दैत्यों को तो अपनी प्रबलता का विश्वास था ही, अब दोनों ओर के वीरों में भयंकर युद्ध होने लगा। इस प्रकार उस अद्भुत युद्ध में अनगिनती देवता और दैत्य मारे गये। अन्त में विजय दैत्यों की ही रही।

बहुत-से देवता प्राणहीन पड़े थे, बहुत-से मूर्छित और बहुत-से भाग खड़े हुए। यह देखकर देवराज इन्द्र ने पुनः देवसेना एकत्रित की और दैत्यों पर आक्रमण कर दिया। समूह के द्वारा जो अन्धकार किया, उसके कारण यह पता करना असम्भव हो गया कि कौन दैत्य है, कौन देवता है। इस प्रकार इन्द्र की माया से दैत्य विमोहित हो गए अक्षम सिद्ध हुए।

हे मुने ! दैत्यों की ऐसी दशा देखकर, उनमें से प्रमुख दैत्यों ने मय दानव से सहायता की पुनः प्रार्थना की, तो उनसे अपने पुत्र क्रौंच द्वारा निर्मित मायामय पर्वतास्त्र का प्रयोग किया। वह अस्त्र अत्यन्त अद्भुत और विकट था।

हे मुने ! पर्वतास्त्र की मार से पृथ्वी भी उन शिलाखण्डों की वर्षा से स्थान-स्थान पर खुद गई और उसमें असंख्य गड्ढे बन गए। कहीं भी समतलता दिखाई नहीं देती थी। रणक्षेत्र की भी यही दशा थी, जिससे देवगण भी अत्यन्त व्यथित हो उठे। कुछ

देवता शिलाखण्डों की मार से क्षत-विक्षत हो गए, कुछ वृक्षों के नीचे दब गए और उनके अंग-भंग हो गए। देवताओं में कोई भी तो ऐसा नहीं था जो बच गया हो। उन सभी में अत्यन्त निराशा छा गई। उन्होंने सोच लिया कि मरना तो है ही, फिर क्यों न वीरतापूर्वक युद्ध किया जाए ? हम क्यों न साहसपूर्वक शत्रुओं का सामना करें ?

सूतजी बोले—हे शौनकजी ! देवताओं ने उस स्थिति में विश्वकर्मा प्रभु की शरण लेना ही श्रेयस्कर समझा। उन पर संकट उपस्थित देखकर प्रभु ने उन्हें सांत्वना दी। नारायण को भी दानव की माया नष्ट करने की प्रेरणा दी। भगवान् विष्णु ने तुरन्त ही वायु और अग्नि को उस माया की वृद्धि रोकने का संकेत किया। तब से वायु और अग्नि दोनों से माया का ह्रास होने से दैत्य सेना नष्ट होने लगी।

इस प्रकार दैत्य सेना बुरी तरह पराजित हुई। हे मुने ! दैत्यों की इस पराजय से संसार हर्षित हो गया। इस प्रकार अधर्म कर्म का विनाश होने पर, धर्ममयी प्रतिष्ठा में वृद्धि हो गई। सूर्य और चन्द्रमा अपनी-अपनी स्वाभाविक गति से चलने लगे। देवताओं को यज्ञ-भाग पूर्ववत् प्राप्त होने लगा।

# प्रभु भक्त ध्रुव

सूतजी ने कहा—हे शौनकादि ऋषियो ! अब मैं नारायण भक्त ध्रुव के विषय में आपको कहता हूं। उत्तानपाद की दो रानियां थीं, जिनमें से, सुरुचि नामक पत्नी से उत्तम नामक पुत्र और सुनीति नाम की रानी से ध्रुव नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई, यह भी बता चुका हूं। इनमें जो ध्रुव हुआ, वह भगवान् का परम भक्त था।

प्रभु की सत्ता में विश्वास करता था, उन्हीं को विश्व रूप कर्म करने वाला, उसका पालक तथा संहार करने वाला मानता था। ध्रुव को सत्य और शुभ कर्म में ही सदा विश्वास था, वह सदा अपकर्म से बचता था। किन्तु राजा का रानी सुनीति के प्रति विशेष प्रेम नहीं रहा था, इसलिए वह ध्रुव के प्रति भी अधिक स्नेह नहीं रखते थे। उनकी दूसरी रानी सुरुचि अपनी सौत और उसके बालक ध्रुव के प्रति द्वेष-भाव रखती थी और चाहती थी कि राजा भी उनसे अधिक सम्पर्क न रखें। सुरुचि में अधिक आसक्ति होने के कारण राजा भी ध्रुव और उसकी माता की सदैव उपेक्षा करते रहते थे। एक दिन ध्रुव अपने पिता के पास जाकर उनकी गोदी में बैठने को हुआ। उसी समय सुरुचि ने अपने पुत्र उत्तम को राजा की गोद में बैठाकर, ध्रुव को झिड़क दिया और कहा कि महाराज की गोदी में बैठने का अधिकार तो मेरे पुत्र को ही है। विमाता की ऐसी तिरस्कार युक्त बात सुनकर ध्रुव की आंखों में आंसू आ गए और

रोते हुए अपनी माता के पास पहुंचे। माता के पूछने पर उन्होंने विमाता द्वारा कहे हुए झिड़की युक्त वचनों और पिता द्वारा गोद में न बैठाने सम्बन्धी पूरा वृत्तान्त उसे सुना दिया। इस पर माता ने उसे समझाया—हे वत्स ! यह सच है तू दुःखी है। पर शायद यही हमारा भाग्य है, प्रभु की इच्छा है ऐसा स्वीकार करना ही उचित है। फिर भी यदि तेरा मन खिन्न हो रहा है, तो शान्त रहकर सभी फल प्राप्त कराने वाले पुण्यों का संचय और समस्त प्राणियों का हित साधक तथा अधिक पुण्यात्मा बन। तू उस अनित्व राज पद में मन न लगाकर सभी कामनाएं पूर्ण करने वाले भगवान् में मन लगा। उत्तम, यद्यपि विमाता से उत्पन्न है तो भी है तो तेरा भाई ही। यदि राजा का स्नेह उसी पर है तो उसी को राज पद प्राप्त करने दे।

हे मुने ! माता की बात सुनकर ध्रुव ने कहा—माता ! तुम ठीक कहती हो, उत्तम और उसकी माता का पुण्य अधिक रहा होगा, तभी उन्हें ऐसा अधिक सम्मान मिल रहा है। यदि उत्तम को राज्य मिलना है तो उसी को मिले। मैं किसी दूसरे द्वारा चाहे गए पद की कामना नहीं करता।

हे माता ! मुझे आपने जो मार्ग दिखाया है, उसी पर चलकर सर्वकामनाओं को देने वाले भगवान् श्री नारायण की ही भक्ति करूंगा। मेरा मन उन्हीं के चरण में लगना चाहता है। एकमात्र वही एक पद है, जो सभी को प्राप्त नहीं हो पाता।

श्री सूतजी ने कहा—हे शौनक ! ऐसा निवेदन करके ध्रुव राजभवन से निकले और धीरे-धीरे वनोपवनों को पार करते हुए एक ऐसे स्थान पर पहुंचे, जहां कृष्ण भक्त कुछ तेजस्वी मुनिगण तप किया करते थे। ध्रुव ने उन्हें देखकर, उनके चरणों में प्रणाम करके अपना परिचय देकर कहा—हे महात्मन् ! मेरे पिता द्वारा अस्वीकार किए जाने के कारण आत्म-ग्लानि वश इस वन में आया हूं। मैं अब तपस्या करना चाहता हूं। यह सुनकर एक मुनीश्वर बोले—हे राजकुमार ! अभी तो तेरी आयु बहुत छोटी है, तपस्या के योग्य नहीं है। उधर तेरे प्रतापी पिता अभी विद्यमान हैं, उनके रहते हुए तुझे किसी प्रकार की चिन्ता भी नहीं होनी चाहिए। पिता कितना भी रुष्ट या हृदयहीन हो, पुत्र की उपेक्षा करता हो, तो भी उसके साथ अधिक अन्याय नहीं करेगा।

हे शौनकजी ! ध्रुव ने निवेदन किया—हे ब्रह्मन् ! आपका कथन यद्यपि यथार्थ है, किन्तु अब मुझे वैभव और सुख भोग से विरक्ति हो गई है, मेरा मन भगवान् के चरणों की सेवा करने के लिए उत्सुक है। इसलिए हे कृपानिधान, सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले प्रभु हरि मुझपर कृपा करें, ऐसा कोई उपाय बताएं।

हे महामुने ! वे ऋषिश्रेष्ठ मरीचि थे। उन्होंने ध्रुव को पहले तो बहुत समझाया, किन्तु जब ध्रुव किसी प्रकार नहीं माने तो बोले—हे बालक ! यदि तूने तपस्या का ही निश्चय कर लिया है तो भगवान् विष्णु की ही भक्ति कर। प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त में उठकर दैनिक कर्म, स्नानादि से निवृत्त होकर उनकी आराधना किया कर। जितने

समय कर सके, उतने ही समय कर, ऐसा कोई बन्धन नहीं है कि कितना समय, किस प्रकार व्यतीत किया जाए। आहार के लिए कन्द, मूल, फल आदि जितना, जो कुछ मिल जाए उसी में सन्तुष्ट होना, भक्ति का प्रथम उपचार है। हे मुने ! यह भी कहा कि किसी प्रकार की कठिनाई उपस्थित हो तो हम तो यहां हैं ही, तेरी पूरी सहायता करेंगे।

उसके पश्चात् ऋषिश्रेष्ठ ने ध्रुव को कहा—वत्स तेरे लिए 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' मंत्र का जप ही उपयुक्त है। भगवान् में मन लगाए रखना और उन्हें पूर्ण समर्पण करना ही उनकी भक्ति का लक्षण है। हे बालक ! भगवान् नारायण तो भक्त से पूर्ण समर्पण चाहते हैं, जब वे प्रसन्न हो जाते हैं, तब भक्त को उसकी इच्छानुसार सभी कुछ दे देते हैं। यहां तक कि स्वर्ग और मोक्ष भी प्रदान कर देते हैं। इसलिए हे वत्स ! तू उन्हीं भगवान् नारायण की शरण में अपना ध्यान लगा। प्रभु भक्त ध्रुव ने भगवान् विष्णुजी की उपासना आरम्भ की। वे हर समय भगवान् के स्मरण और ध्यान में लगे रहते। उन्होंने अन्न और जल की भी चिन्ता छोड़ दी थी। चलते, बैठते, उठते, सोते, सब समय 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' जाप करते रहते।

हे शौनकजी ! एकाग्र चित्त से ध्यान करते रहने से ध्रुव के हृदय में सब भक्तों के हृदय में निवास करने वाले भगवान् श्री नारायण प्रकट हुए। किन्तु ऐसा होने पर सर्वभूतों का भार धारण करने वाली पृथ्वी उनका भार धारण करने में असमर्थ-सी हो गई। इससे उसकी स्थिरता विचलित होने लगी। पर्वत और नदियां भी अपनी-अपनी सतह छोड़ने लगे। उधर स्वर्ग में भी हलचल मची थी। इन्द्र सोचने लगे कि यह मनुष्य बालक ऐसी घोर तपस्या करके कहीं इन्द्रासन का अधिकारी न हो जाए। इसलिए उनकी आज्ञा से कुष्माण्ड नामक देवगण विकराल रूप धारण करके ध्रुव को विचलित करने लगे। हे मुने ! उस प्रकार की माया का ध्रुव पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा, वरन् वे निश्चल भाव से भगवान् की भक्ति में ही लीन रहे।

हे शौनकजी ! अब उन देवताओं के समक्ष कोई उपाय नहीं रहा, इसलिए भगवान् नारायण की शरण में पहुंचकर प्रार्थना करने लगे—हे प्रभु ! जगदीश्वर ! बालक ध्रुव की कठिन तपस्या हमारे लिए अत्यन्त चिन्ता का विषय हो गई है। कहीं वह इन्द्रासन के लिए तो लालायित नहीं है ? हे नाथ ! कृपा करके उसे तप करने से रोकिए। हे जनार्दन ! आप ही उसके निवारण में समर्थ हैं।

श्री नारायण ने कहा—हे देवगण ! तुम चिन्तित क्यों हो रहे हो ? जब कोई कठिन तपस्या करता है, तुम उसकी निवृत्ति में लग जाते हो। यह क्यों नहीं समझते कि इन्द्रासन की लालसा सभी नहीं करते। फिर मेरा भक्त तो इन्द्रासन को तुच्छ ही समझता है। वह कभी किसी प्रकार का वैभव या सुख नहीं चाहता। उसका सुख तो मेरी रण में ही निहित है। हे देवराज ! बालक ध्रुव मेरा परमभक्त है, उसकी तपश्चर्या भी पूर्ण हो चुकी है। मैं उसे उसका इच्छित फल दूंगा।

भगवान् को प्रणाम करके, देवगण वहां से चले गए। भगवान् विष्णु ने ध्रुव को अपने अद्भुत स्वरूप में, चारों भुजाओं में शंख, चक्र, गदा पद्म धारण किए हुए दर्शन देकर कहा—हे पुत्र ! मैं तेरे तप से प्रसन्न होकर वर देने की इच्छा से आ गया हूं। वत्स ! जो तू चाहेगा, वही दूंगा। अपने भक्तों के लिए मैं कुछ भी अदेय नहीं रखता।

हे मुने ! भगवान् की अत्यन्त कोमल वाणी ध्रुव के कानों में पड़ी तो उन्होंने नेत्र खोलकर उनके दर्शन किए। सहसा उनकी परम कृपा हुई देखकर प्रभु चरणों में प्रणाम किया और फिर हाथ जोड़कर वन्दना करते हुए बोले—हे परमेश्वर ! हे नारायण ! आपने कृपापूर्वक दर्शन दिए, मैं कितना भाग्यवान हूं। आप नारायण के दर्शन का सौभाग्य बड़े-बड़े ऋषि-मुनि के लिए भी प्रायः नहीं मिल पाता। हे नाथ ! ब्रह्माजी और शंकर भगवान् भी आपका सदैव ध्यान करते रहते हैं। आपने मुझ तुच्छ बालक पर ऐसी कृपा की है। आपने मुझे वर मांगने की आज्ञा की है, किन्तु प्रभु ! आप स्वामी आप सब कुछ जानते हैं तब मैं कुछ निवेदन करूं, यह तो मेरी धृष्टता ही होगी। फिर भी हे प्रभु ! मैं आपसे एक वर तो आपकी नित्य भक्ति का मांगता हूं। आप मुझे अपने समीप सेवकों और भक्तों में ही रखें और सदैव मुझ पर प्रसन्न रहें तथा मुझे आपके निकट सर्वश्रेष्ठ स्थान की प्राप्ति हो। हे प्रभु ! आप मेरे हृदयगत भावों के अनुरूप, जो चाहें, वही देने की कृपा करें।

भगवान् विष्णु ने कहा—हे भक्त तू अपने हृदयगत भावों को व्यक्त करने में असहाय है। हे वत्स ! तुझे उस सूक्ष्मपद की प्राप्ति शीघ्र होगी, जिसकी प्राप्ति सहज में किसी को भी नहीं हो पाती। हे वत्स ध्रुव ! जिस प्रकाशमान स्थान पर अभी तक कोई भी नहीं पहुंच सका, वहां ग्रह, नक्षत्र, तारागण और ज्योतिष-चक्रों के घूमने की धुरी है तथा उसके चारों ओर ग्रह-मण्डल घूमा करता है। हे पुत्र ! उस स्थान का नाश महाप्रलय में त्रिलोकी का नाश होने पर भी नहीं होता, उस सर्वोत्तम ध्रुवपद को तुझे देता हूं।

हे वत्स ! तेरा पिता तुझे ही राज्य देकर वन में तपस्या करेगा और अब तू छत्तीस सहस्र वर्ष पर्यन्त भूमण्डल का सुखपूर्वक राज्य करता रहेगा। तू मुझ यज्ञस्वरूप का महती दक्षिणा वाले यज्ञों से पूजन करेगा और अन्त में सप्तर्षियों से ऊपर स्थित मेरे पद को प्राप्त करेगा। वहां जो जाता है, वह पुनः आवागमन के चक्र में नहीं पड़ता। हे वत्स ! इस प्रकार तू अपना इच्छित वर पा गया है।

इस प्रकार कहते हुए भगवान् ने अपनी आराधना स्वीकार कर ली और अभय वर देकर अन्तर्ध्यान हो गए, इधर बालक ध्रुव भगवान् के पूजन, दर्शन से अपना अभीष्ट सिद्ध हुआ जानकर अपने नगर को लौटे। किन्तु हे मुने ! उसमें कुछ प्रसन्नता या सन्तुष्टि का भाव नहीं था।

मुनेश्वर शौनकजी ने प्रश्न किया—हे सूतजी ! अभी आपने कहा कि ध्रुव के मन में भगवान् के दर्शन करके अभीष्ट वर प्राप्त करके भी अधिक प्रसन्नता नहीं हुई,

इसका क्या कारण है ? कृपया इसे समझाने का कष्ट करें।

सूतजी ने कहा—हे शौनकजी ! जब मनुष्य के मन में किसी प्रकार भी द्वेष या ईर्ष्या का भाव रहता है, तब वह सब कुछ प्राप्त कर लेने पर भी पूर्ण रूप से सन्तुष्ट नहीं हो पाता। ध्रुव भी अपनी विमाता द्वारा ईर्ष्या-द्वेष के शिकार हो रहे थे, उसका कुप्रभाव उनके मन से गया नहीं था, क्योंकि विमाता के दुर्वचन रूपी बाणों ने उनके मन को दुःख दिया था। इसी कारण वह मुक्ति नहीं मांग सके। वरन् उसके उन्हीं वचनों का स्मरण करते रहने के हृदयगत भाव जानकर ही भगवान् ने उन्हें भूमण्डल राज्य दिया।

हे शौनकजी ! भगवान् के अन्तर्ध्यान होने पर ध्रुव की चेतना जागी। अब वे सोचने लगे कि भगवान् विष्णु के दर्शनों का सौभाग्य बड़े-बड़े योगीश्वरों और महात्माओं को सहस्त्रों वर्षों तक तपस्या पर भी नहीं मिलता, वह मुझे छः मास में ही प्राप्त हो गया। किन्तु शोक का विषय है कि अपनी कुमति के वश में पड़कर मैंने मुक्ति के स्वामी की कृपा प्राप्त करके भी मुक्ति नहीं मांगी।

इस प्रकार सोचते हुए ध्रुवजी अपने गृहद्वार पर पहुंचे। राजा ने उनका आगमन सुना तो पहले तो विश्वास ही नहीं हुआ। किन्तु आने से पूर्व देवर्षि नारद ने उनको भगवान् के दर्शन मिलने और वर प्राप्त होने का वृत्तान्त सुना दिया था। उसे सुनकर राजा को अत्यन्त आश्चर्य हुआ।

हे शौनक राजा उत्तानपाद ने ध्रुव को सत्कारपूर्वक भीतर बुलाया। राजा के मन में भोगों से विरक्ति हो गई और उन्होंने राज्य-भार ध्रुवजी को सौंपकर तपस्या हेतु वन-मार्ग का अवलम्बन किया। तदुपरान्त ध्रुव को पता चला कि उनके भाई उत्तम को यक्षों ने मारा था। इस कारण उनको यक्षों के प्रति क्रोध उत्पन्न हुआ और उन्होंने भाई की मृत्यु का प्रतिशोध लेने के लिए यक्षों की पुरी पर आक्रमण कर दिया। हे मुने ! यक्षों की उस अलकापुरी में सभी भगवान् शिव के अनुचर थे। यक्षों को युद्ध के लिए यक्षपुरी से बाहर निकलते देखकर ध्रुव भी आगे बढ़े। अब दोनों ओर से सेनाएं भयंकर युद्ध करने लगीं। स्वयं ध्रुव उन यक्षों को अपने बाणों से पीड़ित करने लगे। उस समय उनके सम्मुख सवा लाख से अधिक यक्ष आ गए और वे भी बहुत साहसपूर्वक ध्रुव का सामना करने लगे। किन्तु ध्रुव भी अत्यन्त बलवान् थे। भगवान् के परम भक्त होने के कारण केवल प्रभु की शक्ति में ही उनका विश्वास था।

हे मुने ! उस संग्राम भूमि में ध्रुव ने यक्षों से युद्ध किया, किन्तु यक्ष भी अधिक बलवान थे, उनकी संख्या भी अत्यधिक थी, उन्होंने बाण वर्षा करके ध्रुव को बाणों से ढंक दिया। उस समय ध्रुव का शुभ चाहने वालों में चिन्ता व्याप्त हो गई कि कहीं वह मनु वंश का सूर्य यक्षों के द्वारा मारा न जाए। किन्तु तभी ध्रुव ने अपनी बाण वर्षा द्वारा यक्षों की बाण वर्षा वाले आच्छादन को छिन्न-भिन्न कर दिया और वे बादलों में छिपे सूर्य के बादलों के फटने पर निकल आने के समान प्रत्यक्ष हो गए। उस

युद्ध में यक्षों की बड़ी हानि हुई। यह देखकर यक्षों ने समझ लिया कि ध्रुव पर विजय प्राप्त करना कठिन है। इसलिए वे युद्धस्थल से भागकर अपनी पुरी में जा छिपे। फिर उन्होंने ध्रुव पर माया का प्रयोग किया, किन्तु उन्होंने उसे भी काट दिया और अब वे उन यक्षों को बुरी तरह मारने-काटने लगे। इस प्रकार निर्दोष यक्षों का भीषण संहार देखकर स्वयं प्रजापति मनु ने प्रकट होकर ध्रुव को युद्ध से विरत किया। तब ध्रुव ने क्रोध त्याग दिया और अपने नगर को लौटकर सुखपूर्वक राज्य करने लगे। प्रजाओं का पालन करते हुए अन्त में इस लोक को छोड़कर अपने अक्षय स्थान को गए।

सूतजी से ध्रुव चरित्र का वर्णन सुनने के पश्चात् शौनकजी ने सुकन्या एवं महर्षि च्यवन के विषय में जानने की जिज्ञासा प्रकट की जिसका वृत्तान्त उन्हें अगले वर्णन में बताया।

# सुकन्या-च्यवन विवाह

श्री सूतजी ने कहा—हे शौनकजी ! समस्त मनुष्यों को तथा अपने पिता को भी दुःखित देखकर सुकन्या सोचने लगी कि उन छेदों में कांटा चुभाना ही सम्भवतः इसका कारण हो, तब उसने कहा—हे पिताश्री ! जब मैं वन में जाकर खेल रही थी, तब एक मिट्टी के ढेर में से दो छेद दिखाई दिए। उन छेदों में से ज्योति निकल रही थी, उसे खद्योत समझकर मैंने सुई घुसा दी थी। मुझे पता नहीं था कि यह मिट्टी का ढेर नहीं, साक्षात् महर्षि बैठे हैं और वे छेद नहीं, उन महर्षि की आंखें हैं।

हे शौनकजी ! सुकन्या के वचन सुनकर राजा शर्याति समझ गए कि मेरी पुत्री से अपराध हो गया है। निवारण का क्या उपाय किया जाए ? इस प्रकार सोचते हुए राजा महर्षि च्यवन के पास गए और उन्होंने कष्ट से व्याकुल उन महर्षि को देखकर प्रणाम निवेदन किया। फिर स्तुति करने लगे—हे महामुने ! मेरी कन्या के द्वारा खेल-खेल में ही यह दुष्कर्म हो गया है। हे ब्रह्मन् ! वह कन्या अबोध है यह जान भी नहीं पाई कि मृत्तिका के ढेर के रूप में आप स्वयं विराजमान हैं तथा उसमें दिखाई पड़ने वाले ज्योतिर्मान दोनों छिद्र आपकी आंखें हैं। हे महर्षि ! अनजान, मूर्ख और बाल्यावस्था वाले व्यक्ति महापुरुषों के द्वारा क्षमा योग्य हैं।

महर्षि ने राजा के वचन सुनकर कहा—राजन् ! आपका कथन उचित है, अबोध बालिका का अपराध क्षमा कर देना चाहिए, यह नीति संगत भी है। मैं भी स्वभाव से ही क्रोध-रहित हूं, तुम्हारी कन्या द्वारा सन्तप्त किया जाने पर भी मैंने उसे कोई शाप नहीं दिया है। किन्तु महाराज ! उसके कौतुक से मैं दृष्टिहीन हो गया। अब मैं कैसे कुछ देख सकूंगा ? इस स्थिति में मेरी सेवा कौन करेगा ? हे राजन्

आप उसे क्षमा करने को कहते हो, किन्तु क्षमा तो कर चुका। फिर भी वास्तविक क्षमा तो तभी होगी, वह मेरे साथ रहकर मेरी सेवा करती रहेगी तो मेरी तपस्या निर्विघ्न रूप से चलती रहेगी। उसके इस अपराध के निवारण का यह सरल उपाय मैंने आपको बताया है, अब आप जो ठीक समझें वही करें।

राजा महर्षि के वचन सुनकर कुछ संकोच में पड़े और उन्हें बहुत विचार के पश्चात् उन्हें प्रसन्न करना ही कल्याणकारी प्रतीत हुआ। इस कारण उन्होंने कहा—मुनिनाथ ! आप जो चाहते हैं वही किया जाएगा। मैं उसे विधिपूर्वक आपको देता हूं। यह कहकर राजा ने शुभ मुहूर्त में अपनी पुत्री सुकन्या का विवाह महर्षि च्यवन के साथ कर दिया। महर्षि उसे प्राप्त करके बहुत प्रसन्न हुए। विवाह के पश्चात् कन्या विदा हुई, तब उसने पति की इच्छा जानकर साधारण वस्त्रों द्वारा मुनि-पत्नी का वेश धारण करके अपने पति के साथ प्रसन्नतापूर्वक गई। उसके विवाह से रानी और राजा आदि सभी दुःखित थे। हे महामुने ! विवाह के पश्चात् राजा-रानी उनके आश्रम पर गए तो वल्कल वस्त्र धारण किए तथा मृग चर्म का बिछौना बनाए अपनी कन्या को देखकर मन ही मन व्याकुल हो उठे। उस समय पुत्री सुकन्या ने ही अपनी माता से कहा—हे मातेश्वरी ! आप लोग व्याकुल न हों, मेरे भाग्य में ऐसा ही जीवन लिखा था तब राजभवन में कैसे रहती ? फिर, यहां मेरे पति तपस्वी हैं, उनके पास दिव्य वैभव की क्या कमी होगी। तपस्या का फल अमोघ होता है। इसलिए मेरे प्रति व्यर्थ ही चिन्तित होना है।

हे शौनक जी ! साध्वी सुकन्या के ऐसे वचन सुनकर राजा-रानी को कुछ सांत्वना हुई और वे अपने घर लौट आए। इधर सुकन्या अपने पति की सेवा में तन-मन से लग गई। उसके चित्त में किसी प्रकार का खेद नहीं था, वह अत्यन्त प्रसन्नता के साथ पत्नी-धर्म का निर्वाह करने लगी। अपना सब समय पति की सेवा में ही व्यतीत करती थी। उसे अपने सुख-दुःख की कुछ चिन्ता न थी, पति को किसी प्रकार की असुविधा न हो सके।

सूतजी पुनः बोले—हे शौनकजी ! एक दिन सूर्य के दोनों पुत्र अश्विनीकुमार क्रीड़ा करते हुए महर्षि च्यवन के समीप आ गए। उस समय उन्होंने देखा कि सर्वांग सुन्दरी सुकन्या सरोवर के जल में स्नान करके अपने आश्रम की ओर जा रही है।

हे ऋषिवर ! उस राजकुमारी को देवकन्या के समान अत्यन्त मनोहर अंगों वाली देखकर दोनों अविश्वनीकुमार उससे आकर कहने लगे—हे सुन्दरी ! तुम कुछ क्षण ठहरो, हम जो पूछते हैं, वह बात बताओ। तुम्हारे प्रति हमें कुतूहल हो रहा है। हे कामिनी तुम कौन हो ? किसकी पुत्री और किसकी पत्नी हो ? इस सरोवर पर अकेली ही स्नान करने क्यों आई हो ? हे रूपवती ! चारू नेत्री ! साक्षात् अप्सरा के समान तुम्हारा यौवन अत्यन्त आकर्षक है, इसलिए तुम्हारे विषय में जानने के लिए हम अत्यन्त उत्सुक हो रहे हैं।

अश्विनी कुमारों के वचन सुनकर सुकन्या कुछ लज्जित-सी हो गई। किन्तु उसने संभलकर कहा—मैं राजा शर्याति की पुत्री सुकन्या हूं, महर्षि च्यवन मेरे पति हैं, वे नेत्रहीन वृद्ध तपस्वी हैं। मेरे पिता ने स्वेच्छा से मेरा विवाह इनके साथ कर दिया है। किन्तु मैं उनकी सेवा में प्रेमपूर्वक लगी रहती हुई अत्यन्त प्रसन्न हूं। वे तपोधन भी मेरी सेवा से सदैव सन्तुष्ट रहते हैं।

सुकन्या की बात सुनकर अश्विनीकुमारों ने कहा—हे शोभने ! तुम नवजात कमल जैसे कोमल शरीर वाली और सुन्दर कन्या को तुम्हारे पिता ने उस वृद्ध नेत्रहीन तपस्वी को कैसे दे दिया ? हे मनमोहिनी ! तुम्हारे समान रूपवती नारी तो देवताओं के यहां भी नहीं होगी। हे सुन्दरी ! तुम्हारे सुन्दर शरीर पर यह भगवा वस्त्र तो अच्छे नहीं लगते। इनके स्थान पर तो दिव्य वस्त्राभूषण होने चाहिए। अहो ! उस ब्रह्मा की बुद्धि कैसी कुण्ठित हो गई है जिसने तुम्हें उस बूढ़े अन्ध मुनि के साथ बांध दिया है। हे कोमलांगिनी ! तुम उस अन्धे वृद्ध तपस्वी का परित्याग क्यों नहीं कर देतीं ? तुम्हें किसी अन्य रूपवान् तरुण को अपना पति बना लेना चाहिए।

सूतजी ने कहा—हे महामते ! अश्विनीकुमारों की बात सुकन्या को बहुत अनुचित लगी। हे देव पुरुषो ! आप किसी सती साध्वी नारी को इस प्रकार का उपदेश देने वाले कौन हैं ? पहिले आप अपना परिचय दीजिए। अश्विनीकुमारों ने कहा—हम भगवान् भास्कर के पुत्र अश्विनीकुमार हैं। क्रीड़ावश ही इस आश्रम में आ गए और तुम्हारे अत्यन्त रूप से आकर्षित होकर ही तुम्हारे विषय में जानने की जिज्ञासा होने लगी। तुम्हारी ऐसी दशा पर हमें दया आती है। संसार में सभी निर्णय सोच-समझकर लेने चाहिए। यही नीति सर्वमान्य है।

सुकन्या ने यह सुनकर क्रोधित स्वर में बोली—अहो, आप भगवान् सूर्य के पुत्र हैं सर्वज्ञ और देवताओं में श्रेष्ठ होते हुए भी ऐसी दुराचारी भावना रखते हो। मेरे द्वारा महर्षि का अपराध हुआ, मैं उनकी आंखों में कांटा चुभ बैठी, मेरे अपराध से ही उनकी नेत्र ज्योति नष्ट हो गई। इसलिए उस अपराध के निवारणार्थ मेरे पिता ने स्वेच्छा से मुझे इनको अर्पण कर दिया। मैं इनकी पत्नी होकर सुखी हूं, और स्वेच्छा से ही इनकी सेवा करती हूं। मैं अपने पतिव्रत धर्म रूपी कर्तव्य-पालन में अत्यन्त आनन्द का अनुभव करती हूं, किन्तु आप सबके साक्षी भगवान् भास्कर के सुपुत्र होकर मुझे कुमार्ग पर चलने का उपदेश दे रहे हैं, क्या यह सब आपको शोभा देता है। आप कृपा करके तुरन्त यहां से चले जाइए। यदि आपने अब एक भी शब्द मेरे पति के विरुद्ध कहा तो मैं आपको शाप दे दूंगी।

हे शौनकजी ! सुकन्या के दृढ़ निश्चय को सुनकर अश्विनीकुमारों को बहुत आश्चर्य हुआ। उन्हें किसी पतिव्रता नारी की ऐसी शक्ति का अनुमान नहीं था। उधर महर्षि च्यवन के अत्यन्त तपोनिष्ठ होने की बात जानकर भी वे कुछ भयभीत हो गए। क्योंकि उन्होंने तपस्वी ऋषि-मुनियों के शाप सत्य होने के विषय में सुन रखा था।

अतः उन्होंने सुकन्या से कहा—हे देवी ! हे सुन्दर अंगों वाली मोहिनी ! तुम्हें अपने पति धर्म में तत्पर देखकर हम दोनों अत्यन्त प्रसन्न हो रहे हैं। तुम्हारी परीक्षा के लिए ही हमने ये सब बातें कही थीं। तुम हमसे इच्छित वर मांग लो। यदि तुम चाहो तो हम तुम्हारे पति को यौवन व दृष्टि पुनः वापस दे सकते हैं। किन्तु इसके लिए तुम्हें यह वचन देना होगा कि जब तुम्हारे पति रूपवान, तरुण और दृष्टि से सम्पन्न हो जाएं, तब हम तीनों में से, स्वेच्छा पूर्वक किसी एक को पति रूप में वरण कर लोगी।

सूतजी बोले—सुकन्या ने कहा—हे देवपुत्र ! आप यहीं ठहरें, मैं अपने पति से परामर्श करके अभी आती हूं। तभी सुकन्या ने तुरन्त महर्षि के पास जाकर कहा—हे स्वामिन् ! आपके आश्रम के निकट दिव्य देहधारी सूर्य पुत्र अश्विनीकुमार खड़े हैं। वे अकेली और सर्वांग सुन्दरी देखकर मुझ पर आसक्त हो गए। जब मैंने उन्हें शाप देने का भय दिखाया तो वे बोले कि हम तुम्हारे पति को दिव्य शरीर और नव यौवन से सम्पन्न बना देंगे। उनकी आंखों की ज्योति भी आ जाएगी, किन्तु इसके साथ वे यह वचन चाहते हैं कि जब आपको तरुणाई और दर्शन शक्ति प्राप्त हो जाए, तब मैं तीनों में से एक किसी को पुनः पति रूप में वरण करूं। हे प्रभु ! मैं यह पूछती हूं कि इस संकट काल में मेरा क्या कर्त्तव्य है ?

महर्षि च्यवन पत्नी की शंका सुनकर बोले—हे प्रिये ! तुम सब प्रकार का संशय छोड़ दो और किसी प्रकार अश्विनीकुमारों को यहां लिवा लाओ। इससे अवश्य ही हमारा मंगल होगा। पति की आज्ञा पाकर सुकन्या अश्विनीकुमारों के पास जाकर बोली—हे सूर्यपुत्रों ! मुझे आपके वचन स्वीकार हैं। आप वह कार्य करने के लिए आश्रम में चलें। यह सुनकर दोनों अश्विनीकुमार आश्रम में चले आए और महर्षि को एक सरोवर में स्नान करने के लिए कहा। यह सुनकर महर्षि च्यवन तुरन्त ही सरोवर में प्रविष्ट हो गए। तभी दोनों अश्विनीकुमार भी सरोवर के जल में प्रवेश कर गए। कुछ समय पश्चात् ही उस सरोवर के जल से तीनों बाहर आ गए। किन्तु तीनों ही एक समान रूप वाले थे। इस कारण कोई भी यह पहचानने में समर्थ नहीं हो सकता था कि उनमें महर्षि कौन हैं और अश्विनीकुमार कौन से ? उन्हें देखकर सुकन्या भी हैरान हो गई थी। तभी उन तीनों ने एक साथ ही सुकन्या से कहा था—हे शोभने ! हे रूप सुन्दरी ! अब हम तीनों में से जिसे चाहो, अपने वरण रूप में वरण कर लो।

हे महामते ! उनके वचन सुनकर सुकन्या ने उधर देखा। किन्तु समान आयु, समान रूप और समान आकृति देखकर बहुत ही असमंजस में पड़ गई। अपने पति को न पहचान सकने के कारण अत्यन्त चिन्तित हुई सोचने लगी कि अब किसे वरण करूं ? यह कैसी विकट स्थिति उत्पन्न हो गई ? अहो, इन देवताओं का कैसा मायाजाल है ? मैं अपने पति के अतिरिक्त अन्य किसी को कदापि वरण नहीं कर सकती। इससे तो मृत्यु की गोद में जाना ही अच्छा है।

हे मुने ! राजकुमारी सुकन्या ऐसा सोचकर भगवान् को ध्यान करने लगी। उसने विनती की—हे प्रभु ! मुझे इस घोर संकट से छुटकारा दें। मेरी रक्षा कीजिए नाथ ! हे विश्वेश्वर ! मैं पतिव्रता स्त्री अन्य पुरुष को कैसे वरण कर सकती हूं ? आप मुझे उनकी शीघ्र ही पहचान कराइए। कहीं ऐसा न हो कि मेरा धर्म नष्ट हो जाए। हे परमेश्वर ! आप तो स्वयं ही धर्म रक्षक हैं। आप मुझ अभागिन पर तुरन्त कृपा कीजिए।

हे शौनकजी ! सुकन्या इस प्रकार भगवान् से प्रार्थना कर रही थी, उधर वे तीनों एक साथ पुनः बोले—सुन्दरी ! शीघ्रता करो। यह सुनकर वह उन तीनों की ओर देखने लगी। प्रभु कृपा से उसे ज्ञान प्राप्त हो गया। जिसके द्वारा वह अपने पति को पहचानने में सफल हुई और उसने अविलम्ब महर्षि च्यवन को ही पति रूप में पुनः वरण कर लिया। उसके ऐसा करने से अश्विनीकुमार उसके पतिव्रत धर्म से प्रभावित और प्रसन्न हो गए। उन्होंने सुकन्या को सदैव सुख-सौभाग्य से सम्पन्न रहने का वर दिया।

तभी महर्षि ने उनसे प्रार्थना की—हे देवपुत्र ! आपने मेरा अत्यन्त उपकार किया है। मुझे यह नवीन यौवन प्रदान किया है। आपके इस परम हितकर कर्म से उपकृत हुआ मैं आपको महाराज शर्याति के यज्ञ में सोमपान का अधिकारी बनाऊंगा। महर्षि च्यवन के वचनों से प्रसन्न हुए अश्विनीकुमार वहां से अपने लोक को गए। इधर महर्षि अपनी रूप-यौवन से सम्पन्न अत्यन्त सुन्दर पत्नी के साथ सुखपूर्वक विहार करने लगे। सुकन्या के पतिव्रत धर्म पालन के कारण महर्षि को नवीन शरीर, तरुणावस्था और नेत्र ज्योति की प्राप्ति हुई थी, इसलिए वे उसका अत्यधिक सम्मान करने लगे। इस समय उनके सुख-सौभाग्य में इतनी वृद्धि से सभी को ईर्ष्या हो सकती थी, किन्तु पति-पत्नी दोनों के सौम्य स्वभाव के कारण आतिथ्य सत्कार में भी सदा तत्पर रहते।

तत्पश्चात् किसी दिन राजा शर्याति सुकन्या से मिलने के लिए महर्षि च्यवन के आश्रम में पहुंचे। किन्तु वहां महर्षि को न देखकर, उनके स्थान पर एक सुन्दर नवयुवक मुनि को अपनी पुत्री के साथ देखा। इससे विस्मित और क्षुब्ध हुए राजा सोचने लगे कि तपोनिष्ठ महर्षि कहां गए ? यह नवयुवक मुनि कौन हैं ? क्या मेरी पुत्री ने अन्य पुरुष को अपना लिया है ? ऐसा सोचते-सोचते राजा अत्यन्त उदास हो गए और सुकन्या से मिले बिना ही लौटने लगे। उसी समय सुकन्या की दृष्टि उन पर पड़ी और वह तुरन्त उनके पास जाकर बोली—हे पिताजी ! आपका आदरपूर्वक स्वागत है। आश्रम से वापस क्यों जा रहे हैं ? राजा ने कुछ उत्तर नहीं दिया, किन्तु नवयुवक मुनि की ओर कुछ शंका व क्रोध से देखने लगे। सुकन्या उनका अभिप्राय समझकर कहने लगी हे पिताश्री ! आप सम्भवतः इन महर्षि की तरुण आयु देखकर संशय में पड़ गए हैं। किन्तु यह कोई अन्य नहीं मेरे वही पतिदेव

महर्षि च्यवन हैं, जिन्हें अश्विनीकुमारों ने कृपापूर्वक यह तरुणावस्था और दर्शनशक्ति प्रदान की है। आप स्वयं इनसे अपने संशय का निवारण कीजिए।

राजा के निवेदन पर महर्षि ने सब घटना यथावत् कह सुनाई और कहने लगे—हे राजन् ! आपकी पुत्री के प्रभाव से ही मुझे तरुणावस्था, नेत्र ज्योति की प्राप्ति हुई है, इसलिए मैं इसके धर्म-सामर्थ्य के समक्ष नत मस्तक हूं। किन्तु महाराज ! अश्विनीकुमारों की इस महती कृपा के प्रतिदान स्वरूप मैंने भी उन्हें आपके द्वारा वहुत दक्षिणा वाले यज्ञ कराने और उन्हें सोमपान् कराने का वचन दिया है।

महर्षि की प्रतिज्ञा पूर्ति के लिए राजा ने अपनी राजधानी में लौटकर एक महायज्ञ का आयोजन किया। उस अवसर पर समागत सुकन्या और उसके पति को देखकर सभी वर्ग हर्ष में भर गया। तभी महर्षि च्यवन ने राजा शर्याति के उस यज्ञ का आरम्भ कराया। हे मुने ! उस यज्ञ में इन्द्रादि सब देवता तो आये ही, दोनों अश्विनीकुमार भी आ गए। तभी महर्षि च्यवन अश्विनीकुमारों को पानार्थ सोमरस देने लगे। यह देखकर देवराज इन्द्र ने उन्हें कहा—कि इन्हें सोमरस मत दीजिए। इस पर महर्षि च्यवन ने कहा—हे सुरराज ! मैंने इन्हें सोमरस पिलाने का वचन दिया है। यह सुनकर इन्द्र ने कहा—मुने ! इन्हें यज्ञों में सोमपान का अधिकार नहीं है। महर्षि ने विनम्र भाव से कहा—हे देवाधिपति ! महाराज शर्याति ने मेरी प्रेरणा से ही यह यज्ञ आरम्भ किया है, क्योंकि अपने उपकार का प्रत्युपकार करने के रूप में इन्हें सोम-पान अवश्य कराऊंगा।

महर्षि के वचन सुनकर इन्द्र ने क्रोधित होकर कहा—तुम कैसी मूर्खता भरी बात करते हो ? फिर भी तुम इन्हें सोमपान कराओगे तो मैं तुम्हारा मस्तक काट दूंगा। इधर महर्षि भी क्रोधित हो गए, बोले—देखता हूं कि कैसे रोकते हो इन्हें सोम पीने से ? और कैसे काटते हो मेरा मस्तक ? हे मुने ! यह सुनकर तो इन्द्र ने क्रोध में आकर महर्षि का वध करने के लिए अमित तेज से सम्पन्न वज्र को मुनि पर चलाया। किन्तु महर्षि ने उस वज्र को अपने तपोबल से वहीं स्तम्भित कर दिया और फिर इन्द्र से प्रतिशोध लेने के लिए कृत्या उत्पन्न की वह भयंकर रूप वाली कृत्या इन्द्र को मारने के लिए दौड़ी। उस कृत्या को इन्द्र की ओर बढ़ती हुई देखकर सभी देवता भयभीत हो गए। इन्द्र ने कृत्या पर वज्र प्रहार का विचार किया। किन्तु महर्षि ने उनके हाथों सहित वज्र का पहले ही स्तम्भन कर दिया था।

इन्द्र द्वारा अपने प्राण बचाने के उद्देश्य से देवगुरु बृहस्पतिजी का स्मरण करने पर बृहस्पति आ गए और इन्द्र का संकट जानकर बोले—देवराज ! महर्षि से ही क्षमा मांगो, वे प्रसन्न होकर स्वयं ही कृत्या को शान्त कर देंगे। तब इन्द्र ने महर्षि च्यवन से क्षमा मांगकर रक्षा की प्रार्थना की तो महर्षि ने उन्हें क्षमा करके कृत्या को मद, स्त्री, मदिरा, आखेट स्थानों में बांट दिया।

हे मुने ! इस प्रकार शर्याति का यज्ञ सम्पन्न हुआ और अश्विनीकुमार सोमपान के अधिकारी हुए।

# इलाचल महिमा

शौनकजी ने प्रश्न किया—बोले—हे सूतजी ! आप जो इलाचल नामक पर्वत की बात कर रहे हो वह इलाचल पर्वत कहां पर है ? यह आप हमें कहिए। परम पिता परमेश्वर ने अपने निवास स्थान के लिए यह पर्वत क्यों पसन्द किया यह भी आप हमें कहिए। प्रभु के निवास से जिस स्थान की महानता अत्यन्त बढ़ गई है ऐसे इलाचल पर्वत का वर्णन सुनने की हमारी तीव्र जिज्ञासा है।

सूतजी बोले—हे ऋषि ! देव विश्वकर्मा की लीलाओं की कोई सीमा नहीं है। किसी भी मनुष्य ने कितने ही पाप किए हों पर सच्चे दिल से जो प्रभु के चरणों में शरण लेता है वह व्यक्ति सभी दु.खों व पाप से मुक्त होता है तथा अनेक उत्तम फल को प्राप्त करता है। प्रभु विश्वकर्मा के निवास के कारण अत्यन्त पवित्र एवं शोभामान इलाचल की महिमा अलौकिक है तथा अनेक आश्चर्यचकित चमत्कारों से पूर्ण है। इस इलाचल की महिमा के विषय में मैं आपको एक वर्णन सुनाता हूं। आप सावधानी पूर्वक सुनिए।

विश्वकर्मा का वंश इस धरा में काफी फैला हुआ था। इनके वंशजों में द्विजदेवा नामक ब्रह्मर्षि उत्पन्न हुए। उन्होंने रहस्यसहित पुराण, उपनिषद, वेद और षड्शास्त्र दर्शन का गहरा अध्ययन किया था। अक्सर इलाचल के विषय में आत्मतत्व को ब्रह्म के साथ जोड़कर समाधि में रहने वाले ब्रह्मर्षि एक बार वन विहार के लिए निकले अचानक मार्ग में एक बड़ के वृक्ष पर से एक जीवात्मा उनके सामने आकर उनके पैरों में गिर पड़ा। त्रिकाल का ज्ञान रखने वाले ब्रह्मर्षि ने इसे खड़ा किया। वह जीवात्मा हाथ जोड़कर बोला—हे ब्रह्मर्षि श्रेष्ठ ! आप अत्यन्त ज्ञानी तपस्वी हो। अपने कुकर्मों के फलस्वरूप मृत्यु के पश्चात् मैं इस प्रेतदशा में आ गया हूं। इस दशा में अनेक कष्ट भोग चुका हूं। मैं बहुत दुःखी हूं। आप जैसे तेजस्वी पुरुष के सिवाय और कोई मेरा उद्धार नहीं कर सकता। अतः मैं आपकी शरण में आया हूं। अतः हे देव ! मुझे इस प्रेतयोनि से मुक्ति दिलायें तथा इस नर्क यातना समान दुःखों से मेरी रक्षा करें।

प्रेत के ऐसे वचन सुनकर दया से भरपूर ब्रह्मर्षि सोचने लगे। फिर तुरन्त उसे वे इलाचल पर ले जाने लगे। वहां प्रभु विश्वकर्मा ने संसार के जीवों के सभी कष्ट दूर करने के लिए विश्वकुंड बनाया था, उसमें उस प्रेत को स्नान कराया। उस

विश्वकुंड में स्नान करते ही प्रेत का प्रेतत्व नष्ट हो गया और उत्तम दैवी स्वरूप को धारण करके वह बाहर आया। बाहर आते ही प्रेत ने ब्रह्मर्षि को प्रणाम किया और कहा--हे करुणानिधान ! आपकी कृपा से मैं फिर से व्यक्ति के रूप में आ गया हूं। मैं एक श्रेष्ठ ब्राह्मण होते हुए अपने दुष्कृत्यों के कारण नर्क समान यातना पाने वाले प्रेतयोनि को प्राप्त हुआ था। पर आपके प्रभाव से आज मैं इस कष्ट से मुक्त हो गया हूं।

ब्रह्मर्षि बोले--हे भाई ! मेरा प्रभाव नहीं है। जिसने मुझे पैदा किया है वह मेरा पिता सारे जगत का पिता है। यह उसी कृपालु देव विश्वकर्मा की कृपा का फल तुझे प्राप्त हुआ है। प्रभु विश्वकर्मा ने समस्त संसार के जीवात्माओं के कष्ट निवारण के लिए इस विश्व कुंड का निर्माण किया है। अतः तू उनके प्रति भक्ति रख और उनका निरन्तर ध्यान कर। परम कृपा के भंडार विराट विश्वकर्मा की भक्ति करने वाले व्यक्ति को कभी कष्ट नहीं झेलना पड़ता तथा वह अनेक यातनाओं और संकटों को पार कर जाता है। इसमें कोई संदेह नहीं है। ऐसा कहकर प्रेत में से मुक्त उस ब्राह्मण को ब्रह्मर्षि ने दिव्य दृष्टि दी तथा प्रभु विश्वकर्मा के साक्षात् दर्शन कराए।

हे शौनकजी ! इसके पश्चात् ब्रह्मर्षि उस ब्राह्मण को लेकर इलाचल की तलहटी में अपने आश्रम में गए। यहां ब्राह्मण का सत्कार हुआ। इतने में प्रभु के अलौकिक चमत्कार से जिसका मन चलायमान हुआ है, वह ब्राह्मण निद्रा में से जैसे जागा हो वैसे ब्रह्मर्षि की ओर देखकर बोलने लगा—हे महान तपस्वी ! मेरे हृदय में हो रही हलचल को खत्म करो। क्योंकि इस हलचल के कारण मेरा मन तर्क-वितर्क के कारण अस्थिर हो जाता है। अतः हे महर्षि ! आप मेरी मनोव्यथा सुनकर योग्यपूर्वक स्पष्टीकरण कीजिए।

ब्रह्मर्षि की आज्ञा मिलते वह कहने लगा हे ब्रह्म श्रेष्ठ ! आपने मुझे विश्वकुंड में स्नान कराया। मेरे सभी दुष्कर्मों का अन्त तभी से हो गया। इसके अतिरिक्त मेरा प्रेतत्व नष्ट नहीं हो सकता था। परन्तु इस कुंड का इतना प्रभाव किस कारण से है ! यह इसकी इतनी महिमा किसने की, इस विषय में मैं असोचनीय अवस्था को प्राप्त हुआ हूं। यह बात जानने के लिए मेरे मन में जिज्ञासा हो रही है। आपको योग्य लगे तो मुझे हलचल से मुक्त करें तथा इस स्थल के माहात्म्य के विषय में मेरा अज्ञान मिटाने की कृपा करें।

ब्राह्मण के वचन सुनकर ब्रह्मर्षि द्विजदेवा बोले—हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! आप ध्यानपूर्वक होकर सुनिए। इस विश्वकुंड में स्नान करने से सभी मनुष्यों के सभी कष्ट दूर होते हैं तथा अनेक प्रकार के रोग व कष्टों से मुक्ति पाते हैं। संसार के सभी प्रकार के उत्तम सुखों को प्राप्त करते हैं। श्रेष्ठ महिमा वाले विश्वकर्मा के प्रसाद से उस मनुष्य का जन्म-मरण का चक्र समाप्त हो जाता है। प्रभु अपनी माया से अनेक लीला करते हैं। प्रभु की सारी लीला मनुष्यों के कल्याण के लिए हैं। उनकी असंख्य

लीलाओं में से एक यह भी है।

हे शौनकजी ! हे विप्रवर्य ! आप जिस कुंड के बारे में पूछ रहे हैं उस कुंड की ही ऐसी महिमा नहीं है। प्रभु ने ऐसे तीन कुंड इस ब्रह्म सृष्टि में बनाए हैं। उन तीनों कुंडों का और इस प्रदेश का भी ऐसा ही माहात्म्य है। दूर रहने वाला व्यक्ति यदि मन से इस स्थल का स्मरण करे और उसके माहात्म्य का श्रवण करे तो मानव के सभी दुःख भाग जाते हैं। सभी प्रकार के सुख मनुष्य के पास आ जाते हैं। हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! इन सब प्रदेशों का माहात्म्य तुझे सुनाता हूं।

हे मुनि श्रेष्ठ ! जब सृष्टि का निर्माण हुआ तब पृथ्वी डोल रही थी उसे स्थिर रखने के लिए प्रभु ने आठ दिशाओं में आठ बड़े-बड़े पर्वत रखे थे। जिनके वजन के कारण पृथ्वी का डोलना रुक गया था। इन पर्वतों में विन्ध्याचल, अर्बुदाचल, हिमाचल, मेरु आदि का समावेश होता है। इन बड़े पर्वतों के अतिरिक्त कई छोटे-छोटे पर्वत भी हैं। जो असंख्य हैं। इसमें से कई समुद्र में हैं, कई पृथ्वी पर हैं। इन छोटे-छोटे पर्वतों में अनेक प्रकार की वनस्पति, उत्तम औषधियां हैं। कीमती पत्थर, धातु तथा रत्नों का खजाना भी कई पर्वतों में है।

हे मुने श्रेष्ठ ! इन पर्वतों में लोहकूट पर्वत था। यह समुद्र में अकेला पर्वत था। समुद्र मंथन के पश्चात् पाताल में से घूमने के लिए पृथ्वी पर आते नाग वापस जाते समय मार्ग भूल जाते थे। इस कारण उन्हें पृथ्वी में छिपकर रहना पड़ता था। कई बार इसी कारण जान का भी खतरा होता था। सभी नागों की ओर से शेष नारायण ने प्रभु के समक्ष अपनी मुसीबतें प्रस्तुत कीं। उनसे छुटकारा दिलाने के लिए प्रभु से प्रार्थना की। तब अपने भक्तों का कल्याण करने वाले विश्वकर्मा ने उनकी मुसीबतें दूर करने की सोची।

प्रभु ने लोहकूट को दिए वरदान का लक्ष्य रखकर शेषनारायण को कहा कि आप सब लोहकूट को उठाकर पाताल के द्वार के पास ले जाओ। ऐसा करने से आपकी मुसीबतों का हल हो जाएगा। यह पर्वत बहुत ऊंचा होने के कारण दूर से आप इसे देख सकोगे। इस तरह मार्ग खोजने में आपको जरा भी परेशानी नहीं होगी।

हे शौनकजी ! प्रभु के वचन सुनकर अनन्त, वासुकी, शेष, कंबल, पद्मनाभ, धृतराष्ट्र, शंखपाल, तक्षक, कालीय आदि नौ प्रकार के अनेक मणिधर नाग एक साथ मिलकर समुद्र के मध्य में रहे लोहकूट पर्वत को उठाकर पाताल के द्वार की ओर गए। मार्ग में जाते हुए नागों के मस्तक पर पड़े मणियों का बार-बार घर्षण होने से लोहे का बना लोहकूट पर्वत सम्पूर्ण सोने का बन गया। सभी नागों ने मिलकर लोहकूट को उठाकर पाताल के द्वार के पास रख दिया। लोहकूट बहुत ऊंचा पर्वत था। नागों के मस्तक पर पड़े मणियों के घर्षण से सोने का बन गया। सोने की काया होने के कारण लोहकूट का नाम हेमकूट पड़ गया। ऐसा होने पर लोहकूट को बहुत आनन्द हुआ। हेमकूट कंचन शरीर धारण करे हेमकूट की एक गुफा में मनुष्य शरीर

में रहने लगा और आनन्द करने लगा।

एक बार उत्तम मनुष्य देह धारण करके हेमकूट स्वयं उपवन में भ्रमण कर रहा था। उसी समय शेषनाग के कुल में उत्पन्न नागकन्या नधदेवी उपवन में पहुंची। वह हेमकूट के रूप पर मोहित हो गई और हेमकूट से विवाह करने की इच्छा प्रकट की। दोनों कुल की सहमति से वे विवाह-सूत्र में बंध गए। तत्पश्चात् वे दोनों हेमकूट की अति रमणीय गुफा में निवास करके आनन्द से समय बिताने लगे। नधदेवी का दूसरा नाम इला था। इला के साथ विवाह करने के बाद हेमकूट इलाचल नाम से प्रसिद्ध हुआ और अति शोभनीय बना।

हे शौनक मुने ! हेमकूट प्रभु का अनन्य भक्त था। प्रभु के दिए वरदान होने के कारण उसकी प्रभु के प्रति भक्ति और भी बढ़ गई थी। आदि नारायण का यज्ञ करना जीवन का मुख्य उद्देश्य था। हेमकूट निरन्तर प्रभु के यज्ञ के लिए तैयार होता था। उस समय पतिपरायण इला भी हेमकूट की सेवा में तैयार रहती तथा प्रभु के यज्ञ के लिए सारी सामग्री इलाचल को तैयार करके देती थी। इला की पतिभक्ति से इलाचल को आनन्द होता था। निरन्तर पति सेवा में तत्पर इला को पति के अनेक कार्यों के लिए बार-बार गुफा से बाहर जाना पड़ता था। एक बार किसी कारणवश गुफा से बाहर निकलते शोभायमान इला को कई राक्षसों ने देखा तो वे उसके रूप-यौवन के शिकार हो गए। ऐसी सुशोभित नितम्ब, उन्नत उरोज वाली रूप सुन्दरी जिसके भीगे हुए खुले केश उसके आधे शरीर पर फैले हुए हैं। ऐसी इला का अपहरण करने का विचार वे करने लगे। ऐसा कई समय तक चलता रहा। ये दुष्ट इला को अनेक प्रकार से तंग करने लगे। भीरु स्त्री दुष्टों की नीयत पहचान गई पर पति को दुःख न पहुंचे इसलिए सारी उलझनें चुपचाप सहने लगी। उसके हृदय में डर था कि ये दुष्ट दैत्य किसी समय मुझे भ्रष्ट करेंगे तो क्या होगा ?

हे मुने श्रेष्ठ ! एक बार उपवन के मार्ग में इला जा रही थी तो नाग कन्या इला को नारदजी के दर्शन हुए। इला ने नारदजी को प्रणाम किया। नारदजी ने इला को आशीर्वाद दिया और इलाचल के हाल-चाल पूछे। बात-बात में इला ने अपनी परेशानी नारदजी को बताई। राक्षसों के भय से मुक्त होने का इलाज पूछा। इला की मनोव्यथा जानकर नारदजी ने उसे विश्वकर्मा प्रभु के बीज मंत्र से प्रभु की आराधना करने के लिए सारी विधि बताई।

हे शौनकजी ! नारदजी के पास से इस प्रकार जिसने मंत्र की दीक्षा ली है ऐसी पतिव्रत परायण इला ने घर वापस आने के बाद अपने स्वामी इलाचल को सारी बातें कहीं तथा स्वयं प्रभु श्री विश्वकर्मा का यज्ञ करने की इच्छा प्रकट की। अपने पति की आज्ञा मिलते ही इला ने नारदजी की बतायी गयी विधि योग्यानुसार की तथा प्रभु का यज्ञ किया। इस प्रकार प्रभु की आराधना करने से अपने रक्षण के लिए स्वयं को निर्भय मानती इला अपने पति इलाचल के साथ आनन्द से अपने दिन बिताने लगी।

हे महामुने ! अपने आपको सभी भय से मुक्त मानती इला निर्भय होकर एक बार उपवन में विहार कर रही थी कि एक राक्षस एकान्त का लाभ उठाकर इला को अपहरण कर ले गया। उस राक्षस का नाम गृध्रमुख था। वह इला को अपने निर्जन विशाल जंगल में निवास स्थान में ले आया। यहां गृध्रमुख की अत्यन्त पवित्र तथा पतिव्रता पत्नी ने उसका अच्छी तरह रक्षण किया। अनेक प्रकार के सुख देने का प्रयास किया। अपने पति गृध्रमुख की उसने काफी आलोचना की। इधर महान दुःखों में पड़ी इला ने अपने बीजमंत्र की आराधना करके समग्र जगत् का कल्याण करने वाले विश्वकर्मा का ध्यान किया। अपने रक्षण के लिए अनेक प्रकार से प्रभु की प्रार्थना की। उसकी प्रार्थना से प्रसन्न प्रभु हंस पर बैठकर तत्काल वहां आए। प्रभु को देखकर सबको आनन्द हुआ। स्त्री की सलाह से जिसकी मति सुधर गई है ऐसे गृध्रमुख भी प्रभु के चरणों में गिर पड़ा। अपने अपराधों की क्षमा मांगने लगा। बार-बार वह और उसकी पत्नी भगवान को साष्टांग प्रणाम करके क्षमा की याचना करने लगे।

हे मुनेश्रेष्ठ ! गृध्रमुख का वध करने के लिए तत्पर वास्तुदेव को रोककर इला की प्रार्थना से प्रसन्न विश्वकर्मा ने गृध्रमुख को अभयदान दिया। इसके बाद थोड़े समय गृध्रमुख के यहां निवास करके प्रभु वास्तु सहित नागकन्या इला को लेकर इलाचल पर आए। इला के वियोग से जिसका चित्त भ्रमित हो गया है तथा आकुल व्याकुल बना है ऐसा इलाचल अपनी पत्नी को वापस आई देखकर हर्षित हुआ तथा प्रभु के चरणों में अपना मस्तक रखकर गद्-गद् कंठ से विश्वकर्मा प्रभु की प्रार्थना करने लगा। प्रभु ने प्रेमपूर्वक उसे उठाकर अनेक प्रकार के उत्तम वरदान देकर उसके मन को शान्त किया।

हे शौनकजी ! इला की आराधना से प्रसन्न प्रभु ने इलाचल को पत्नी सुपुर्द की तथा स्वयं वापस जाने के लिए तैयार हो गए। प्रभु को वापस जाते देखकर प्रभु के विरह की कल्पना मात्र से ही जिनके हृदय भर गए हैं ऐसे इला एवं इलाचल प्रभु के चरणों में गिरकर अश्रुपात करने लगे। फिर इला बोली—हे करुणा निधान ! हे प्रभु ! आज आपने मुझ पर जो कृपा की है वह वर्णन करने के लिए कोई समर्थ नहीं है। हे देव ! इस जंगल में दैत्य मुझे निरंतर तंग करते हैं। आप इस तरह मेरा रक्षण करके चले जाएं यह मुझे बिल्कुल पसन्द नहीं है। अतः मुझ पर दया करके मेरी इच्छा पूर्ण करने की कृपा करें।

हे शौनकजी ! इला के निर्मल वचन सुनकर प्रसन्न विश्वकर्मा ने इलाचल पर निवास करने का फैसला किया। समग्र इलाचल क्षणभर में ही सुन्दर बन गया। प्रभु ने प्राणीमात्र के कल्याण के लिए सूर्यकुंड, चन्द्रकुंड तथा विश्वकुंड नामक तीन कुंड बनाए जिनकी बहुत महिमा है। इस कुंड में स्नान करने से कष्ट, निर्बलता और सभी क्लेश दूर हो जाते हैं। मनुष्य अनेक प्रकार के सुख पाते हैं।

सूतजी ने कहा—हे मुने श्रेष्ठ ! इस प्रकार समग्र माहात्म्य प्रेतत्व पाये हुए या मुक्त हुए ब्राह्मण को द्विजदेवा ने कहा वह मैंने आप सबको सुनाया। इस इलाचल पर्वत पर प्रभु श्री विश्वकर्मा ने निवास किया था जिससे इस पर्वत का महत्व और भी बढ़ गया। मनुष्य को इस जीवन में एक बार इस विश्वकर्मा धाम की यात्रा करनी चाहिए। इस धाम की यात्रा करने से अनेक प्रकार के उत्तम पुण्य तथा अर्थ, धर्म, मोक्ष, काम चार पुरुषार्थों की प्राप्ति होती है। जिसने यह यात्रा की है उसके सभी पाप दूर होते हैं।

हे विप्र ! इस प्रकार आपने मुझसे जो प्रश्न पूछा था। उसका मैंने उत्तर दिया। अब आपको और क्या सुनने की इच्छा है।

# कन्यादान का माहात्म्य

सूतजी बोले—हे शौनकजी ! एक कथा तुम्हें सुनाता हूं जिसमें कन्यादान के माहात्म्य का वर्णन है। बात उस समय की है जब विश्वकर्मा के पुत्र द्विजदेवा के मुख से इलाचल की महिमा सुनकर जिसका मन अति प्रसन्न हुआ है ऐसे ब्राह्मण श्री विश्वकर्मा जी के चरणों में गिर पड़ा। प्रभु की अनेक प्रकार से प्रार्थना की। उसकी प्रार्थना से प्रसन्न प्रभु उस ब्राह्मण के सामने आ गए। वे बोले—हे ब्राह्मण तेरी इस विनम्र प्रार्थना से प्रसन्न मैं तुझे वरदान देने के लिए उत्सुक हूं। अतः तेरे हृदय में जो इच्छा हो वह बता दे।

हे शौनकजी ! प्रभु के दया पूर्ण वचन सुनकर वह ब्राह्मण बोला—हे दया-निधि ! इस विश्व में क्या मांगना और न मांगना, इसका मुझे कुछ भी पता नहीं है। फिर भी मैं इतना जानता हूं कि यदि मनुष्य पुण्य प्राप्त करने वाला कर्म करे तो उस कर्म का उत्तम फल उसे मिलता है। यदि मेरे प्रश्न का आप निवारण करें तो मैं कुछ मांगूं। प्रभु की आज्ञा मिलते ही ब्राह्मण ने पूछा—हे प्रभु ! संसार में अनेक पुण्य के मार्गों में अत्यन्त अक्षय पुण्य का कौन-सा कार्य है ? आप मुझे कृपा करके बताइए। उसके इस प्रश्न के जवाब में प्रभु ने कहा—हे विप्रश्रेष्ठ ! कन्यादान से उत्पन्न होने वाला पुण्य अक्षय होता है तथा कन्यादान करने से व्यक्ति अपनी पहली दस पीढ़ियां तथा आने वाली दस पीढ़ियों सहित उत्तम गति को प्राप्त करता है।

हे मुनिश्रेष्ठ ! प्रभु के ऐसे वचन सुनकर वह ब्राह्मण बोला—हे प्रभु ! यदि ऐसा ही हो तो आप मुझे एक रूप गुण सम्पन्न कन्या दो। जिसका मैं योग्य विधिपूर्वक विवाह करके इस अक्षय फल को प्राप्त कर सकूं। ब्राह्मण की ऐसी इच्छा देखकर प्रभु बोले—हे ब्राह्मण ! तूने विवाह नहीं किया है तो मैं तुझे कन्या कैसे दूं ? अतः विवाह

के लिए योग्य पत्नी मांग ले। ब्राह्मण बोला—हे दीनानाथ ! यदि मैं पत्नी की इच्छा करूं तो मुझे गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना पड़ेगा। एक के बाद एक अनेक संकट आएंगे। मुझे जान-बूझकर ऐसी विडम्बना उत्पन्न नहीं करनी है। आप मुझ पर सचमुच प्रसन्न हुए हो तो ऐसा करो कि मुझे गृहास्थाश्रम भी न करना पड़े और कन्यादान का पुण्य प्राप्त करने के लिए योग्य कन्या भी प्राप्त हो जाए।

हे मुने ! ब्राह्मण के इस प्रकार वचन सुनकर प्रभु ने तथास्तु कहा। फिर प्रभु ने कहा—हे ब्राह्मण ! तू इस विश्वकुंड के किनारे बैठकर मन से नित्य मेरी तपस्या में लीन रह। योग्य ब्राह्मण के साथ विवाह करके अर्थात् कन्या का दान करके तू मेरी इच्छा पूर्ण करना। इस प्रकार उस ब्राह्मण को वरदान देकर प्रभु वहां से चले गए ऐसे ब्राह्मण ने विश्वकुंड के किनारे प्रभु का ध्यान किया तथा प्रभु के दिए गए वरदान के समय की राह देखने लगा।

हे शौनकजी ! एक समय इन्द्र के दरबार में नृत्य करती अप्सरा को एक भयंकर तपस्वी का श्राप लगा था जिसके कारण वह घोड़ी बन गई। विश्वकुंड में स्नान करने के बाद वह स्त्री बन गई थी। उस समय उसके सौंदर्यवान देह को देखकर मोहित सूर्य भगवान का वीर्य स्खलित होने लगा। पृथ्वी पर तेज बूंदें गिरने लगीं जिसमें से एक अत्यन्त सुन्दर कन्या उत्पन्न हुई। यह कन्या रूप गुण दोनों में श्रेष्ठ और मनोहर थी। अपने नजदीक पृथ्वी पर इस प्रकार से उत्पन्न कन्या को देखकर वरदान के प्रभाव को न समझने वाला ब्राह्मण आश्चर्यचकित हो गया।

हे मुने ! उस समय भगवान विश्वकर्मा ने वहां आकर कहा—हे द्विजवर्य ! हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! आप अत्यन्त भाग्यशाली हो। आपकी तपस्या आज पूर्ण हो गई। आपकी तपस्या से मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूं। सूर्य से उत्पन्न इस पुत्री को आप ले जाओ। इस तेजस्वी बालिका का अच्छी तरह पालन-पोषण करो तथा योग्य समय पर कन्या का विधिपूर्वक ब्राह्मण को दान करना। कन्यादान के पुण्य को प्राप्त करने के लिए आपने मुझसे जो मांगा था उस मांग के अनुसार मैंने यह कन्या दी है। कन्यादान का वर्णन आपके लिए अनजान नहीं है पर तेजस्वी बालिका का योग्य ब्राह्मण खोजकर विवाह करना। उसके बाद संसार से विरक्त होकर मेरी शरण में आना।

हे शौनकजी ! प्रभु के अमृतमय वचन सुनकर ब्राह्मण के सभी अंग पुलकित हो गए। हर्षाश्रु से भरे नेत्रों से क्षणभर प्रभु को देखने लगा। तत्पश्चात् धीरे से उठकर प्रभु के चरणों में उसने साष्टांग प्रणाम किया। वेद के उत्तम मंत्र एवं ऋचा से तथा अनेक स्तोत्रों से उसने प्रभु की प्रार्थना की। पूर्ण मनोरथ प्राप्त ब्राह्मण प्रभु की आज्ञा लेकर उस बालिका के साथ अपने घर जाने के लिए इलाचल गया। प्रभु की आज्ञा लेकर निकला वह ब्राह्मण अपनी पुत्री को लेकर काशी नामक अपने नगर गया और वहां रहने लगा। इस तरह पिता-पुत्री आनन्दपूर्वक दिन बिताने लगे। कन्या

दिन-प्रतिदिन बड़ी होने लगी। सूर्यनारायण के तेज से उत्पन्न यह कन्या दिन-पर-दिन रूप और गुण में आगे बढ़ने लगी। कन्या के बुद्धिपूर्वक वचन तथा उत्तम व्यवहार से ब्राह्मण अपना जन्म सफल मानने लगा।

हे महामते ! दिन गुजरते गए और कन्या विवाह की अवस्था तक पहुंच गई। अपनी कन्या को विवाह योग्य देखकर ब्राह्मण उसके लिए अत्यन्त सुन्दर ब्राह्मण खोज लाया। उसके साथ कन्या का उसने वाग्दान दे दिया। तत्पश्चात् कन्यादान के लिए तैयारियां कीं। ब्राह्मण स्वयं जंगल में जाकर आवश्यक लकड़ियां काटकर ले आया तथा उसका मंडप बनाकर उस मंडप को बेल, पत्ते आदि से आच्छादित कर दिया। इस प्रकार अपने आप बनाए लकड़ी के मंडप में उसने उत्तम विधि से अपनी कन्या का दान किया। हृदय की सच्ची भावना से दिए गए दान से प्रभु प्रसन्न हुए और उस समय सबके बीच मंडप में चमत्कार हुआ। सब आश्चर्य चकित रह गए। सारा मंडप स्वर्ण का बन गया तथा बेल, पत्ते आदि पदार्थ कीमती हीरे-मोती के रूप में परिवर्तित हो गए।

हे शौनकजी ! पाप या पुण्य का अतिरेक होता है तब उसका फल मनुष्य को उसी समय मिल जाता है। इस प्रकार इस ब्राह्मण के कन्यादान से प्रसन्न प्रभु ने तुरन्त उसे फल दे दिया। तत्पश्चात् अपनी पुत्री तथा दामाद दोनों का योग्य सत्कार कर ब्राह्मण ने उन्हें विदाई दी तथा उस समय सोना, गाय आदि अनेक वस्तुएं देकर अपने दामाद को भी ब्राह्मण ने प्रसन्न किया।

सूतजी ने कहा–हे मुने ! अपनी पुत्री का योग्य रूपेण कन्यादान देने से जिनका मन सन्तुष्ट हुआ है ऐसे ब्राह्मण प्रभु की शरण में गया। सब बातें बताकर परमात्मा से निवेदन करके वह ब्राह्मण प्रभु की आज्ञा से तपस्या करने चला गया।

शौनक ऋषि बोले–हे सूतजी ! कन्यादान की महिमा सुनकर हमें बहुत आनन्द हुआ। हे प्रभु ! आपके पास प्रभु के सामर्थ्यानुसार कई कहानियां सुनते हम कभी तृप्त नहीं होते। जिस पर परमात्मा की अनंत कृपा हो ऐसे में थोड़ी देर दूर होने की इच्छा हमें नहीं होती। हे श्रेष्ठ ! कन्यादान करते ही ब्राह्मण को तुरन्त फल प्राप्त हुआ, आप हमारी इस शंका का निवारण करो।

सूतजी ने कहा–हे ऋषि श्रेष्ठ ! ईश्वर की महिमा अलौकिक है। ऐसे परम कृपालु भगवान की जिस पर कृपा हो उस व्यक्ति का उद्धार हो जाता है।

हे ब्राह्मण ! एक पक्षीहार नामक शिकारी था। वह निरन्तर अनेक पाप करता था। पर परमात्मा की माया से एक संत का समागम हुआ। सदैव संत तथा प्रभु भक्तों का समागम बिगड़े व्यक्ति की बुद्धि सुधार देता है। संत के समागम से उस शिकारी की बुद्धि भी सुधर गई। पशु-पक्षी को मारना छोड़कर वह प्रभु में अपना मन लगाकर मेहनत से जीवन बिताने लगा।

एक बार वह संतजी के साथ ज्ञान की चर्चा कर रहा था तब संतजी ने शिकारी

से कहा—हे मानव ! जो सच्चे दिल से प्रभु का नाम स्मरण करे उसे प्रभु जरूर दर्शन देते हैं। ज्ञानी संतजी के ऐसे वचन सुनकर वह शिकारी बोला—हे ऋषिवर ! मैं भी प्रभु के दर्शन करना चाहता हूं। जबसे आपका साथ हुआ है तब से हमेशा थोड़ा समय प्रभु की आराधना में व्यतीत करता हूं। पर अब आप बताइए कि प्रभु के दर्शन कब होंगे ?

हे शौनक श्रेष्ठ ! शिकारी के ऐसे वचन सुनकर संतजी प्रसन्न हुए तथा प्रभु के प्रति भाव देखकर खुश हो गए। वे सोचने लगे कि यह कई पाप कर चुका है। ऐसे शिकारी को प्रभु कैसे दर्शन देंगे ? कुछ सोचकर बोले, यदि तू चौबीस घंटे प्रभु का स्मरण करे तो सौ वर्ष के अन्त में प्रभु तुझे जरूर दर्शन देंगे। ऐसा कहकर संत वहां से विदा हो गए तथा वह शिकारी ईश्वर में लीन होकर बैठ गया। उसे ईश्वर के दर्शन की इतनी तीव्र इच्छा लगी थी और ईश्वर के नाम स्मरण में इतना खो गया कि उसे अपने शरीर का होश नहीं रहा न संसार की सुध रही। इतना होते ही इलाचल पर्वत पर विराजमान पांच मुख तथा हाथ वाले विश्वकर्मा प्रभु का आसन डोलने लगा। अपने भक्त की तपस्या का कारण जानकर प्रभु हंसारूढ़ होकर भक्त को दर्शन देने चले गए।

हे मुने ! इधर संतजी ने सोचा कि शायद सौ वर्ष में प्रभु इसे दर्शन न दें तो मेरा वचन निष्फल हो जाएगा। इसलिए वे सारी बात प्रभु को बताने इलाचल गए। पर वहां प्रभु को न पाकर वे सोच में पड़ गए। आकाश मार्ग से जाते नारदजी से उन्होंने सारी हकीकत जानी और स्वयं भी नारदजी को साथ लेकर जहां प्रभु अपने भक्त के पास खड़े थे, वहां पहुंचे। यहां प्रभु ने उस शिकारी के हृदय में अपना स्वरूप दिखाया। इस चमत्कार से वह एकदम जागृत हो गया। तुरन्त उसने आंखें खोलीं तो सामने साक्षात् परब्रह्म को देखा। प्रभु के दर्शन से जिसके हृदय में अत्यन्त आनन्द समाया हुआ है ऐसे उस शिकारी से कुछ भी बोला नहीं गया। अपने आसन से उठकर प्रभु के चरणों में प्रणाम करने लगा। प्रभु ने उसे अनेक उच्च कोटि के मोक्ष आदि के वरदान दिए।

हे शौनकजी ! इधर उस ऋषिवर के हृदय में काफी हलचल मची हुई थी। प्रभु को प्रणाम करके सारा वर्णन बताया फिर कहा—हे प्रभु ! मैंने इस शिकारी को कहा था कि तुझे सौ वर्ष के बाद प्रभु दर्शन देंगे। पर उस समय भी दर्शन होंगे या नहीं इसका मुझे संदेह था पर यहां तो सब विपरीत हुआ और क्षणभर में ही आपने उसे दर्शन दे दिए। मुझे बहुत आश्चर्य हुआ है। आप मेरे मन की शंका का समाधान करो।

हे मुने ! ऋषिवर के ऐसे वचन सुनकर प्रभु मुस्कराए और बोले—हे मुने ! आपने व्याध को जो कहा वह सत्य था। आप जो देख रहे हैं वह उतना ही सत्य है। वास्तव में व्याध ने सच्चे दिल से मेरा स्मरण किया था और अच्छे-अच्छे देवों को भी

वर्षों तपस्या करने के बाद मेरे दर्शन नहीं मिलते वह उसने क्षण भर में पा लिए। आपके उपदेशों से उसे मेरे दर्शन की ऐसी लगन लगी कि पल भर में भक्ति में लीन हो गया। उस समाधि में मेरे साथ उसकी आत्मा मिल गयी और मुझे यहां आना पड़ा।

सूतजी बोले—हे ऋषि ! इस प्रकार कन्यादान के माहात्म्य का मैंने आपके समक्ष वर्णन किया और क्या सुनना चाहते हो ?

# महिमा अज्ञात स्थल

ऋषि बोले—हे सूतजी ! हमने सुना है कि इस पृथ्वी के बारे में अज्ञात स्थल आया है और वह स्थल भी प्रभु श्री विश्वकर्मा ने बनाया है। तथा ब्रह्मर्षि नारदजी ने व शंकरजी के पुत्र कार्तिकेय ने इस स्थल की महिमा को काफी गुणा बढ़ाया है।

हे पुराणों के ज्ञाता ! यह अज्ञात स्थल कहां पर आया ? प्रभु की किस रचना से यह महिमा वाला बना ? उसका गुप्तक्षेत्र नाम कहां से व किस कारण पड़ा ? इस स्थल का माहात्म्य बढ़ाने में नारदजी व कार्तिकेय ने क्या किया ? यह सब हमें बतलाइए।

ऋषियों के ऐसे वचन सुनकर सूतजी ने कहा—हे ऋषिगण ! प्रभु श्री विश्वकर्मा का चरित्र अपार है। उनकी रचना से समस्त भूमंडल सहित सम्पूर्ण विश्व में एक करोड़ महान तीर्थधाम हैं। ये सब तीर्थधाम अनन्त पुण्य देने वाले तथा अनेक प्रकार के उत्तम फल देने वाले हैं। अज्ञात स्थल की रचना में भी विश्वकर्मा ने जो कुछ किया है वह सब अलौकिक है यह निस्संदेह है। मैं आपको इस स्थल के विषय में जानकारी देता हूं।

हे शौनकजी ! इन्द्रधुम्न राजा को पराक्रमों की निशानी स्वरूप मही नदी अनंत पुण्य देने वाली है। यह बात भाग्य से ही कोई नहीं जानता होगा। एक हजार नदियों के स्वामी सागर कितना पुण्यशाली है यह आप अच्छी तरह जानते हो भारत की सभी नदियां पवित्र हैं और उन नदियों का पानी समुद्र में एकत्रित होता है। उस समुद्र की महत्ता का वर्णन किस प्रकार हो सकता है ? समुद्र के दूर से भी दर्शन किए जाएं या उसकी आवाज सुनाई दे तो मनुष्य के सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। भट्टी नदी और समुद्र दो जलाशय सभी जलाशयों में श्रेष्ठ हैं। इस प्रकार इन दो उत्तम जलाशयों का जहां संगम होता है उस स्थान की पवित्रता का वर्णन करने में साक्षात् सरस्वती देवी भी असमर्थ हैं।

हे महामते ! समुद्र के उत्तर में, महिसागर संगम के किनारे मही नदी व साबरम्बती नदी के बीच में जो प्रदेश है वह कुमारिका खण्ड नाम से प्रसिद्ध है। मनु

के पुत्र ऋषभदेव के पुत्र भरत नाम के राजा के नाम पर हमारे देश का नाम भारत पड़ा। भरत का अति पराक्रमी पुत्र वृष्यश्रृंग पिता की मृत्यु के पश्चात् राज गद्दी पर बैठा। वृष्यश्रृंग के आठ पुत्र व एक पुत्री थी। यह पुत्री अति धार्मिक भावना वाली थी। पूर्व जन्म के कर्मों के कारण उसे कुरूप शरीर मिला था। उसने महिसागर संगम पर भगवान शंकर को प्रसन्न किया व उत्तम सौन्दर्य प्राप्त किया। उसके पिता वृष्यश्रृंग ने अपने राज्य के नौ भाग किए। प्रत्येक पुत्र को एक-एक भाग दिया। नवां भाग अपनी पुत्री को दिया। यह पुत्री आजीवन कुंआरी रही। उसके नाम से ही कुमारिका खंड बना। अब यह क्षेत्र किस तरह उत्पन्न हुआ इसका विवरण सुनें।

हे मुनिश्रेष्ठ ! महिसागर संगम के उत्तर में छः कोस दूर तारकपुर नामक उत्तम नगर था। इस नगर में महर्षि कश्यप की पत्नी दिति से उत्पन्न संतति के वंशज में तारक नाम का भयंकर दैत्य रहता था। उसने छोटी पहाड़ी पर नारक नगर बसाया था और उस छोटी पहाड़ी की अंतिम चोटी पर अपना आवास बनवाया था। तारकासुर स्वयं अपने ही आवास में रहकर पांच कोस के विस्तार वाले समस्त राज्य को देख सकता था यह दैत्य अत्यन्त भयंकर व कुरूप था व एक हजार हाथियों समान बलशाली था। उसने सभी देवताओं को हराया था तथा प्रत्येक देवताओं के स्थान पर एक-एक दैत्य को बिठा दिया। देवताओं को भयंकर कष्ट देता था। उसके कष्ट से दुःखी देवताओं ने वानर का रूप धारण किया व गुफाओं में रहने लगे। तारकासुर देवताओं की स्त्रियों तथा देवकन्याओं से दासियों का कार्य कराता था। उनसे पानी भरवाता, गृहकार्य कराता था। इस तरह उनका अपमान करता था। फिर भी सभी देवता में से कोई भी उसका कुछ न कर सका।

हे शौनकजी ! तारकासुर ने उग्र तपस्या करके भगवान शंकर को प्रसन्न किया। उनसे यह वरदान मांगा था कि कोई भी देव पशु-पक्षी, मनुष्य उसे न मार सके। केवल छः दिन का बच्चा उसे मार सके। तारकासुर ने सोचा कि छः दिन का बच्चा ताकतवर नहीं होगा। अतः वह कभी नहीं मर सकता। इस विचार से गर्व में इतना अंधा हो गया कि समग्र विश्व को कष्ट दे रहा था।

हे मुने ! तारकासुर के इस कष्ट से देवताओं को बचाने का प्रभु ने विचार किया। दक्ष के यज्ञ में सती जलकर भस्म हो गई तब भगवान शंकर उन्मत्त अवस्था में रहकर कैलाश पर्वत पर तपस्या में लग गए। सती हिमालय के यहां पुत्री रूप में फिर प्रकट हो गई थी। शंकर को ही पुनः पति के रूप में पाने के लिए वह भी अनेक नियमों को धारण करके शंकर की भक्ति करती थी। सती के शोक से व्याकुल शंकर की उग्र तपस्या देखकर प्रभु ने सोचा कि यदि ऐसे उग्र तप के तेज़ से बालक उत्पन्न हो तो वह बालक तारकासुर का वध करने में समर्थ होगा। इसके सिवाय इस भयंकर दैत्य का नाश करना असम्भव है। पर सती के वियोग से पीड़ित शंकर अन्य स्त्री रखने के लिए तैयार नहीं थे। देवताओं की विपत्तियों का निवारण करने का दूसरा

कोई मार्ग नहीं था।

अन्त में एक बार जब पार्वती शंकर की पूजा के लिए कैलाश पर आयी तो सभी देवताओं ने कामदेव को समझाकर शंकर के पास भेजा। कामदेव ने कैलाश पर आकर अपनी माया फैलायी। उनके मोहजाल से भगवान शंकर की तपस्या भंग हुई। अपनी समाधि को भंग देख क्रोध में आकर भगवान शिवजी ने अपना तीसरा नेत्र खोला। तीसरा नेत्र खुलते ही भयंकर अग्नि बाहर निकली और कामदेव जलकर राख हो गया। चारों ओर हाहाकार मच गया। सभी देवता वहां गए तथा अनेक प्रकार की स्तुति आदि करके शंकरजी को प्रसन्न करने लगे। शंकरजी के शान्त होने पर देवताओं ने सारी बातें समझायीं तथा पार्वती स्वरूप में प्रगट सती के साथ विवाह करने की विनती की। भगवान शंकर ने देवताओं के कार्य सिद्ध करने के लिए तथा पार्वती की तपस्या के कारण उनसे विवाह किया। देवताओं के कार्य के लिए उसने अपने प्राण खो दिए ऐसे कामदेव को भगवान शंकर सहित सभी देवताओं ने उत्तम वरदान दिए तथा अनंग स्वरूप में जीवन दिया।

हे शौनक ! देवताओं का कार्य करने के लिए शंकर पार्वती से कार्तिकेय उत्पन्न हुए। उत्पन्न होते ही बलरूप में एकदम बढ़ने लगे। ऋषियों ने उनके संस्कार किए तथा देवताओं ने उन्हें अपना सेनापति स्वीकारा। कार्तिकेय पिता की आज्ञा लेकर तारकासुर का वध करने के लिए तारकपुर पहुंचे। वहां देवताओं के साथ दैत्यों का भयंकर युद्ध हुआ। कोई भी दैत्य नहीं मरता था। कार्तिकेय को यह देखकर बहुत क्रोध हुआ तथा उन्होंने प्रतिज्ञा की कि आज मैं किसी भी तरह दुष्ट दैत्य का विनाश करूंगा। ऐसा निश्चय करके वे अपने सम्पूर्ण बल सहित रणभूमि में आए। उन्होंने अपने हाथ में पड़ी शक्ति को बलपूर्वक दैत्यों पर फेंका। कार्तिकेय की फेंकी शक्ति सीधे तारकासुर के मस्तक पर लगी। शक्ति का प्रहार होते ही उसे अत्यन्त पीड़ा हुई और वह खून की उल्टी करने लगा। वह इस तरह चक्कर लगाने लगा और धनुष दूर जाकर गिर पड़ा। उसके शरीर में से एक तेज निकला और वह तेज भगवान शंकर में लीन हो गया। कार्तिकेय ने शंकर के भक्त भयंकर राक्षस तारकासुर का अपने जन्म के छठे दिन पल भर में ही नाश किया।

तारकासुर का वध करने के बाद कार्तिकेय स्वामी को बहुत दुःख हुआ। तारकासुर भगवान शंकर का भक्त था। उसका वध स्वयं खुद ने किया इसलिए वे दुःखी रहे। सभी देवताओं ने उन्हें समझाया कि पापियों का वध करने से कोई पाप नहीं होता। फिर भी कार्तिकेय को यही लगता कि शंकर के भक्त का वध होने से मुझे बहुत बड़ा पाप लगा है। ऐसा विचार आते ही उनका मन बहुत दुःखी हुआ। उनके मन का दुःख दूर करने के लिए नारायण ने उन्हें प्रायश्चित करने को कहा। प्रभु ने कहा—हे कार्तिकेय ! भगवान शंकर के भक्त का वध करने से जो पाप होता है उस पाप का निवारण करने के लिए आप भगवान शिवजी के लिंग की प्रतिष्ठा

करो। भगवान शंकर के लिंग की प्रतिष्ठा करने से मनुष्य के करोड़ों जन्म के ब्रह्महत्या समान भयंकर पापों का भी नाश होता है। अतः लिंग प्रतिष्ठा सर्वश्रेष्ठ प्रायश्चित है। भगवान विष्णु के इस प्रकार के वचन सुनकर कार्तिकेय भगवान शिवजी की लिंग प्रतिष्ठा करने के लिए तैयार हुए। उन्होंने पवित्र होकर भगवान श्री विश्वकर्मा का ध्यान किया। प्रभु विश्वकर्मा तुरन्त वहां आए और कार्तिकेय का कार्य करने में सहयोग देने लगे।

हे मुने ! कार्तिकेय सोचने लगे कि मैंने इस असुर का वध करने का संकल्प किया तब से ही मुझे उसके वध का पाप लगा है, क्योंकि मन से किसी का वध करने का विचार करें तो ऐसा मानसिक पाप लगता है। तत्पश्चात् मैंने उसके वध के लिए जब शक्ति मारी तब शक्ति उसे लगते ही मुझे फिर पाप लगा। क्योंकि उस समय मैंने उसका वध करने के लिए प्रहार किया था इससे क्रमिक पाप तो हुआ। जब दैत्य का अचेतन देह जमीन पर पड़ा तब उसका सच.में वध हुआ। तब मुझे नैमित्तिक पाप लगा। इस तरह मुझे तीन पाप लगे। तीन पापों के प्रायश्चित के लिए मैं तीन लिंगों का स्थापन करूंगा। यह सोचकर कार्तिकेय बोले—हे देव ! हे ईश्वर ! मेरे हाथ से हुए शंकर भक्त के वध के प्रायश्चित के लिए मैं तीन शिवलिंगों की स्थापना करना चाहता हूं अतः आप मुझे तीन उत्तम लिंग बना दो। ऐसी कार्तिकेय की इच्छा को पूर्ण करने हेतु तथा कार्तिकेय को उसके कर्म बन्धन से छुड़ाने की इच्छा से विश्वकर्मा प्रभु ने उन्हें तीन उत्तम लिंग बनाने में योगदान दिया।

हे शौनकजी ! अपने पाप का प्रायश्चित करने के लिए कार्तिकेय ने उन तीन लिंगों की उत्तम प्रकार से प्रतिष्ठा की। जिस तारकासुर का वध करने की प्रतिज्ञा की थी, जहां तारकासुर को शक्ति लगी थी तथा जहां उसका निर्जीव देह पड़ा था। तीनों जगह प्रभु श्री विश्वकर्मा ने देवालय का निर्माण किया तथा उनके बनाए देवालयों में कार्तिकेय ने लिंग प्रतिष्ठा की जहां पर तारकासुर का वध करने की प्रतिज्ञा की थी वहां प्रतिज्ञेश्वर नाम से प्रथम लिंग की प्रतिष्ठा की, जहां कार्तिकेय ने शक्ति फेंकी थी वह शक्ति दैत्य के कपाल पर लगी थी वहां कपालेश्वर नाम से द्वितीय लिंग की प्रतिष्ठा की और जिस स्थान पर दानव का प्राणरहित शरीर पड़ा था वहां कुमारेश्वर नाम से तृतीय लिंग की प्रतिष्ठा की। इस तरह तीन शिवलिंग की प्रतिष्ठा हुई। समय बीतने पर कुमारेश्वर देवालय जब अत्यन्त जीर्ण हो गया तब उस प्रदेश की अधिष्ठाता कुमारी ने श्री विश्वकर्मा प्रभु को बुलाकर उस स्थान का पुनः निर्माण कराया। इससे वह देवालय कुमारीश्वर नाम से जाना गया।

हे शौनकजी ! इस प्रकार तीन लिंगों की स्थापना करने के बाद देवताओं की विजय का स्तम्भ रोपने की इच्छा को महत्व देकर कार्तिकेय ने अपनी विजय स्मृति विजयस्तम्भ के स्थान पर एक शिवलिंग पधराया। उसका नाम उन्होंने स्तम्भेश्वर दिया। तत्पश्चात् शिवलिंग की प्रतिष्ठा की विष्णु व विश्वकर्मा द्वारा वर्णित महिमा

जानकर सभी देवताओं को शिवलिंग प्रतिष्ठित करने की इच्छा हुई। उन सबकी ओर से कार्तिकेय ने सिद्धेश्वर नामक पांचवां लिंग स्थापित किया। यदि देवों के अनुसार भिन्न-भिन्न लिंग प्रतिष्ठित होने पर अपूज्य रहें तो उसका दोष लिंग रखने वाले को लगेगा। फिर सभी देवों ने एक लिंग स्थापित किया। हे ऋषि ! इस प्रकार उत्तम तीर्थ की उत्पत्ति हुई। कार्तिकेय के विजय के पश्चात् उत्पन्न हुए इस तीर्थ को कार्तिकेय की विजय की महिमा के लिए ही स्तम्भ तीर्थ प्रकार का नाम दिया गया। यह स्तम्भ तीर्थ अत्यन्त पुराना और अत्यधिक पुण्य देने वाला तीर्थ है। इस तीर्थ में सभी देवताओं का निवास-स्थान है। सभी तीर्थ इस एक ही तीर्थ में आते हैं। इसलिए इस तीर्थ का महत्व सर्वाधिक है।

शौनक ऋषि ने प्रश्न किया—हे सूतजी ! कार्तिकेय की विजय हुई और उनकी याद के लिए यह उत्तम तीर्थ बना है यह हमने जाना। परन्तु आपने कहा यहां सभी देवता निवास करते हैं। यह बात हमें विस्तारपूर्वक कहें।

शौनक महर्षि के प्रश्न को उचित जानकर सूतजी बोले—हे मुने ! आपने बहुत ही उत्तम प्रश्न किया है। इसके विषय में सुनें। विराट विश्वकर्मा के अंश से उत्पन्न ब्रह्मदेव के पुत्र नारदजी एक बार पिता की सभा में गए। उस समय ब्रह्मदेव की सभा में दान की महिमा पर चर्चा चल रही थी। सभा में यह निश्चय किया गया कि दान का बहुत महत्व है तथा दान में दी गई वस्तु जहां तक पहुंचे वहां तक दान देने वाले को फल मिलता है। सभी दानों में भूमिदान वह दान है जो कई पीढ़ियों तक चलता है। भूमि का दान किया जाए तो जब तक भूमि है तब तक दान देने वाले को तथा उसके वंशज को फल मिलता है। भूमिदान की महिमा सुनकर नारदजी को भी भूमिदान करने की इच्छा हुई। परन्तु भूमिदान के लिए भूमि कहां से लाएं इस सोच में पड़ गए।

नारदजी ने भूमिदान के लिए महिसागर संगम के किनारे की अति श्रेष्ठ भूमि पसन्द की। उस समय यह भूमि सौराष्ट्र के राजा के अधिकार में होने से नारदजी ने उस राजा को अपने ज्ञान से प्रसन्न किया तथा उससे भूमि के उपरान्त सोना, गाय आदि द्रव्य प्राप्त किया। फिर श्रेष्ठ स्तम्भ तीर्थ की भूमि का दान करने के लिए वे उत्तम ब्राह्मणों की खोज में निकल पड़े। उत्तम ब्राह्मणों की खोज के लिए नारदजी ने थोड़े प्रश्न तैयार किए तथा यह निश्चय किया कि इन प्रश्नों का जो सही उत्तर देगा वही सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मण होगा। यह सोचकर नारदजी अपने प्रश्नों के साथ एक गांव से दूसरे गांव घूमने लगे। फिर भी उन्हें योग्य ब्राह्मण नहीं मिला वे सारी पृथ्वी पर घूमने लगे।

हे मुनेश्रेष्ठ ! वे घूमते-घूमते हिमालय की तलहटी में पहुंचे। यहां कलाय ग्राम नामक नगर था। इस नगर में अनेक ब्राह्मणों के आश्रम थे। तपस्वी ब्राह्मण सदा ज्ञान चर्चा व तपस्या में अपने जीवन का अधिक भाग व्यतीत करते। यहां नारदजी

को बारह साल के बालक ने उनके सभी प्रश्नों के उत्तर दिए। इस कारण नारदजी ने उन्हें भूमिदान देने का निश्चय किया। वे हरिनादि चार सौ ब्राह्मणों को महिसागर संगम के किनारे लाए तथा उन्हें भूमिदान किया। नारदजी द्वारा बसाए गए ब्राह्मण नारदीक कहलाए। इन ब्राह्मणों की जरा-सी भूल के कारण नारदजी ने उन्हें श्राप भी दिया था कि आप सब कलियुग में विद्याहीन बनोगे और आपके कुल का विनाश होगा।

हे शौनकजी ! अति पुण्यकारक तीर्थ में उत्तम ब्राह्मणों को बसाने के बाद नारदजी ने प्रभु श्री विश्वकर्मा की प्रार्थना की तथा स्वयं द्वारा बसाए ब्राह्मणों के लिए योग्य आवासों की रचना करने और उनकी रक्षा के लिए जिन-जिन देवताओं की स्थापना एवं उनके योग्य स्थान के निर्माण की प्रार्थना की। प्रभु ने क्षणमात्र में ही नारदजी की सारी व्यवस्था कर दी। प्रभु श्री विश्वकर्मा की सहायता से नारदजी ने स्तम्भ तीर्थ के चारों ओर उनके रक्षण के लिए अनेक देव-देवियों की प्रतिष्ठा की।

हे शौनकजी ! अनेक ऋषि, मुनि, महर्षियों तथा देवताओं को इस स्थान में स्थापित किया है। स्वयं को प्रसन्न करके उत्तम वरदान पाने वाले अपने अनन्य भक्तों की इच्छा के वश होकर कुछ देवताओं ने तो अपने आप यहां निवास करने का वचन दिया है। उन देवताओं ने यह भी कहा कि—जब तक पृथ्वी होगी तब तक हम इस क्षेत्र में निवास करेंगे। हमारे मुख्य तीर्थधामों में जाकर तप करने से मनुष्यों को वैसा ही फल प्राप्त होगा जैसा अन्य तीर्थों में हमारे दर्शन करने से प्राप्त होता है। ऐसा कहकर इन तीर्थस्थानों में सभी देवता वास करने लगे।

मुनेश्रेष्ठ ! सब तीर्थ इस तीर्थ में किस तरह निवास करते हैं यह वर्णन सुनो। नारदजी ने जब भूमिदान समारंभ किया तब उस समारंभ में उन्होंने सभी देवताओं सहित अपने पिता ब्रह्मदेव को निमंत्रण दिया। नारदजी के आग्रह और स्नेह के वश होकर ब्रह्मदेव तथा देवी सावित्री स्तम्भतीर्थ में आए थे। समारम्भ अच्छी तरह पूर्ण हुआ। सबको शान्ति हुई। रात आनन्द प्रमोद में बीत गयी। जब दूसरे दिन प्रभात होने लगी तब एक मुसीबत उत्पन्न हुई। शास्त्रों में कहा है अतिथि देवो भव अर्थात् अपने मेहमान देव समान होते हैं। अतः उनके सत्कार में जरा-सी कमी रहने पर सब व्यर्थ होगा।

हे मुनिगण ! इस समग्र सृष्टि में पृथ्वी, आकाश (स्वर्ग) तथा पाताल में स्थित सभी तीर्थों को मिलाकर उनकी संख्या एक करोड़ है। ब्रह्मदेव का यह नियम था कि प्रातःकाल उठकर नियमपूर्वक सभी तीर्थ स्थानों में स्नान करना। वे मानस हंस पर स्वयं विराजमान होकर सब तीर्थ स्नान करते पर आज वे नारदजी के अतिथि थे और यदि उन्हें स्नान के लिए यहां से बाहर जाना पड़ता तो नारदजी के अतिथि सत्कार में कमी मानी जाती। इस कारण नारदजी विचलित हो गए। फिर उन्होंने उत्तम मार्ग ढूंढ़ लिया। उन्होंने प्रभु श्री विश्वकर्मा को आह्वान करके बुलाया तथा उनसे एक कुंड

बनवाया। कुंड के पास ही एक कुआं बनवाया। तत्पश्चात् नारदजी ने सभी तीर्थों का आह्वान करके करोड़ों तीर्थों का जल लेकर कुंड तथा कुओं में डाल दिया।

हे शौनकजी ! करोड़ों तीर्थों में स्थित भगवान शंकर के शिवलिंग की पूजा करने का ब्रह्माजी का नियम जानकर नारदजी ने सभी तीर्थों में स्थित शिवलिंग की प्रार्थना करके उन्हें आह्वान करके बुलाया। प्रत्यक्ष बैठे भगवान शिवजी को प्रसन्न किया तथा एक शिवलिंग की स्थापना करके नारदजी बोले—हे शंकर ! जिस प्रकार आप करोड़ तीर्थों में निवास करते हो उस प्रकार इस स्थान में एक स्वरूप बनकर मेरे बनाए लिंग में वास करो। जिस प्रकार आप सभी तीर्थों में फल देते हो उसी प्रकार उन तीर्थों का सारा फल एक बार दें। नारदजी की स्तुति से प्रसन्न शंकरजी ने नारदजी की इच्छा पूर्ण करने के लिए उस लिंग में सदा काल के लिए निवास किया। इस तरह वह लिंग कोटीश्वर नाम से प्रख्यात हुआ। नारदजी का अद्भुत कार्य देखकर सभी देवताओं आकाश में से पुष्पों की वर्षा सहित नारदजी की जयकार करने लगे।

हे शौनकजी ! नारदजी का अद्भुत अतिथि-सत्कार देखकर ब्रह्मदेव इतने प्रसन्न हुए कि नारदजी की इच्छा मानकर सावित्री सहित कोटितीर्थ के पास निरन्तर निवास करने लगे। प्रभु श्री विश्वकर्मा ने इन सब देवताओं के निवास के लिए उत्तम प्रकार के देवालयों की रचना की।

हे शौनकजी ! सब तीर्थों के स्तम्भ समान यह स्तम्भतीर्थ सब तीर्थों से महान है तथा अनेक प्रकार के उत्तम फल देने वाला तथा मनुष्यों को मोक्ष देने वाला है। इस तीर्थ की महिमा इतनी अगाध है कि सहस्त्र मुख वाले शेषनारायण भी इसका वर्णन करने में असहाय हैं। यह तीर्थ चार पुरुषार्थ देने वाला तथा मन की सभी इच्छाएं पूर्ण करने वाला है। हे ऋषि ! इस अति पुण्य कारक तीर्थ में कालभीति नामक ब्राह्मण को चिरशान्ति मिली थी तथा महाकाल की पदवी प्राप्त करके शंकर के रूप में स्थान मिला था। यही उत्तम तीर्थ है। शंकर की प्रसन्नता से कुमारिक पार्वती की श्रेष्ठ सखी बनी थी। इस तीर्थ से ही विजय नामक ब्राह्मण को एक ही रात में सारी सिद्धियां प्राप्त हो गयी थीं। यहां पर नारदजी द्वारा स्थापित देवियों की निरन्तर सेवा करके उनकी प्रसन्नता पाकर भीमसेन का पौत्र बर्बरीक ने देवत्व प्राप्त कर लिया था।

सूतजी बोले—हे शौनकजी ! अति उत्तम तीर्थ सब तीर्थों से महान है। इस तरह इस तीर्थ का स्तम्भतीर्थ नाम भी इस प्रकार सार्थक है। कार्तिकेय द्वारा रचित व नारदजी द्वारा बढ़ा तथा सब देवताओं का जिसमें निवास है और अनेक देवियां इसकी रक्षा करती हैं। ऐसे तीर्थ का अनेक तपस्वियों ने सेवन किया है तथा उत्तम प्रकार की सिद्धियों को उन्होंने क्षणभर में ही प्राप्त किया है। इस उत्तम तीर्थ की एक बार यात्रा एवं महिसागर संगम में मात्र एक बार स्नान करने से मनुष्य के सभी पाप पुण्य में परिवर्तित हो जाते हैं। उस मनुष्य को सभी तीर्थों की यात्रा करने का भी फल प्राप्त

होता है। ऐसे अमूल्य फल को देने वाले उत्तम तीर्थ की महिमा जानने के बाद कौन-सा व्यक्ति अन्य तीर्थ की ओर जाने की चेष्टा करेगा।

शौनकजी ने सूतजी से प्रश्न किया—हे सूतजी ! आपसे हमें स्तम्भतीर्थ का माहात्म्य सुनकर बहुत हर्षोल्लास हुआ। हे देव आपने इस तीर्थ का अज्ञात स्थल नाम से उल्लेख किया था। आप सविस्तार समझाइए आपने इस तीर्थ को क्यों अज्ञात स्थल कहा, आप सब बातों का रहस्य दूर करके हमारे मन की शंका दूर करें।

सूतजी बोले—हे शौनकजी ! अज्ञात स्थल ही स्तम्भतीर्थ है। इस तीर्थ को धर्मराज ने उसके दोष के लिए दंड दिया था। उसे धर्मराज ने श्राप दिया था। कि कलियुग में तीर्थ अज्ञात (गुप्त) रहेगा उसकी महिमा कोई भी नहीं जान पायेगा। उस समय से श्राप के कारण गुप्त तीर्थ अथवा गुप्त क्षेत्र के नाम से जाना जाता है। इसकी महिमा भी गुप्त क्षेत्र नाम से पहचानी जाती है। श्राप के कारण इसका माहात्म्य गुप्त हुआ है। परन्तु उससे उसका महत्व जरा भी कम नहीं हुआ है। पर श्राप के कारण गुप्त रहे हुए तीर्थराज की महिमा अन्य तीर्थों की तरह प्रसिद्ध नहीं हुई। इसलिए लोग इस तीर्थ को नहीं जानते।

शौनकजी ने फिर प्रश्न किया। बोले—हे सूतजी ! किस कारण धर्मराज ने श्राप दिया था ? हमें बतलाइए।

सूतजी बोले—हे मुने ! एक बार विश्व रचयिता ब्रह्मदेव को सब तीर्थों का नियंत्रण करने की इच्छा हुई। ब्रह्मदेव ने आह्वान करके सब तीर्थों को ब्रह्मलोक में बुलाया। ब्रह्मलोक में आए सभी तीर्थों के स्वागत के लिए ब्रह्मदेव ने सभा बिठायी। उनकी सभा में सर्वोच्च आसन पर प्रभु श्री विश्वकर्मा विराजमान थे। उनके दाएं ओर अपने-अपने योग्य आसनों पर ब्रह्मा, विष्णु, महेश, धर्मराज, कार्तिकेय आदि देवता तथा उनके पीछे गंधर्व व यक्ष बैठे थे। विराट के बायें ओर नारद, गौतम, वसिष्ठ, तुम्बर व विश्वामित्र आदि अन्य ऋषि-मुनि तथा पितृ देव भी बैठे थे। प्रभु के सन्मुख सभी तीर्थ बैठे थे। इस भव्य सभा की रचना प्रभु श्री विश्वकर्मा ने की थी। आसन किस पदार्थ के बने थे इसकी कल्पना तक कोई नहीं कर सका। कहीं पर भी दीप नहीं थे, फिर भी रंग-बिरंगी प्रकाश की किरणों से सभा शोभित हो रही थी। स्थान-स्थान पर रत्न, मोती व स्वर्ण जड़ित तोरण लटक रहे थे।

हे शौनकजी ! बीच में ब्रह्मदेव खड़े हुए और विराट विश्वकर्मा सहित सबको प्रणाम करके धीर-गम्भीर वाणी में बोले—हे तीर्थ देवताओ ! आप सबका एक साथ दर्शन करने की इच्छा से मैंने आप सबको यहां बुलाया। इसलिए मैं आप सबकी यथोचित पूजा करने की इच्छा रखता हूं, परन्तु आप सबकी संख्या अधिक है इसलिए आप सबकी पूजा करना असंभव है। मैं क्या करूं ? मुझे कुछ समझ नहीं आता। इस सभा में जो मुझे आज्ञा देगा मैं उसी की आज्ञा पालन करूंगा। ब्रह्मा के वचन सुनकर भगवान विष्णु बोले—हे सभी धर्मों को जानने वाले तथा उनका योग्य ढंग से

पालन करने वाले धर्मराज यदि आदेश देंगे तो समस्त जनों को स्वीकार होगा। क्योंकि धर्म के बारे में उनसे अधिक विशेष योग्यता किसी की नहीं है। विष्णु के ऐसे वचन सुनकर धर्मराज बोले--हे ब्रह्मदेव ! सब तीर्थों का पूजन करना असम्भव है आप सब तीर्थों में जो महान हो उसी का पूजन करें। क्योंकि सबसे बड़े का पूजन करने से सबका पूजन किया हो ऐसा माना जाता है। धर्मराज के आदेश से प्रसन्न ब्रह्मदेव बोले—हे तीर्थ देवता ! आप सब में महत्व की दृष्टि से जो महान हो उसकी अर्चना करने के लिए मैं तैयार हूं। तो आप में से जो सर्वश्रेष्ठ हो वह मुझे कहें जिससे मैं उसकी अर्चना कर सकूं।

हे मुने ! ब्रह्मदेव के इस प्रकार के वचन सुनकर सभी तीर्थ एक-दूसरे का मुंह देखने लगे और सोचने लगे। पर कोई कुछ नहीं बोला। काफी समय बीत गया पर कोई नहीं बोला तब ब्रह्मा ने फिर से वही प्रश्न किया। देहधारी स्तम्भ तीर्थ के अधिष्ठाता देव ने खड़े होकर सारे सभा सदस्यों को प्रणाम करके ब्रह्मदेव से कहा--हे ब्रह्मदेव ! पृथ्वी, स्वर्ग और पाताल में स्थित एक करोड़ तीर्थों में सबसे महान मैं हूं अतः आप मेरा पूजन करें। इन सब तीर्थों के पूजन के बराबर मेरा पूजन होगा यह निःसंदेह है। स्तम्भ तीर्थ के ऐसे वचन सुनकर तुरन्त ही सभा में धर्मराज ने खड़े होकर कहा—हे देवताओ तथा ऋषिगणो ! इस स्तम्भ तीर्थ को अपने बड़े होने पर घमण्ड है और इसी कारण यह निर्लज्ज होकर सभा में अपना व्याख्यान आप कर रहा है। मैं इसे श्राप देता हूं कि कलियुग में इसका नाश होगा इसकी कहीं भी कोई पहचान नहीं होगी।

हे शौनकजी ! धर्मराज के वचन सुनकर कार्तिकेय व नारदजी संकट में पड़ गए। जिस तीर्थ को महान बनाने में स्वयं का बहुत बड़ा हाथ हो उसका नाश हो क्या यह अच्छा होगा ? जबकि स्तम्भ तीर्थ का जरा भी दोष नहीं था। ब्रह्मा जी ने प्रश्न किया था। उसने जो कुछ कहा था वह सत्य कहा था। महिमा में वह सर्वश्रेष्ठ था। कार्तिकेय बोले—हे धर्मराज ! धर्म का पालन कराने वाले आपके हाथों इस प्रकार का अन्याय हो तो सृष्टि का विनाश निश्चित है। अतः आप अपना श्राप वापस ले लो। इस प्रकार धर्मराज और कार्तिकेय तथा नारद के बीच चर्चा हुई और धीरे-धीरे वातावरण में तेजी व गम्भीरता आ गई। तब भगवान नारायण ने सोचा कि यदि ऐसा ही चलेगा तो ये दोनों देवता आपस में लड़ेंगे व्यर्थ ही वैमनस्य बढ़ेगा। इसलिए इस विवाद का अन्त तुरन्त होना चाहिए।

हे मुने ! तभी नारायण बोले—हे धर्मराज ! हे कार्तिकेय ! आप दोनों मेरी बात एक क्षण शांतिपूर्वक सुनिए। आप दोनों की बात सच है। आप दोनों का मान रहे ऐसा रास्ता निकालना चाहिए। यदि प्रभु विश्वकर्मा को मान्य हो तो जैसे मैं कहूं उसी तरह करें। धर्मराज दिया हुआ श्राप वापस ले सकते हैं और कार्तिकेय स्वामी के मन को दुःख न हो इसलिए तीर्थ का नाश भी नहीं होना चाहिए अतः धर्मराज

अपने आपको परिवर्तित कर दें तो दोनों की बातें रह जायेंगी।

हे शौनकजी ! भगवान विष्णु के वचनों से प्रसन्न धर्मराज बोले—ठीक है। हे परमेश्वर जैसा चाहेंगे वैसा होगा। स्तम्भ तीर्थ का नाश नहीं होगा। पर कलियुग में यह अज्ञात स्थल कहलायेगा। इसकी महिमा कोई जान नहीं पाएगा। यह अज्ञात स्थल के नाम से पहचाना जाएगा।

सूतजी बोले—हे शौनकजी ! इस प्रकार प्रभु श्री विश्वकर्मा की लीलाओं का जिसमें वर्णन है ऐसे स्तम्भ क्षेत्र का उत्तम माहात्म्य मैंने आपको बताया। अब आपकी जो इच्छा हो कहो।

# भक्ति मार्ग

ऋषिवर शौनकजी ने पुनः प्रश्न किया—हे सूतजी ! आप हमें भक्ति मार्ग के बारे में बताइए। सब मनुष्य जिस भक्ति मार्ग का आश्रय करके मोक्ष की प्राप्ति करने की इच्छा रखते हैं उस उत्तम भक्ति मार्ग को जानने की हमारी तीव्र कामना है। अतः आप हमें भक्ति मार्ग का प्रभाव बताने का कष्ट करें।

सूतजी बोले—हे मुने ! इलाचल पर दिव्य बड़ के पेड़ के नीचे उत्तम सिंहासन पर विराजमान प्रभु श्री विश्वकर्मा के पांच ब्रह्मर्षि हाथ जोड़कर उनकी स्तुति कर रहे थे। अपने पुत्रों को इस प्रकार स्तुति करते देख प्रभु विश्वकर्माजी ने कहा—हे पुत्रो ! आपके हृदय में कोई गहन चिन्ता है। मैं ऐसा मानता हूं। अतः आप अपनी चिन्ता बताइए। मैं आपकी चिन्ता जरूर दूर करूंगा।

हे शौनकजी ! प्रभु के वचन सुनकर ब्रह्मर्षि मनु बोले—हे देवाधिदेव ! आप आदि, अन्त और मध्य में रहने वाले सबके अधिष्ठाता, ईश्वर हो। प्राणिमात्र के अज्ञान रूपी अन्धकार का आप नाश करने वाले हो। हे प्रभु ! हमें आपसे धर्म के विषय में जानने की इच्छा है। आप सर्वज्ञानी हो, आपसे कुछ भी छिपा नहीं है, फिर आपके प्रश्न का उत्तर अवश्य देंगे। आपको योग्य लगे तो हमारी धर्म जानने की इच्छा पूर्ण करने की कृपा करें।

हे महामते ! ब्रह्मर्षि मुनि के हेतु पूर्ण वचनों को सुनकर प्रसन्न प्रभु विश्वकर्मा बोले—हे पुत्रो ! मोक्ष की इच्छा वाले व्यक्ति के लिए तो अध्यात्म मार्ग विशेष है। क्योंकि आध्यात्म मार्ग ही व्यक्ति का कल्याण कर सकता है। इस मार्ग से सुख-दुःख का ही नाश होता है। शम, दम आदि सब अंगों से युक्त इस अध्यात्म मार्ग को मैं आपको बताता हूं। प्राणीमात्र का जीवात्मा किसी भी प्रकार के बंधनों से परे है। फिर भी कोई बंधन [illegible] है तो उसका चित्त है। अनेक प्रकार के विषयों से उत्पन्न चित्त

की आसक्ति जीवात्मा को बंधन युक्त करती है। यदि प्राणी का मन सब विषयों को छोड़ प्रभु में ही ध्यानमग्न हो तो उससे प्राणी को मोक्ष की प्राप्ति होती है। जब प्राणी में अहंकार से यह मेरा है यह मैंने किया है, ऐसा 'मैं' आ जाता है तब काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर छः शत्रु प्राणी को घेर लेते हैं, परन्तु मनुष्य तेरा-मेरा त्याग दे और सब कुछ प्रभु के अधीन है, ऐसा माने तो उपर्युक्त छः शत्रुओं से वह बच जाता है। उस व्यक्ति को उत्तम ज्ञान की प्राप्ति होती है। सब विषयों के प्रति उसे वैराग्य उत्पन्न होता है। और मात्र प्रभु में उसका चित्त स्थिर भक्ति मार्ग को प्राप्त करता है। प्राणी की आत्मा निर्मल हो जाती है। आत्मा भी विषयादि में से चित्त की आसक्ति छूटते ही प्रकाशित होने लगता है।

हे शौनकजी ! इससे जो व्यक्ति ब्रह्मत्व पाना चाहता हो अर्थात् विराट में मिलकर अपने जन्म-मरण के चक्कर को टालना चाहता हो ऐसे मोक्ष की इच्छा रखने वाले व्यक्ति के लिए इस प्रकार की प्रभु की भक्ति ही श्रेष्ठ मार्ग है। सब एक ही बात कहते हैं कि व्यक्ति भोग-विलास विषयों में आसक्त होकर उसी में लगा रहे तो उससे उस आत्मा को सभी बंधन लगते हैं और यदि उसका मन सब विषयों को त्याग कर साधु-संत का संग करे तो धीरे-धीरे प्रभु की भक्ति में उसकी आसक्ति होगी। प्रभु की भक्ति में लीन मनुष्यों के लिए मोक्ष का मार्ग दूर नहीं है।

हे महामुने ! सज्जन व्यक्ति दया का भंडार हैं। जगत में उनका कोई शत्रु नहीं होता। उनमें शान्ति का गुण अति उत्तम होता है। ऐसे व्यक्ति कभी भी शास्त्र के वचनों का उल्लंघन नहीं करते तथा अपने चरित्र को उज्ज्वल रखते हैं। इसलिए सज्जन या सत्पुरुष कहलाते हैं, ये सज्जन लोग निरन्तर प्रभु की भक्ति के लिए अपने सब कार्य, सगे-सम्बन्धी आदि का त्याग करता है तथा प्रभु की उत्तम फल देने वाली कथा को सुनता है। सदा उनके मन में प्रभु का रूप दिखलाई देता है।

हे शौनकजी ! अलौकिक स्वरूप के साथ बातचीत, क्रीड़ा तथा अनेक प्रकार के आनन्द करते मेरे ये भक्त इस प्रकार से मुझमें ही रत रहते हैं। इस तरह मेरी भक्ति करने से वे अनेक प्रकार के कल्याण देने वाली ऐसी अलौकिक दैवी शक्तियों तथा सम्पत्तियों को पाकर शाश्वत सुख तथा आनन्द को भोगते हैं। मेरे जो भक्त अपने सभी सम्बन्धी, पुत्र, धन, बन्धु, गुरु, पिता आदि में मुझे ही देखते हैं उनको मैं सर्वसुख सम्पन्न करता हूं। जो भक्त संसार में सभी सम्बन्धी, धन, माल, ऐश्वर्य आदि का त्याग करके अकेले मेरा ही स्मरण करते हैं उन्हें मैं इस संसार के जन्म-मरण के बंधन से दूर करता हूं।

हे मुने ! प्रभु विश्वकर्मा ने कहा—हे पुत्रो ! मैं सम्पूर्ण संसार का कर्ता, धर्ता और हर्ता हूं। मेरी इच्छा के बिना कोई व्यक्ति कुछ नहीं कर सकता। मेरा सहारा लिए बिना कौन व्यक्ति इस संसार सागर को तैरने में समर्थ होगा ? क्योंकि सूर्य-चन्द्र के प्रकाश का, अग्नि का ज्वलित होना—ये सब मेरे बल के सहारे होता है। इसी

कारण मेरे भक्त सच्चा ज्ञान पाकर संसार से वैराग्य पाते हैं।

हे शौनकजी ! विश्वकर्मा जी आगे बोले—हे पुत्रो ! अभी मैंने आपको भक्ति के लक्षण बताये। यह भक्ति कितने प्रकार की होती है ? अब मैं उसका वर्णन करके बताता हूं।

भक्ति के भिन्न-भिन्न अनेक मार्ग हैं और इससे भक्ति के अनेक प्रकार हैं। सत्वगुण, रजोगुण, तमोगुण आदि भेद के कारण व्यक्तियों की भिन्न-भिन्न प्रकृति होती है। उनकी इसी प्रकार की प्रकृति के कारण भक्ति के भी भेद उत्पन्न होते हैं। गुणभेद के कारण भक्ति के मुख्य तीन प्रकार हैं—

(क) सात्विक भक्ति, (ख) राजसी भक्ति, (ग) तामसी भक्ति।

**(क) सात्विक भक्ति**—इस भक्ति के मुख्य तीन प्रकार हैं। स्वयं द्वारा किए बुरे कर्मों को दूर करने के लिए या पाप का प्रायश्चित करने के लिए जो भक्ति की जाती है वह सात्विक भक्ति का प्रथम प्रकार है। दूसरे प्रकार की भक्ति वह होती है जिसमें सत्कर्म अथवा अन्य किसी प्रकार के फल की आशा रखे बिना मात्र प्रभु की प्रसन्नता के लिये भक्ति की जाती है। प्रभु की प्रसन्नता की आशा रखे बिना अपना कर्तव्य समझकर निष्काम भाव से जो भक्ति की जाती है वह तीसरे प्रकार की सात्विक भक्ति है। सात्विक भक्ति के तीन प्रकारों के श्रवणादि भेदों के कारण नौ-नौ प्रकार होते हैं और इस प्रकार सात्विक भक्ति कुल मिलाकर सत्ताईस प्रकार की होती है।

**(ख) राजसी भक्ति**—इस भक्ति के भी तीन प्रकार हैं—

(क) यश पाने, अपनी कीर्ति बढ़ाने या प्रतिष्ठा एकत्रित करने के लिए जो भक्ति की जाती है।

(ख) ऐश्वर्य तथा सुख की प्राप्ति के लिए या सम्पत्तियों की प्राप्ति के लिए संकल्प करके जो भक्ति की जाती है। अपनी इन्द्रियों से जिस प्रकार के सुख भोगे जाते हैं वे सुख पाने के लिए जो भक्ति की जाती है।

(ग) इस प्रकार राजसी भक्ति के तीन प्रकार हैं। श्रवण-कीर्तन आदि नौ भेदों के कारण तीन प्रकार की भक्ति नौ-नौ भेद मिलाकर इस भक्ति के भी सत्ताईस प्रकार हैं।

हे शौनकजी ! **तामसी भक्ति**—तमोगुण के आश्रय वाली इस भक्ति को भी कर्म के आधार पर तीन भागों में बांटा गया है—

१. हिंसा का आश्रय लेकर क्रूरकर्म के लिए क्रोधायमान होकर गुस्से के आवेश में आकर जो भक्ति की जाती है।

२. मत्सर भाव का आश्रय करके तथा भेद दृष्टि रखकर जो भक्ति की जाती है।

३. जो भक्ति झूठे आडम्बर या ढोंग या दिखावे के लिए दम्भ का आश्रय लेकर की जाती है।

इस प्रकार तामस भक्ति के तीन प्रकार हैं। इस भक्ति के तीन प्रकार के भी श्रवण कीर्तनादि नौ भेद होने से कुल सत्ताईस भेद हैं। इस तरह प्रभु की सगुण भक्ति के इक्यासी प्रकार हैं। परन्तु प्रभु की निर्गुण भक्ति का मात्र एक ही प्रकार माना गया है।

हे शौनकजी–हे पुत्रो ! मैंने आपको सगुण-निर्गुण भक्ति के भेदों का वर्णन करके बताया। इन सब में प्रभु की निर्गुण भक्ति को सर्वश्रेष्ठ माना गया है। जो भक्त इस प्रकार की उत्तम निर्गुण भक्ति में ही अपना चित्त लगाते हैं ऐसे भक्तों को मैं अपनी समानता अर्पित करके अपने समीप रखता हूं। मेरे ये भक्त निरन्तर कर्म बंधनों से विहीन मुझमें ही अपना चित्त लगाकर नित्य नैमित्तिक सभी कर्म अहंकार के भेद बुद्धि के सिवाय करते हैं तथा दया, तप, बुजुर्ग के प्रति मान, सत्संग, धर्म का सेवन, कथा, श्रवण, यम नियम, वैराग्य, स्वाध्याय आदि सभी धर्मों का पालन करते मेरे भक्त अपना मन मुझमें रखकर इन सब कर्मों में अहंकार का त्याग करके सभी कर्म मुझे ही अर्पण करते हैं। इस प्रकार सत्पुरुषों द्वारा बनाए उत्तम धर्म मार्ग का अनुसरण करने वाले मेरे भक्त ही मेरे धाम को पाते हैं।

हे महामते ! आत्मा ईश्वर का अंश है और उससे ही सभी प्राणियों में रह रहे सभी आत्मा समान है। मनुष्य मात्र पर दया रखनी चाहिए तथा सबको समान दृष्टि से देखना चाहिए। यदि ऐसा किया जाए तो इस प्रकार आत्मा की आराधना परमात्मा की आराधना है। मनुष्यों को सभी प्राणियों के प्रति सद्भावना रखनी चाहिए तथा समान दृष्टि रखनी चाहिए। ऐसा न करके मात्र प्रतिमा के पूजन को ही ईश्वर पूजन समझा जाए तो यह सच्चा पूजन नहीं है, झूठ का आवरण है। उससे ईश्वर की प्रसन्नता प्राप्त नहीं होती। मूर्ति पूजा ईश्वर की प्रसन्नता पाने का नहीं बल्कि चित्त की शुद्धि करने का साधन है। जिनकी मूर्ति पूजा करके मन की शुद्धि नहीं होती तथा प्राणियों के प्रति भेद-भाव के विचार नहीं मिटते उनकी मूर्ति पूजा निष्फल है, व्यर्थ है। अपने में या अन्य में मात्र शारीरिक परिवर्तन या भिन्नता के कारण व्यक्ति को भेदभाव नहीं रखना चाहिए। क्योंकि प्रत्येक प्राणियों के हृदय में रहने वाला आत्मा परमात्मा का ही अंश है।

हे मुनेश्रेष्ठ ! प्रभु श्री विश्वकर्मा इस प्रकार अपने पांच पुत्रों को कहने लगे–हे ब्रह्मर्षि ! आप मेरे मुख से उत्पन्न हुए हो और इससे आप मेरे अपने ही हो। इसलिए आपको योग्य ज्ञान तो देना चाहिए। बालक का प्रथम गुरु उसका पिता है। मैं जो कुछ कह रहा हूं, ध्यानपूर्वक सुनिए। इस संसार में रहकर अनेक प्रकार के संकट होते हुए भी जो व्यक्ति किसी भी प्रकार का फल पाने की इच्छा के बिना ही प्रभु की भक्ति करते हैं वे ही मेरे अतिप्रिय व सर्वश्रेष्ठ भक्त हैं इस प्रकार की भक्ति से ही आत्मा तथा परमात्मा की प्रसन्नता पायी जा सकती है। जो व्यक्ति निरन्तर धर्मानुसार चलता है उसे ही प्रभु में भक्ति तथा श्रद्धा उत्पन्न होती है। उत्तम भक्ति के फल में

प्रभु उसे धन-पुत्र आदि, क्षणिक वैभव या विषय सुख नहीं देते। परन्तु उस मनुष्य पर कृपा करने की इच्छा वाले प्रभु उसकी अविनाशी तत्व स्वरूप आत्मा का परिचय कराते हैं।

हे शौनकजी ! तत्व पुरुष जिसे तत्व कहते हैं वह परमज्ञान ही आत्मा की पहचान का ज्ञान है। तत्व रूप ही मेरा परब्रह्म आदि पुरुष का स्वरूप जानें। हे पुत्रो ! इस परमात्मा रूपी तत्व को मुनि भी अपने अन्तर दृष्टि द्वारा अपने में ही लीन देखते हैं। परन्तु उसे देखने के लिए सारे शास्त्रों का अभ्यास करके मेरी भक्ति का आश्रय करना पड़ता है। अच्छी प्रकार आचरण धर्म के फलस्वरूप उत्पन्न भक्ति ही मनुष्य को प्रभु का सान्निध्य दिलाती है और इस प्रकार की उत्तम भक्ति जिसने प्राप्त की है ऐसे मेरे अनन्य भक्तों की सेवा करने से व्यक्तियों की सारी वासनाएं शान्त हो जाती हैं।

भगवद् भक्ति का नाद लगते ही सब विकारों का नाश हो जाता है तथा मनुष्य का मन सत्व गुणों का आश्रय करके प्रभु में स्थिर होता है। इस प्रकार प्रभु की भक्ति रूपी साधना से जिसका मन शांत हुआ है ऐसे मनुष्य अशांत संसार के जलते वातावरण में भी चित्त शांति देने वाले ऐसे परमतत्व का ज्ञान प्राप्त करते हैं, इस प्रकार जिसने परमतत्व का ज्ञान प्राप्त किया है उस व्यक्ति को अपने ही अन्तर में परमात्मा के सच्चे स्वरूप के दर्शन होते हैं। प्रभु के दर्शन होते ही उस मनुष्य का अहंकार समाप्त हो जाता है उसके मन के सभी तर्क-वितर्क का नाश होता है तथा उसको किसी भी प्रकार के कर्म बन्धन नहीं होते। भक्त निरन्तर प्रभु भक्ति में ही मस्त रहते हैं।

इस समस्त जगत को तीन गुण वाली त्रिविध प्रकृति के आश्रय में रहकर उत्पन्न करने वाले तथा उसी विश्व में स्वयं व्याप्त होकर सबका पालन करने वाले भगवान स्वयं सर्वत्र व्यापक होने के कारण सगुण होते हुए भी निर्गुण हैं। उन्होंने अपनी माया से इन सबका निर्माण करके उसमें चैतन्य स्वरूप में स्वयं प्रवेश किया है तथा इस समस्त विश्व का अपनी ही चैतन्य शक्ति से वे नियंत्रण करते हैं। अपनी चैतन्य शक्ति के प्रकाश के कारण वे स्वयं प्रकाश हैं और एक तथा अद्वितीय होते हुए भी अन्य शरीर के आकार में रहते हैं। इस तरह के परम चैतन्य स्वरूप में पंचमहाभूत, इन्द्रिय तथा मन और तीन गुणों द्वारा सारी रचना करता हूं और उसमें प्रवेश करके क्रीड़ा करता हूं।

हे मुने ! प्रभु विश्वकर्मा के वचन सुनकर मनुष्य आदि उनके पांच पुत्र बहुत हर्षित हुए। तत्पश्चात् प्रभु ने अपने उत्तम वरदान देने वाले हाथ को उनके मस्तक पर रखा। ऐसे पांच ब्रह्मर्षि गद्‌गद् वाणी से प्रभु श्री विश्वकर्मा की स्तुति करने लगे।

वे बोले—हे पिता ! हे देवाधिदेव ! हे महापुरुष ! आप खुद ही इस विश्व को उत्पन्न करके उसके अणु-अणु में व्याप्त होकर रहते हो तथा प्रलय काल के समय

उन सबमें से निकलकर फिर से एक होकर रहने वाले जब आपका चेतन स्वरूप इस समग्र सृष्टि में से अलग हो जाता है तब समग्र विश्व नष्ट होता है। इस प्रकार इस विश्व का अन्त करके उसे आप अपने ही में समा लेते हो। ऐसे अनुपम शक्ति वाले हे जगत् के पिता ! हम आपको प्रणाम करते हैं तथा हमारा चित्त इस संसार के सभी बंधन कारक विषयों से दूर रहकर विराट् प्रभु आपकी भक्ति में लीन रहे।

हे शौनकजी–हे देव ! हे दया के स्वामी ! हे सर्वव्यापी ! अनेक गुणों को धारण करने वाले होकर भी निर्गुण और अनेक स्वरूपों वाले होकर अरूप, परमात्मा ! हम आपको नमस्कार करते हैं तथा बार-बार आपकी भक्ति में दृढ़ होने वाले हमारे चित्त को स्वयं ज्योति स्वरूप निर्विकार आपके परम तेज में समाने की चेष्टा करते हैं।

हे शौनकजी–हे सर्वव्यापी देव ! हे समस्त विश्व के एकमात्र निर्माता ! हे सारे विश्व के पालनहार ! इस असार संसार के अनेक बन्धन रूपी आपकी दुःसाध्य माया को ब्रह्मादि देवता भी समझ नहीं सकते तथा वे भी इसमें फंसे हैं। मनु, मय आदि ब्रह्मर्षियों की इस प्रकार की वाणी सुनकर प्रसन्नचित्त आदि नारायण प्रभु श्री विराट विश्वकर्मा बोले–हे पुत्रो ! मैंने आपको दिव्य ज्ञान दिया है और उस ज्ञान के द्वारा आप इस संसार में चारों तरफ फैली मेरी माया को पार करके मुझे जल्दी ही प्राप्त करोगे। इस ज्ञान द्वारा दिव्य दृष्टि प्राप्त होगी और अपने हृदय में मेरा सत्य स्वरूप देखोगे। जीवन मुक्त होकर निरंतर मेरे ध्यान में मग्न होकर ऋषि-मुनियों को अति कष्ट से प्राप्त होने वाले मेरे परमधाम मोक्ष को प्राप्त करोगे।

सूतजी बोले–हे मुने ! इस प्रकार परम कृपा के भंडार समान प्रभु विश्वकर्मा अपने पांचों पुत्रों को भक्ति योग तथा उसके इक्यासी प्रकारों का सम्पूर्ण ज्ञान देकर तथा उत्तम आशीर्वाद देकर अपने आसन पर स्थित वे ध्यानस्थ हो गए। उनके पांचों पुत्र भी उनके स्वरूप को हृदय में उतार कर नेत्र बंद करके अन्तर में उनको पाने के लिए उनकी सगुण भक्ति में लीन हो गए।

# विश्वावसु महिमा

शौनक व अन्य ऋषिगण बोले–हे सूतजी ! विश्वावसु कौन था ? भगवान विश्वकर्मा की किस कारण उसने आराधना की ? उस अर्चना से उसे किस प्रकार का फल प्राप्त हुआ ? ये सब बताने की कृपा करें ?

सूतजी बोले–हे मुनिवर ! प्राचीन युग में बर्हिष नाम का राजा था। वह अपनी प्रजा का अच्छी तरह पालन करता था। दयालु राजा अनेक प्रकार से गरीबों की मदद करके अपनी दया दिखाता था। दुष्ट व्यक्तियों के लिए क्रूर था। इस प्रकार राजा

लोकप्रिय था तथा प्रजा का प्रेम पाता था। वह राजा अपने राज्य में विद्वानों की सभा रखता था। इस सभा में सानग ब्रह्मर्षि के वंश में प्रचलित भाभन्यु गोत्र का मृत्युंजय नामक विश्व ब्राह्मण भी था। ज्ञान विज्ञान को जानता था। छः शास्त्र तथा सभी दर्शन उसे कंठस्थ थे। अनेक प्रकार की सिद्धियां प्राप्त की थीं। यह ब्राह्मण अपनी उपासना के बल से जो चाहे कर सकता था। उसके सामने वाद-विवाद में कोई टिक नहीं सकता था। ऐसे ज्ञानी विद्वान ब्राह्मण को राजा का पुरोहित पद मिला था। राजा उससे यज्ञ, धर्मकार्य कराते थे। मृत्युंजय के पुत्र सीमंत का पुत्र विश्वावसु था।

हे मुने ! विश्वावसु जन्म से अपंग था। वह हिल-डुल सकने में असमर्थ था। ऐसे बालक की माता-पिता को बहुत चिन्ता थी। कुछ उमर बीतने पर विश्वावसु के पिता सीमंत तथा सुयशा को उसके प्रति चिन्ता होने लगी। अपने घर में पुरोहित पद से अनेक सुखों का वैभव होते हुए भी चिन्ता के कारण सीमंत एवं सुयशा पेट भरकर खा भी नहीं सकते थे। विश्वावसु से बड़े उसके चार भाई थे। जब तक सीमंत जीवित है तब तक विश्वावसु को दुःखी होना नहीं पड़ेगा। फिर भी अपने इस पुत्र की देखभाल उसके बड़े भाई किस तरह करेंगे यही चिन्ता उन्हें सताती रहती थी।

हे शौनकजी ! सम्पूर्ण अंग बेकार होने के बावजूद विश्वावसु कुछ बोलने की इच्छा करता, पर स्पष्ट रूप से बोल नहीं पाता था। उसके माता-पिता उसे नहलाते, कपड़े पहनाते, गोद में बिठाकर खाना खिलाते। माता-पिता के मन की बात को जानने वाले विश्वावसु के चार बड़े भाई भी उसकी देखभाल करते। चारों भाइयों ने शास्त्र का अभ्यास कर लिया था। अपने पिता का सारा बोझ उन्होंने उठा लिया था। वे पिता के साथ राज दरबार में जाते, यज्ञादि कार्यों को करते तथा पिता की अनुपस्थिति में यजमानों के अनेक प्रकार के धर्मकार्य कराते। यजमानों को सन्तुष्ट करते चारों पुत्रों से सीमंत को शांति थी। देवता समान चार पुत्रों के प्रति कभी-कभी सीमंत के मन में अविश्वास-सा उत्पन्न हो जाता। परन्तु अपाहिज पुत्र की ओर उनका अधिक ध्यान रहता था।

हे शौनकजी ! विश्वावसु बोल तो नहीं सकता था, फिर भी अपने माता-पिता को इस प्रकार की चिन्ता से मुक्त करने के लिए वह भी अनेक उपाय सोचता। यदि कोई उपाय मिलते थे उन्हें करने में वह असमर्थ था। बालक को तकलीफ न हो उसके लिए जिस मां ने अपने सभी सुख व स्वाद का त्याग कर दिया है ऐसी मां को जन्म देने के बाद भी लम्बे समय तक अपना हृदय दुखाना पड़े सहनीय नहीं था। उसी तरह पिता के मन में अशांति हो परन्तु विश्वावसु के लिए इनका कोई उपाय भी नहीं था उनके पास।

हे शौनकजी ! ईश्वर भी दयालु होता है। मनुष्य को एक अवसर अवश्य देता है। जिसका उपयोग करके प्राणी अपनी इच्छा सिद्ध कर सकता है। विश्वावसु के लिए भी ऐसा ही हुआ। एक बार सीमंत तथा सुययशा ने इलाचल की यात्रा करने

का निश्चय किया। सीमंत अपनी पत्नी से बोले—हे प्रियतमे ! सारे जीवन मैंने राजा तथा प्रजा की सेवा की है। उनके अनेक कार्य सिद्ध किए हैं। उसके बदले उन्होंने दक्षिणा में मुझे काफी मुद्रा भी दिया है। अब तो हमारे पुत्र भी मेरी अनुपस्थिति में सारे कार्य कर सकते हैं। अब मेरी इच्छा है कि एकत्रित द्रव्य का सदुपयोग हो तो अच्छा हो। जिससे लोक-परलोक भी सुधरे और उत्तम कार्यों में थोड़ा-बहुत द्रव्य खर्च करने की मेरी इच्छा है। तुम्हारी क्या इच्छा है ?

अपने स्वामी की इच्छा जानकर वह बोली—हे प्राणनाथ ! स्त्री के लिए इस संसार में ईश्वर पति है। पति को उससे उसकी इच्छा पूछनी ही नहीं चाहिए। स्त्री तो मात्र पति की सेवा करना ही जानती है पति की तमाम आज्ञाओं का पालन करने वाली स्त्री पति की आज्ञा के अनुसार कार्यों को पूर्ण करने के सिवाय और कुछ जानती ही नहीं है। सच्ची स्त्री पति की इच्छा को अपनी इच्छा मानती है। आपको तो मात्र आज्ञा करनी है आपकी प्रत्येक आज्ञा का पालन करके आपके बताए तमाम कार्य करने के लिए आपकी पत्नी सदा के लिए तैयार है। आप अपनी इच्छा खुशी से बताइए। आपकी जो इच्छा होगी उसे पूर्ण करने में मुझे कोई विघ्न नहीं है और आपकी आज्ञा का पालन करती मैं प्रत्येक परिस्थिति में आपकी छाया की भांति आपके साथ रहूंगी, अतः आप विश्वास रखें।

पत्नी के वचन सुनकर प्रसन्न सीमंत बोले—हे प्रिये ! शास्त्रों में नारी के लिए बहुत बड़ा स्थान है। जहां नारी की पूजा होती है वहां देवता का वास होता है।

हे शौनकजी ! जिस प्रकार एक मां अपने पुत्र को प्रेमपूर्वक अधिक खिलाती है उसी प्रकार स्त्री भी अपने पति को वैसे ही खिलाती है। वही स्त्री शयन समय में अपने प्रेम के रंग से अपने पति को ऐसा शयन सुख देती है जिससे पति अपनी स्त्री में खोकर क्षणभर के लिए सारे संसार को भूल जाता है। पति की सेवा में पत्नी उसी तरह अन्य कार्यों के बारे में पत्नी अपने पति को अनेक उपयोगी सलाह देकर एक उपदेशक के समान महान कार्य करती है। इस प्रकार के विविध स्वरूप में अपनी विविध शक्तियों का प्रदर्शन करने वाली स्त्री अबला नहीं सबला है।

सच्चे पुरुष को उन कार्यों में स्त्री की सहायता लेनी उचित है। अतः हे देवी ! इस समय दासी नहीं, मेरी सलाहकार बनकर आपको मेरे इस विचार में जो योग्य लगे उस प्रकार सहमति देनी है। उसी प्रकार का मुझे उत्तर दें। एकत्रित किये धन का एक भाग धर्म कर्म में व्यय करने की इच्छा से मैंने आपको साथ लेकर इलाचल की यात्रा का विचार किया है। अपने विचार मुझे कहो।

हे महामते ! सुयशा के मन में भी लम्बे समय से इलाचल की यात्रा करने की इच्छा थी। पति परमेश्वर की इच्छा जानकर उन्होंने तुरन्त अपनी सहमति दे दी। साथ में अपने छोटे पुत्र विश्वावसु को भी साथ लेने की अपनी इच्छा बतलाई। सीमंत भी विश्वावसु को ले जाने की इच्छा रखते थे। अतः उन्होंने भी सुयशा की इच्छा को

स्वीकारा। अपना सारा राजकार्य भार अपने ज्येष्ठ पुत्र को तथा यजमानों का कार्य अन्य तीन पुत्रों को सौंपकर अपने सभी कार्यों से निवृत्त होकर यात्रा की तैयारियां सीमंत करने लगे।

इलाचल की यात्रा के लिए लगभग बीस दिन की दूरी काटनी थी। अपनी पत्नी तथा अपंग बालक विश्वावसु को भी साथ लेना था इसलिए सभी प्रकार का सामान लेकर वे निकले थे। खाने-पीने तथा पहनने आदि का सारा सामान ले लिया था। एक दिन शुभ मुहूर्त देखकर सीमंत, सुयशा तथा विश्वावसु उत्तम रथ में बैठकर प्रभु श्री विश्वकर्मा के दर्शन करने के लिए चले।

हे मुनिश्वर ! आज विश्वावसु को बहुत हर्ष हो रहा था। अपने अपंग देह को बार-बार हर्षातिरेक के कारण इधर-उधर कर रहा था। उसके ऐसे बर्ताव को देखकर सबके मन प्रफुल्लित हो गए। सब यही समझ रहे थे कि यात्रा की बात सुनकर विश्वावसु को आनन्द हो रहा है। इस तरह अपने पुत्र को प्रसन्न देखकर सीमंत-सुयशा के हृदय को भी बहुत आनंद हुआ। वैसे तो दोनों के आनन्द का हेतु भिन्न था फिर भी आनन्द प्रत्येक को था।

हे शौनकजी ! अपने अपाहिजपन के कारण उसके माता-पिता को अत्यन्त दुःख महसूस होता है यह बात विश्वावसु अच्छी तरह समझ गया था। वह माता-पिता का दुःख दूर करने का विचार करता पर कोई उपाय नहीं मिलता था। अन्ततः उसने सोचा कि मैं एकान्त में जाकर ईश्वर की शरण में रहूं तो शायद माता-पिता के मन का दुःख कम होगा। पर निराधार होने के कारण दूर जाना असम्भव था। पर आज ईश्वर ने मौका दिया था। माता-पिता स्वयं उसे दूर ले जा रहे थे। अब प्रश्न था जाने के बाद वापस न आने का।

हे मुने ! विश्वावसु ने सोचा प्रभु की इच्छा हो तो यह प्रश्न भी हल हो जाएगा। व्यक्ति के पास उम्मीद की छोटी किरण आ जाए तो वह उस पर उम्मीद की बड़ी-बड़ी मीनारें खड़ी कर देता है। विश्वावसु के आनन्द की कोई सीमा न थी। महर्षि सीमंत का रथ शुभ मुहूर्त में सुयशा तथा विश्वावसु को लेकर इलाचल की ओर रवाना हुआ। मार्ग में अनेक धान के खेत तथा फल से भरपूर वृक्ष, रमणीय जलाशय, मनोहर उद्यान, छोटे-बड़े मार्ग तथा मार्ग के दोनों ओर अनेक प्रकार के छोटे-बड़े, गरीब-धनी व्यक्तियों को देखकर विश्वावसु को बहुत आनन्द होता था। उपवनों में निवास करते भिन्न-भिन्न प्रकार के पक्षियों की मधुर कलरव से उसकी आत्मा मानो प्रसन्न हो रही हो।

हे शौनकजी ! सोलहवें दिन सूर्य उदय होने में एक मुहूर्त की देर थी तभी इलाचल की अंचल में वे पहुंच गए। इस अंचल में से ही प्रभु विश्वकर्मा मन्दिर की ध्वजाएं इलाचल के शिखर पर दिखाई देने लगीं। जैसे ही रथ इलाचल के अंचल में पहुंचा तो सीमंत ने सारथि को रथ खड़ा करने के लिए कहा। सीमंत रथ में से नीचे उतरे तथा यात्रा की थकान से जिनका शरीर सामान्यतः अस्वस्थ है ऐसी सुयशा को

सीमंत ने अपने दायें हाथ का सहारा देकर नीचे उतारा और विश्वावसु को अपने कंधे पर बिठाया। पत्नी के साथ इलाचल पर चढ़ने की शुरुआत की। सारथि भी उनके साथ जाने लगा।

हे शौनकजी ! सपरिवार महर्षि सीमंत इलाचल पर पहुंचे तथा विश्वकुंड में स्नान करके परमकृपालु श्री विश्वकर्मा के देवालय की ओर गए। सूर्य की पहली किरण का प्रकाश अभी इलाचल की सर्वोच्च चोटियों को स्पर्श करने की तैयारी कर रहा है। उस समय पुजारीजी ने भगवान के मंदिर के द्वार खोले। महर्षि भी उसी समय मंदिर की सीढ़ियां चढ़े। सूर्यनारायण भी मानो महर्षि सीमंत के साथ प्रभु के दर्शन करने की इच्छा करते हों उसी तरह अपनी प्रथम किरण से मंदिर की फर्श पर मानो सोने की जाजिम बिछा दी हो उस तरह लगने लगी। ऋषि-मुनि मंदिर के पट्टांगण में आकर वेदमंत्रों का सुन्दर उच्चारण करने लगे। पुजारी जी एवं ब्राह्मण प्रभु की स्तुति करने लगे। चारों ओर आनन्दमय पवित्रता छा गई।

हे महामुने ! मंदिर के अन्दर के द्वार खुले तथा सबने प्रभु के दर्शन किए। तत्पश्चात् वेदमंत्रों के उच्चारण के साथ पुजारी जी ने प्रभु का पूजन किया। आरती, प्रसाद आदि सब विधिपूर्ण होने के पश्चात् पत्नी सहित महर्षि सीमंत प्रभु की मूर्ति के समीप गए तथा प्रभु के चरण स्पर्श किए। फिर दोनों पति-पत्नी ने अनेक प्रकार के नियम व व्रत किए। विश्वकुंड के पास पर्णकुटि बनाकर दोनों अपने पुत्र सहित नियम को धारण करते रहने लगे। सारथि का अतिथिगृह में रहने का प्रबन्ध कर दिया। इस प्रकार चौदह दिन बीत गए। पंद्रहवें दिन प्रातःकाल एक आश्चर्यजनक घटना सामने आई।

हे ऋषिवर ! प्रतिदिन पति-पत्नी प्रातःकाल ब्रह्म मुहूर्त में बालक को लेकर विश्वकुंड में स्नान करने के लिए जाते थे। आज भी वे विश्वकुंड में स्नान करने गए। महर्षि सीमंत स्नान करके विश्वकुंड के किनारे पर बैठकर नित्य कर्म कर रहे थे। सुयशा अपने लाडले पुत्र विश्वावसु को स्नान करा रही थीं तभी उनके हाथ से बालक गिर पड़ा और एक विचित्र आकृति वाली भयंकर शिला के साथ टकराया। प्रभु की माया की कोई सीमा नहीं ऐसी भयंकर शिला के साथ एक अपंग बालक जोर से टकराए तो उसका क्या हो यह मात्र कल्पना करने से पता लगता है। उस मां की क्या स्थिति होगी ? बालक हाथ में से गिरते ही सुयशा के मुख से भयंकर चीख निकल पड़ी।

हे शौनकजी ! महर्षि भी अपनी पत्नी की चीख सुनकर उधर आने लगे इतने में पत्थर से टकराने के बाद वह बालक उन दोनों को आश्चर्य में देखकर एकाएक जमीन पर खड़ा हो गया। अपाहिज गूंगा बालक 'ओ पिताजी, ओ माताजी' बोलता-बोलता दौड़कर अपने माता-पिता के पास आकर खड़ा हो गया। अद्भुत आश्चर्य देखकर दोनों पति-पत्नी अवाक रह गए। बालक भी अपने अवाक

माता-पिता को देखकर उनके चरणों में गिर पड़ा। बार-बार स्नेहवश होकर अपनी गोद में लेते, चुम्बन करते-करते वे दोनों हर्षाश्रु बहाने लगे। प्रभु की लीला अपरम्पार है। गूंगे व अपंग बालक को पत्थर से टकराने पर भी चोट नहीं आई। सुन्दर उसका देह बन गया।

हे मुने ! इस प्रकार का चमत्कार देखकर अपनी यात्रा तथा व्रत को सफल मनाते हुए पति-पत्नी मनोमन प्रभु की दया तथा लीला का गुणगान करते अपने पुत्र को लेकर प्रभु के मंदिर में ले गए। आज उनके व्रत का अन्तिम दिन था। दोनों ने बालक को साथ रखकर उत्तम विधि से पूजन किया तथा अच्छी तरह ब्राह्मणों को खिलाकर उत्तम प्रकार के दान तथा दक्षिणा देकर ब्राह्मणों के आशीर्वाद ग्रहण किए।

हे शौनकजी ! हे मुनेश्रेष्ठ ! अपने स्थल पर आकर दोनों ने तय किया कि आज की रात इलाचल पर बिताकर कल सुबह ही हम यहां से वापस घर को जायेंगे। तभी विश्वावसु उनके पास आया और बोला—हे माता ! हे पिता ! आपने मुझे जन्म देकर मुझ पर बहुत बड़ा उपकार किया है। आपको बारह वर्ष तक मेरा बोझ उठाना पड़ा। आज आप पर प्रभु विश्वकर्मा जी ने कृपा की है। उनके अनुग्रह से मुझे दिव्य देह प्राप्त हुआ है। मेरा कर्तव्य है कि प्रभु के इस अनुग्रह का लाभ लेकर अपनी इस देह द्वारा आप दोनों की सेवा करनी चाहिए। हे माता-पिता ! यदि आपके हृदय को दुःख न हो और आप दोनों इजाजत दो तो मैं इलाचल पर प्रभु के सान्निध्य में रहने की इच्छा करना चाहता हूं। जिसने मुझ पर इतना बड़ा अनुग्रह किया है उस प्रभु की मुझसे जितनी हो सके, सेवा और आराधना करनी है और इसके बाद यदि प्रभु आज्ञा देंगे तो आपका यह पुत्र आपकी सेवा में भी उपस्थित रहेगा। अतः हे माता-पिता ! यदि आपको दुःख न हो तो मुझे यहां रहने की इजाजत दें।

हे मुने ! पुत्र के ऐसे वचन सुनकर प्रभु के महान अनुग्रह का स्मरण करते उन दोनों ने सोचा कि वास्तव में प्रभु ने इस पुत्र को हमें देने का विचार किया होगा तो प्रभु उसे हमारे पास आने की आज्ञा जरूर देंगे। जिस प्रभु ने शरीर दिया है वह शरीर प्रभु की सेवा के काम न आए तो महान अनर्थ होगा। प्रभु द्वारा अनुग्रह करके दिए इस दिव्यदेह वाले पुत्र को प्रभु की सेवा करनी चाहिए और हम तो पुत्र की अपाहिजता दूर होने के कारण निश्चिन्त हो गए हैं यही परम लाभ है। माता-पिता संतान को पाल-पोसकर बड़ा करते हैं तो कुछ पाने की आशा से नहीं करते। यदि कुछ पाने की आशा से पुत्र को पालते-पोसते हैं तो उसमें माता-पिता का स्वार्थ है।

दोनों ने अपने पुत्र विश्वावसु को प्रभु की सेवा के लिए इलाचल पर रहने की इजाजत दे दी। दूसरे दिन प्रातः होने में थोड़ी देर बाकी थी। उस समय विश्वकुंड में स्नानादि करके पवित्र होकर प्रभु के दर्शन किए तथा अपने पुत्र को अंतःकरण से आशीर्वाद देकर अपने देश के लिए सारथि को लेकर निकल पड़े। माता-पिता को सजल नेत्रों से विदाई देकर विश्वावसु भी पर्णकुटि के द्वार के पास खड़ा रहा तथा

काफी समय तक अपने माता-पिता के प्रेम को याद करके आंसू बहाता रहा।

हे मुने ! इधर सारथि सीमंत एवं सुयशा को लेकर जिस मार्ग से आया था उसी मार्ग से चल पड़ा। पति-पत्नी प्रभु की लीलाओं का स्मरण करते थे उनकी आंखों से हर्ष के आंसू बह रहे थे और वे प्रभु के चमत्कार से विस्मित होकर अपने नगर की ओर जा रहे थे। जिस दिन वे लोग निकले थे तब से डेढ़ महीने बाद वे घर वापस पहुंचे।

हे मुने श्रेष्ठ ! घर आने के बाद भी अपने पुत्र पर प्रभु द्वारा किए अनुग्रह को याद करके ब्रह्म भोजन कराया तथा ब्राह्मणों को उत्तम प्रकार के दान एवं स्वर्ण आदि देकर तृप्त किया। राजा सहित सभी नगरवासियों ने जब विश्वावसु पर प्रभु के अनुग्रह की बात जानी तब सब प्रभु की अगाध महिमा को जानकर अत्यन्त हर्षित हुए।

सूतजी ने कहा—हे शौनकजी ! इस प्रकार माता-पिता को विदा करने के बाद विश्वावसु जीवन कार्य में लग गया। केवल प्रभु के मंदिर में उनकी प्रतिमा के समीप बैठकर उसने परमात्मा श्री विश्वकर्मा में अपने आपको अर्पण कर दिया। जन्म से अपाहिज होने के कारण जिसने न तो योग्य संस्कार पाए और न ही ज्ञान प्राप्त किया था ऐसा विश्वावसु दिन-रात प्रभु की पूजा तथा ध्यान के सिवाय और कुछ नहीं जानता था।

हे महामुने ! प्रातः उठकर वह विश्वकुंड में स्नान करता तथा पुजारी द्वारा बताए नित्यकर्म करता। प्रभु के मंदिर में जाकर मंदिर के प्रत्येक कार्य में संलग्न रहता जैसे सफाई, सामग्री एकत्रित करना आदि। बाकी समय प्रभु की मूर्ति के ध्यान में बैठा रहता। यही उसका दैनिक कर्म था। सायंकाल अपने सब कार्यों से निवृत्त होकर जब वह मूर्ति के सामने ध्यान लगाकर बैठता तब प्रभु में इतना तन्मय हो जाता कि अपने शरीर का भी ध्यान नहीं रहता था। नित्यानुसार काफी रात तक अपनी पर्णकुटि में जाने के बजाए कई बार सारी रात वहीं रहता और दूसरे दिन प्रातःकाल जब पुजारीजी आकर उठाते तब ही उठता। प्रभु के ध्यान में वह इतना एकाग्र हो जाता कि पुजारी जी यही समझते कि बालक थकान के कारण यहीं सो गया है। पर कोई कुछ भी कहे उसकी विश्वावसु को चिन्ता नहीं थी। प्रभु परायण जीवन बिताता था।

हे शौनकजी ! विश्वावसु की तपस्या को एक वर्ष बीतने के पश्चात् प्रभु श्री विश्वकर्मा ने सोचा अपनी सेवा करने वाले तपस्वी ब्राह्मण पुत्र के लिए कुछ करना चाहिए। उन्होंने महर्षि अगस्त्य को स्वप्न में दर्शन दिए और कहा—हे मुनि ! आपके आश्रम की उत्तर की ओर एक पर्णकुटि में सीमंत का पुत्र विश्वावसु रहता है। प्रातःकाल होते ही ब्रह्ममुहूर्त में आप उसके सभी संस्कार करके उसे मंत्रोपदेश दो। क्योंकि वह बालक बिल्कुल नासमझ होते हुए भी मेरी सेवा कर रहा है। जिस प्रकार

ध्यानमग्न हो जाता है यह देखकर मुझे उसके प्रति अत्यन्त स्नेह होता है। अतः संस्कारहीन बालक को योग्य संस्कार देकर ब्रह्मणत्व प्रदान करें।

हे मुनेश्रेष्ठ ! निरन्तर प्रभु श्री विश्वकर्मा की प्रसन्नता के लिए उनके ध्यान में मग्न बनकर तप करते महर्षि अगस्त्य को इस प्रकार का स्वप्न आते ही वे तुरन्त समाधि से उठे। महर्षि तुरन्त खड़े हुए तथा विश्वकुण्ड में स्नान करने के बाद उन्होंने अग्नि में होम किया। एक ब्रह्मचारी को विश्वावसु को बुलाने के लिए भेजा। उसी समय विश्वावसु भी विश्वकुण्ड में स्नान करने के बाद अपने नित्यकर्म से निवृत्त हुआ था। विश्वावसु तुरन्त ब्रह्मचारी के साथ अगस्त्य ऋषि के आश्रम में गया। उसने एक हाथ में आसन तथा दूसरे हाथ में पात्र धारण किया था। मस्तक में भस्म लगाया था तथा गले में माला पहनी थी। योगी पुरुष के समान तेज उसके मुख पर था। मन में प्रभु की लगन थी।

तेजस्वी बालक को देखकर महर्षि अगस्त्य बहुत प्रसन्न हुए। फिर प्रभु की आज्ञा को अपना कर्तव्य समझने वाले बालक की इच्छा जानकर महर्षि अगस्त्य उसे अपनी यज्ञशाला में ले गए। यहां उन्होंने बालक के सभी संस्कार किए तथा उसे गायत्री मंत्र का उपदेश दिया। गुरु दक्षिणा के बारे में पूछने पर, महर्षि अगस्त्य गुरु दक्षिणा लेने से इंकार करते हुए बोले—हे वत्स ! मैंने तेरे लिए जो कुछ किया है वह प्रभु की आज्ञा से किया है और मेरे इस कार्य के बदले प्रभु मुझे दक्षिणा देंगे। फिर भी विश्वावसु नहीं माना तो अगस्त्य मुनि ने कहा—हे पुत्र ! नित्य यज्ञ के लिए काष्ठ तू ले आना। इस प्रकार जब तक तू इलाचल के ऊपर रहे तब तक मेरा यह कार्य रोज नियमपूर्वक करना। इसी को तू गुरु दक्षिणा मानना। बालक विश्वावसु ने गुरु की आज्ञा को प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण किया। अब गुरु की आज्ञानुसार नित्यकर्म से निवृत्त होकर गायत्री मंत्र का निरन्तर जप करने लगता। गुरु के उपदेश से गायत्री की आराधना करते विश्वास को एक वर्ष कब बीता पता ही न चला। अब तक उसने चौबीस लाख गायत्री का जप किया। गायत्री की आराधना करने से उसके तेज़ में और बढ़ोत्तरी हो गयी थी। वह अब मात्र फल-फूल पर ही निर्भर रहकर जीवन बिताता था। उसकी भक्ति में दिन-ब-दिन बढ़ोत्तरी होने लगी। उसकी तपस्या से मानो उसमें एक प्रकार की आकर्षण उत्पन्न हो गयी थी।

हे मुनिवर ! इस तरह अपने नियम में रहकर नित्य प्रभु श्री विश्वकर्मा की सेवा में लीन रहते ब्राह्मण पुत्र विश्वावसु की प्रतिभा को ध्यान में रखते हुए एक दिन महर्षि अंगिरा ने उसे प्रभु के अष्टाक्षर महामंत्र का उपदेश किया। विश्वावसु को और क्या चाहिए था। उसने दूसरे दिन से इसकी आराधना शुरू कर दी। प्रभु के मन्दिर के बिल्कुल सामने ही विश्वकुंड के किनारे अपना आसन लगाया। प्रारम्भ में उसे थोड़ी-बहुत तकलीफ हुई पर धीरे-धीरे उसने अपना आसन स्थिर कर लिया। अपनी इन्द्रियों का निग्रह करके अपने चित्त को प्रभु में लगाकर एकाध सप्ताह में, वर्षों से

तपस्या करने वाले योगी की तरह वह लगने लगा। वह प्रभु के अष्टाक्षर मंत्र में इतना लीन हो गया कि भाग्य से ही आठ-दस दिन में एक बार प्रभु के दर्शन के लिए अपने आसन से उठकर मंदिर में जाता। ऐसा करते-करते उसकी आसन सिद्धि बढ़ गयी। तीन महीने बाद फिर आसन जमाया। इस तरह फिर एक वर्ष बीत गया। लगभग चौंसठ लाख जप की तो उसने गिनती की पर प्रभु में एकाग्र होने के कारण गिनती का भी ध्यान न रहा।

सूतजी ने कहा—हे शौनकजी ! उसकी इतनी उग्र तपस्या देखकर प्रभु श्री विश्वकर्मा उन पर प्रसन्न हुए तथा समाधि में उन्हें प्रभु ने दर्शन दिए। अति दुसह्य तेज की चमक हुई तथा उस तेज के बिम्ब से एक आकृति उत्पन्न हुई। अस्पष्ट आकृति धीरे-धीरे स्पष्ट स्वरूप धारण करने लगी। विश्वावसु ने समाधि में ही विश्वकर्मा के दर्शन किए। समाधि में प्रभु के दर्शन करते विश्वावसु की समाधि उतरने लगी। धीरे-धीरे अपने नेत्र खोले। शरीर को समतल रखते हुए उन्होंने जैसे ही नेत्र खोले तो सामने विराजमान प्रभु श्री विश्वकर्मा के दर्शन हुए।

हे मुनेश्रेष्ठ ! विश्वकुण्ड के किनारे दिव्य वटवृक्ष की घनी छाया में एक दिव्य सिंहासन पर विराजमान पांच मुख वाले तथा प्रत्येक मस्तक पर दिव्य रत्नों की अलौकिक शोभा को धारण करते बहुमूल्यवान मुकुट हैं। अपनी दसों भुजाओं में आयुध धारण किए हैं। सर्वांग सुन्दर अवयवों वाले, दिव्य देह को धारण करने वाले प्रभु के कंधे पर ब्रह्मसूत्र तथा अंग पर पीले वस्त्र शोभित हो रहे हैं। इन्द्रकार प्रभु के दर्शन विश्वावसु को हुए। मनु मयादि पांच पुत्र प्रभु के पास ध्यानस्थ बैठे थे एवं अनेक ऋषि वहां प्रभु की सेवा के लिए खड़े थे।

हे महामते ! इस प्रकार दिव्य स्वरूप रखने वाले प्रभु को अपने पास देखकर विश्वावसु की आंखें छलक पड़ीं। वे कुछ बोल नहीं सकते थे अतः प्रभु के पास जाकर उनके चरणों में मस्तक रखकर रो पड़े। इस प्रकार की उनकी एकाग्र भक्ति से प्रसन्न प्रभु ने अपने चरणों में पड़े उनके मस्तक पर अपना निर्मल हाथ रखा। प्रभु के आहलादक अंग का स्पर्श होते ही उनके जन्म-जन्म के पापों का नाश हो गया उन्हें उत्तम ज्ञान रूपी धन की प्राप्ति हुई। विश्वावसु की जीभ पर सरस्वती देवी ने कृपा की और तुरन्त ही वे अनेक प्रकार के उत्तम वचनों से प्रभु की वन्दना करने लगे।

हे शौनकजी ! विश्वावसु की इस प्रकार की स्तुति से प्रसन्न होकर प्रभु ने सबके देखते गम्भीर वाणी में कहा—हे वत्स ! तेरी मेरे प्रति एकनिष्ठा तथा मेरे लिए तेरे चित्त की एकाग्रता देखकर मैं तुझ पर बहुत प्रसन्न हुआ हूं। लाखों वर्षों से तपस्या करके ऋषि-मुनि जिस सिद्धि को नहीं पा सकते तथा योगी योगबल के प्रभाव से जिस जगह नहीं पहुंच सकते। उस परम धाम तथा सिद्धि को तूने थोड़े समय में प्राप्त कर लिया। मैं तुझ पर प्रसन्न हूं जो भी वर की इच्छा हो मांग ले मैं तुझे देने के लिए तैयार हूं।

हे मुनिश्रेष्ठ ! प्रभु के वचन सुनकर विश्वावसु भरे कंठ से बोले—हे नाथ ! आप सब कुछ जानते हैं। आपने दास को उत्तम वचन देकर जो महत्वता दी है यही ठीक है। हे प्रभु ! मैं निरन्तर आपकी सेवा में रहूं तथा आपके इस स्वरूप में दृढ़ मेरा मन संसार के मोह-जाल में न फंसे यही मुझे चाहिए। विश्वावसु के स्वार्थ रहित वचन सुनकर प्रसन्न चित्त प्रभु बोले—हे पुत्र ! मैं जब प्रसन्न होता हूं तब मेरी प्रसन्नता फल रहित नहीं होती अतः हे वत्स ! तेरी इच्छा जिस वरदान को मांगने की है वह मांग।

हे शौनकजी ! विश्वावसु बोले—हे प्रभु ! आपका साक्षात्कार होना यही आपकी भक्ति का सर्वश्रेष्ठ फल है और यह फल मुझे अनायास मिल गया है इसलिए मांगने के लिए अब कुछ है ही नहीं। फिर भी आप मुझे मांगने के लिए कहते हैं तो मैं आपसे इतना ही मांगता हूं कि मेरे वृद्ध माता-पिता ने मेरी सेवा की है तो उसके बदले उनकी सेवा करने का थोड़ा मौका आप मुझे दें। यदि आपकी आज्ञा हो तो माता-पिता के अंत काल तक उनकी सेवा करके कृतकृत्य होऊं तथा उनके ऋण से मुक्त होऊं और इसके बाद फिर आपकी सेवा में खो जाऊं। यही मेरी इच्छा है।

हे शौनकजी ! उनके वचन सुनकर प्रभु बोले—हे विश्वावसु ! मैं जो कहूं उसे तू ध्यानपूर्वक सुन ! आज से तीन दिन बाद पाताल में रहने वाला भय नामक दैत्य यहां आयेगा और यहां रहने वाले ऋषि-मुनियों के धर्म कार्य में विघ्न डालेगा। गायत्री के प्रभाव से तथा विश्वकर्मा महाविद्या की सहायता से तू उस दैत्य का संहार करेगा। महाविद्या के आकर्षण के बल से दैत्य की सारी माया विद्या खींचकर निस्तेज करके उसे तू वापस पाताल में भेज देगा। विश्वकर्मा महाविद्या के प्रभाव से तुझे सभी प्रकार के ज्ञान-विज्ञान की प्राप्ति होगी। मुझमें व्याप्त सभी प्रकार के ज्ञान को तू प्राप्त करेगा। भय दैत्य के जाने के बाद सातवें दिन तेरे पिता को तेरी आवश्यकता पड़ेगी। हे पुत्र ! दैत्य भय का विनाश कर तू तुरन्त यहां से पूर्व दिशा में प्रस्थान करना और माता-पिता को आनन्द देकर उनकी आत्मा को सन्तुष्ट करना। अपने माता-पिता की सेवा के बाद ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते तू अनेक उत्तम कार्यों को सिद्ध करने के बाद इलाचल पर आकर वास करना तथा तपश्चर्या के बल से योग मार्ग का आश्रय लेकर इस शरीर का त्याग करना।

हे मुनेवर ! विश्वावसु को ऐसे वचन कहकर प्रभु सबके देखते वहां से अन्तर्ध्यान हो गए। विश्वावसु भी प्रभु के वचनों को स्मरण करते विश्वकुण्ड के किनारे स्थित अपनी पर्णकुटि में आए तथा बार-बार प्रभु के वचनों का स्मरण करके अपने अन्तर को आनन्दित करके प्रभु के बताये समय की राह देखने लगे। इधर यात्रियों के मुख से अपने पुत्र विश्वावसु की उन्नति के समाचार सुनकर माता-पिता प्रसन्न होते तथा वे सोचने लगे कि विश्वावसु के दर्शन पता नहीं कब होंगे ? देव ने दिया और देव को सौंपे पुत्र से जब भगवान की इच्छा होगी तब मिलाप करा देंगे।

हे शौनकजी ! आनन्दपूर्वक सीमंत परिवार का समय बीत रहा था कि अचानक उन पर विपत्ति आ गई। राजा महर्षि के नगर में उस समय कहीं से चार धूर्त पण्डित आ गए। ये पण्डित अनेक प्रकार की छद्म विद्या तथा छल-कपट को जानने वाले थे। उनकी शर्त अजीब थी। विवाद में जो पण्डित हारे उसको वहां का राजा कत्ल करे। मायावी पण्डित जब इस नगर में आए तब नगर में रहने वाले सभी पण्डित चिन्ता में डूब गए। कई पंडित तो राज्य छोड़कर चले गए पर राजदरबार के पंडित अधिकारी सीमंत थोड़े ही भाग सकते थे। सीमंत तथा उनके पुत्र गहरी चिन्ता में पड़ गए। इन पंडितों का यह नियम था कि जिस शास्त्र के विषय का विवाद करते उस शास्त्र का विषय पहले ही बता देते थे।

हे शौनकजी ! राजा बर्हिष के राज्य में विचित्र नियम था। उसके राज्य में ऐसी प्रणाली थी कि जो राजा राजगद्दी पर बैठे उसे अपने लिए नया निवास-स्थान बनाना चाहिए। इस नियम के आधार पर राजा के सात पूर्वजों के निवास स्थान एक पंक्ति में थे। उनके साथ राजा बर्हिष का भी महल था। ये सब महल एक ही प्रकार के थे तथा राजशिल्पी की सूचनानुसार बनाए गए थे। अजीबो-गरीब बात तो यह थी कि सभी महल जमीन से एक स्तम्भ के आधार पर हवा में थे। यहां पर आए चारों पंडितों ने इस विषय पर विवाद करने का विचार किया उनका यह कहना था कि एक स्तम्भ पर स्थित महल शत्रु के आक्रमण से राजा तथा उसके परिवार का रक्षण नहीं कर सकता। क्योंकि यदि दुश्मन एक ही खम्भे पर आक्रमण करे तो सारा राजमहल मिट्टी में मिल जाएगा और सपरिवार राजा यमलोक पहुंच जाएगा। अतः राजमहल बनाने की सलाह देने वाले पुरोहित को राजनीति तथा शिल्प का सम्पूर्ण ज्ञान नहीं है। ऐसे पुरोहित को राजा दंड दे।

हे मुनेश्रेष्ठ ! विवाद के लिए ऐसा विचित्र विषय देखकर सीमंत तथा उनके पुत्र गहरी चिन्ता में पड़ गए। क्योंकि पीढ़ियों से राजपुरोहित का कार्य उसके घर वाले ही करते थे। ये सारा आक्षेप अपने पर आया था। इस प्रकार यदि यह विषय अपने विरुद्ध में हो तो राजपुरोहित का कार्य जाए। प्राण खोने पड़ें इसकी सीमंत को चिन्ता नहीं थी, उन्हें तो यही चिन्ता थी कि सात पीढ़ियों से राजपुरोहित का पदभार धारण करने वाले बाप-दादाओं की कीर्ति एक ही क्षण में इन पाखंडी पंडितों के हाथों नष्ट हो जाएगी। इस चिन्ता ने घर के सभी लोगों की नींद हराम कर दी।

हे शौनकजी ! बर्हिष राजा ने अपने राज्य में ढिंढोरा पिटवा दिया था तथा पंडितों की सभा में होने वाली चर्चा आदि सारी बातें विस्तारपूर्वक घोषित कर दी थीं। देखते-देखते पन्द्रह दिन बीत गए। सभा होने वाले दिन प्रातः नगर के सभी लोग सभामंडप की ओर जाने लगे। राजा की घोषणा से दूर-दूर के लोग इस चर्चा सभा को देखने के लिए आने लगे। दूर-दूर से पंडित भी आते थे। चर्चा का विचित्र विषय सुनकर वाद-विवाद में उतरने की किसी भी पंडित की इच्छा नहीं थी। नगर के सभी

पंडितों को बहुत चिन्ता थी। सीमंत ऋषि के प्रति सबको प्रेम था और सुबह होते ही सीमंत के यहां पंडित आने लगे। सीमंत से अनेक प्रश्न पूछ रहे थे पर सीमंत सबसे यही कह रहे थे जैसी प्रभु की इच्छा।

हे महामुने ! देवी सुयशा बोली—हे नाथ ! हमारे लाड़ले पुत्र विश्वावसु का कोई समाचार नहीं है। यदि आपको उचित लगे तो उसे बुला लीजिए। मुझे विश्वास है कि वह इस संकट से हमें बचायेगा। क्योंकि बाहर वह प्रसिद्ध है यह आप जानते हैं। पत्नी के वचन सुनकर सीमंत बोले—हे देवी ! आपको पता है कि वह पुत्र हमने प्रभु को सौंप दिया है और वह इतनी दूर है कि उसे बुलाने के लिए एक मास का समय चाहिए। हमने उसे प्रभु के चरणों में सौंप दिया है। प्रभु की इच्छा के बिना उसे नहीं बुला सकते। जिस व्यक्ति को प्रभु में पूर्ण विश्वास हो उसे किसी भी बात की चिन्ता नहीं करनी चाहिए। सीमंत के सभी पुत्र इस विपत्ति से बचने के लिए ग्रंथ देख रहे थे तथा मुसीबत को दूर करने का उपाय सोच रहे थे।

हे मुनेश्रेष्ठ ! हे शौनकजी ! इधर तीन दिन बाद भय दैत्य इलाचल पर आया तथा अनेक प्रकार की वस्तुओं से ऋषि-मुनियों के धर्म कार्यों में बाधा डालने लगा। उन्हें कष्ट देने लगा। जब भय का कष्ट ऋषि सहन न कर पाए तब प्रभु के वचनों को जानने वाले ऋषि विश्वावसु की शरण में आए। विश्वावसु ने तुरन्त गायत्री मंत्र पढ़कर जिस दिशा में भय दैत्य था उस दिशा में पानी की अंजलि दी। इस कारण दैत्य जहां था वहां पुतला बन गया। फिर विश्वकर्मा महाविद्या से प्रभु की आराधना करके विश्वावसु ने आकर्षण विद्या से भय की सारी विद्या का हरण कर लिया। उस दैत्य को अपने ज्ञान के प्रभाव से सीधे पाताल में भेज दिया। इस प्रकार छठे दिन भय को मात करके सातवें दिन सुबह प्रभु की आज्ञा लेकर विश्वावसु माता-पिता के पास जाने के लिए तैयार हुए।

हे शौनक ! मैं आपको पहले बता चुका हूं कि चर्चा आज होने वाली है। बर्हिष के नगर में सब प्रकार तैयारियां भी हो गई थीं। शुभ समय होते, एक-एक करके सब पंडित सभा में आने लगे। अभी समय में थोड़ी देर थी। राजा, पुरोहित तथा बाहर से आये चार पंडितों के आसन खाली थे। इसके अलावा सारा सभा स्थल भर गया।

हे महामते ! विश्वावसु एक हाथ में कमंडल तथा दूसरे हाथ में दंड लेकर व बगल में आसन रखकर खड़ाऊं पहने चलने को तैयार हुए, अपने इष्टदेव का तथा माता गायत्री का स्मरण करके उन्होंने अपने घर जाने का संकल्प किया तभी मीठे शांत धरधराहट खड़ाऊं उन्हें लेकर हवा में उड़ने लगी। इलाचल पर रहने वाले प्राणी इस आश्चर्य को देखते रह गए। थोड़े समय में विश्वावसु अपने नगर के पास पहुंच गए। किसी का ध्यान इस ओर आकर्षित न हो इस कारण वे नगर के बाहर ही आकाश में से नीचे उतरे तथा पैदल चलकर अपने पिता के घर जाने लगे।

हे मुने ! महर्षि सीमंत अपने पुत्रों के साथ राज्य मंडप में जाने की तैयारी करने

लगे। सुयशा देवी ने अखण्ड दीप की स्थापना की तथा उसका पूजन किया। अपने पति तथा चारों पुत्रों का मंगल तिलक किया। आज उनके पतिव्रत की कसौटी थी। पति एवं पुत्र सभा मंडप में जाने लगे। तब वे द्वार तक उनके साथ आयीं। अन्तिम विदाई दे रही हो ऐसे घर के द्वार तक पहुंचते उनका हृदय भर गया। उन्होंने हाथों से अपना मुख ढंक लिया। वे रोने लगीं। पिता-पुत्र सुयशा को आश्वासन देने लगे। पीछे मुड़ते ही एक धीर-गम्भीर आवाज पिता-पुत्र को सुनाई दी—जय हो ! जय हो ! महर्षि सीमंत की जय हो ? माता-पिता प्रणाम ! बन्धु प्रणाम ! आपका विश्वावसु आपको बंदन करता है।

हे शौनकजी ! इतना बोलते-बोलते विश्वावसु उन सबके पास पहुंच गए। जिस पर पूर्ण विश्वास था ऐसे लाडले पुत्र को अच्छे मौके पर आते देखकर सुयशा देवी को बहुत सन्तोष हुआ। उसने दौड़कर जमीन पर दंडवत कर रहे अपने पुत्र विश्वावसु को उठाकर गले से लगाया। सभा का समय होने वाला है। पूर्ण होश में आने के वाद उन्होंने अपने इस पुत्र को आशीर्वाद देकर सभा में जाने के लिए विदा किया। अब उनके हृदय का संताप दूर हो गया था। उन्हें विश्वास था कि उनका यह पुत्र उन्हें इस संकट से बचायेगा। प्रसन्नचित्त सुयशा अपने पति व पुत्रों की सफलता के लिए प्रभु की प्रार्थना करने के लिए देवस्थान में बैठ गई थी।

हे मुनेश्रेष्ठ ! इधर सभा का समय होने में कुछ ही पल की देरी थी। सभा पूरी तरह से भर गयी थी। विपक्ष के पंडित भी आ गए थे। राजा अपने आसन पर बैठ गए थे। सब लोग आतुरता से महर्षि सीमंत की राह देख रहे थे। सबकी आतुरता बढ़ रही थी। सब यही सोचते थे कि डर के मारे शायद सीमंत नहीं आयेंगे। अनेक प्रकार की बातें सभा में होने लगीं। कोई सीमंत की कायरता की निन्दा करने लगा तो कोई फटकारने लगा। कोई उनकी इस दयनीय परिस्थिति पर दया करने लगे। सबके मन में एक ही डर जरूर था कि सीमंत सभा में नहीं आयेंगे। सभा का समय होने में मात्र एक पल की देरी थी। अब तो राजा के मन में यह बैठ गया कि आज तो सीमंत मेरे राज्य की आबरू को इन परदेशी पंडितों के हाथों नीलाम करायेगा। राजा बेचैन हो गया। फिर भी अपने मन की उथल-पुथल को दबाकर शांतिपूर्वक बैठा रहा।

हे शौनकजी ! डंके की आवाज हुई और उसी क्षण सीमंत सभामंडप में सबको आश्चर्यचकित करते हुए दाखिल हुए। उनके पीछे उनके चार पुत्र तथा उनके पीछे अति प्रतिभावान ब्रह्मचारी दाखिल हुआ। नवागंतुक को देखकर सब तरह-तरह की बातें करने लगे। फिर भी उनके असह्य तेज के कारण व प्रतिभा से चुंधिया कर सबने खड़े होकर उन्हें आदरपूर्वक सम्मान दिया। प्रतिस्पर्धी पंडित भी अपने आसन से एक बार खड़े हो गए। राजा द्वारा सम्मानित पिता-पुत्र अपने आसन पर बैठ गए पर नवागंतुक के लिए आसन नहीं था। क्योंकि सभा में गिनतीपूर्वक आसन बिछाए थे।

राजा ने अपने अंगरक्षक की तरफ संकेत किया ब्रह्मचारी ने सबको अपना नियम बताकर अपना आसन वहां बिछाया। सबको प्रणाम करके बैठ गया। ब्रह्मचारी की इस प्रकार की नियम परायणता तथा नम्रता देखकर सभा में उपस्थित जनों में उसके प्रति और मान बढ़ गया तथा आकर्षण भी बढ़ गया।

हे मुनेश्रेष्ठ ! सभा का समय होते ही राजा के मुख्य प्रधान ने खड़े होकर प्रतिपक्षी पंडितों को उनका कथन प्रस्तुत करने की विनती की। प्रधान की विनती मिलते ही चारों पंडित बारी-बारी से खड़े हुए तथा नीतिशास्त्र, शिलाशास्त्र राजनीति, धर्मशास्त्र आदि अनेक शास्त्रों का मानो अभ्यास किया हो ऐसे आडम्बर के साथ अपनी बात का समर्थन करने के लिए किसी भी प्रकार के शास्त्रीय आधार के बिना लम्बे भाषण दिए। उनके बोलने की खूबी देखकर यही लगता था कि ये पंडित अवश्य विजयी होंगे।

हे मुने ! चारों पंडितों का भाषण पूर्ण हुआ तब राजा की आज्ञा से प्रधान फिर खड़े हुए तथा राजपुरोहित को कहने लगे–पुरोहितजी आपने इन आगन्तुक पंडितों की बात सुनी है तथा अपनी बात के समर्थन के लिए उनकी दलीलें भी सुनी हैं। आप समझ सकते हैं कि यदि उनकी बात सच निकली तो सारा दोष आप पर, आपके पूर्वजों तथा परिवार पर आयेगा। क्या आप अवश्य उनके इन प्रश्नों व आप पर लगाए गए दोष का उत्तर देंगे।

प्रधानजी के तुरन्त बाद वे पंडित बोले कि सीमंत उत्तर न दे सके तो उसकी ओर से कोई पंडित सीमंत का बचाव करने के लिए उत्तर दे सकता है। इसका हमें विरोध नहीं है, सीमंत का बचाव नहीं हुआ तो सीमंत के साथ बचाव करने वाले पंडित भी सलामत नहीं रहेंगे।

हे ऋषिवर ! सम्पूर्ण सभा आतुरतापूर्वक सब देखने लगी। उनकी आतुरता का अंत लाते हुए महर्षि सीमंत अपने आसन पर से खड़े होकर बोले–राजा जी, प्रजाजन तथा पंडितजी ! इस राज्य का प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि मैं अब वृद्ध हो गया हूं मेरा सारा कार्य मेरे पुत्र करते हैं। मेरे जीवन में तो अनेक प्रसंग आ चुके हैं अतः इस प्रसंग के लिए मुझे हैरानी बिल्कुल नहीं है। परन्तु मेरे पुत्र आपके प्रश्नों का उत्तर देंगे। परिवार पर आई परेशानियों का हल निकालने का कार्य मैंने कभी और को नहीं सौंपा। आज भी अपनी समस्या का हल हम स्वयं करेंगे। इस बारे में आप निश्चिन्त रहें। प्रभु की कृपा से मेरा सबसे छोटा पुत्र अपना विद्याभ्यास पूर्ण करके घर आया है। आज उसके ज्ञान की भी कसौटी हो ऐसी उसकी इच्छा है। अतः पंडितों के मन का समाधान मेरा छोटा पुत्र करेगा।

हे मुनेश्रेष्ठ ! इतना बोलकर सीमंत अपने आसन पर बैठ गए। राजा की आज्ञा मिलते ही सीमंत का सबसे छोटा पुत्र विश्वावसु खड़ा हुआ। विश्वावसु की प्रतिभाशाली मुख मुद्रा से सभाजनों को विश्वास हो गया कि आज सीमंत की जीत

होगी। विश्वावसु ने राजा से कहा—हे राजनद्य ! आगंतुक पण्डितों का समाधान करने के लिए मैं खड़ा हुआ हूं। पर मैं पहले स्पष्ट करना चाहता हूं कि ये महानुभाव बोलकर ही चर्चा करना चाहते हैं या प्रत्यक्ष प्रमाण भी चाहिए। यह मुझे बताइए।

विश्वावसु का प्रश्न सुनकर सभा आश्चर्य में पड़ गई। एक स्तम्भ के महल में रहनेवाले राजा का रक्षण हो सके यह बताने के लिए पुस्तक में तो प्रमाण मिल जाते हैं पर प्रत्यक्ष यदि कोई महल के स्तम्भ को तोड़ डाले तो राजा को ईश्वर भी नहीं बचा सकते। जबकि यह ब्राह्मण प्रत्यक्ष प्रमाण देने के लिए तैयार है।

प्रत्यक्ष प्रमाण की बात सुनकर पण्डित बहुत प्रसन्न हुए। उन्हें विश्वास हो गया कि वे जीत जायेंगे। अतः प्रत्यक्ष प्रमाण की बात उन्होंने स्वीकार की। विश्वावसु राजा से बोले—हे राजन् ! आप अपने सभी महलों के स्तम्भ को तोड़ने की आज्ञा दे दो। इसके लिए योग्य व्यक्तियों को काम पर लगा दो। वैसे भी यदि आपका इस महल में रक्षण न हो सके तो आपको ये महल तोड़कर नए महल बनाने हैं। महल को कोई क्षति न पहुंचे तो फिर प्रश्न ही नहीं रहता।

हे महामते ! विश्वावसु के न्यायपूर्वक वचन सुनकर राजा ने सभी महलों के स्तम्भ तोड़ने की आज्ञा दे दी। इधर विश्वावसु ने भय दैत्य की हरण की मायावी विद्या को ग्रहण किया तथा उस विद्या के बल पर प्रत्येक महल के प्रत्येक कोने में अदृश्य स्तम्भ स्थित कर दिए। व्यक्ति बड़े-बड़े वजनदार साधन लेकर स्तम्भ तोड़ने का प्रयत्न करने लगे। स्तम्भ पर प्रत्येक प्रहार होते आगंतुक पण्डित बहुत प्रसन्न होते। प्रजा के मन अधीरता से विचलित हो जाते।

हे मुनिश्रेष्ठ ! काफी मेहनत के बाद एक-एक करके स्तम्भ टूटने लगे। परन्तु आश्चर्य की बात तो यह थी कि महल का एक भी कण नहीं गिरा। यह देखकर सभी सभाजन आश्चर्य में पड़ गए। राजा भी अत्यन्त प्रसन्न हुआ। सीमंत तथा उनके पुत्रों के आनन्द की कोई सीमा न रही। सारी सभा में आनन्दित लहर बहने लगी। सीमंत एवं उनके पुत्रों की जय-जयकार होने लगी।

पण्डितों के चेहरे ऐसे हो गए जैसे किसी ने उनके चेहरे पर काली स्याही पोत दी हो। क्या करें या क्या बोलें इसकी भी उन्हें समझ नहीं थी। वे कब यहां से भागने की तैयारी कर रहे थे। क्योंकि वे तो हार गए थे। शर्त के अनुसार राजा उनका वध करेगा। इसका उन्हें पक्का विश्वास था। राजा के कर्मचारी उनके चारों तरफ खड़े हो गए।

सूतजी बोले—हे ऋषिश्रेष्ठ ! एक ही स्तम्भ पर निर्मित राजभवनों में रह रहे राजा तथा उनके परिवार का रक्षण कैसे हो सकता है ? ऐसे पण्डितों के प्रश्न के उत्तर में विश्वावसु ने जो प्रमाण दिए उन प्रत्यक्ष प्रमाणों को तथा राजभवन को देखकर उस सभा में एकत्रित सभी विश्वावसु तथा राजपुरोहित सीमंत की जय-जयकार करने लगे तथा अति मलिन मुख वाले चारों पण्डित एक भी शब्द बोले बिना नतमस्तक

निर्जीव के समान खड़े रहे। भवनों के स्तम्भ चूर-चूर हो गए थे तथा भवन हवा में लटक रहे थे। सभी लोग हवा में लटकते भवनों को देखकर मनोमन विश्वावसु की तारीफ करने लगे।

हे शौनकजी ! जब सभा शांत हो गई तब विश्वावसु राजा की आज्ञा पाकर बोले—हे राजन ! पूज्य पण्डितजी तथा प्रिय नगरजन ! आपको इस प्रकार हवा में लटके भवनों को देखकर हैरानी होती होगी। परन्तु प्रभु श्री विराट विश्वकर्मा के सान्निध्य में रहने वाले प्रभु के परम भक्तों को तो प्रभु की लीला में कुछ भी आश्चर्यजनक नहीं लगता। प्रभु ने अपने अनन्य भक्तों तथा आचार्यों द्वारा महान शिल्पशास्त्र का इतना विस्तार किया और उसमें ऐसे विचित्र रचना वाले भवनों के निर्माण का उल्लेख किया है वह सब क्या उन्होंने बिना विचारे किया होगा ? नहीं, ऐसा कभी नहीं होगा।

हे मुने ! प्रभु ने जिस वस्तु का निर्माण किया है उसके रक्षण का भी उपाय किया है। ये भवन जो आप देख रहे हैं उन सब भवनों की रचना आदि शिल्प शास्त्र प्रवर्तक महान आचार्यों ने ही की है। फिर भी प्रभु समान महान आचार्यों के कार्य में दोष दृष्टि रखना अपना विनाश ही करना है। जिस स्तम्भ को तोड़ने में राजकर्मचारियों को आधे प्रहर जितना समय लगा उसी स्तम्भ को तोड़ने व बनाने में उत्तम शिल्पज्ञों को मात्र एक क्षण लगता है। आप देखना मैं पलभर में ही उन स्तम्भों को पहले जैसी मुद्रा में ला देता हूं।

ऐसा कहकर विश्वावसु ने अपने कमण्डल में से जल की एक अंजलि भरकर टूटे हुए स्तम्भों पर छोड़ी। सबको आश्चर्य चकित करते देखते-देखते सब स्तम्भ खड़े हो गए मानो कुछ हुआ ही न हो। जैसे सब था वैसा दिखने लगा। दूसरा आश्चर्य देखकर सारी प्रजा निर्जीव-सी बन गयी। राजा को लगा कोई देवता सीधे स्वर्ग में से उतरकर आया हो इस भावना से इस बाल-ब्रह्मचारी का सम्मान आदरपूर्वक करने लगे।

हे महामुने ! विश्वावसु के मुख पर ब्रह्मचर्य व तपस्या का तेज झलक रहा था। मात्र सोलह वर्ष की आयु। विश्वावसु फिर बोले—हे सज्जनो ! आपने देखा कि थोड़ी देर पहले स्तम्भ के टुकड़े-टुकड़े हो गए थे अब सबके देखते-देखते पहले समान बन गए। पहले के स्तम्भ और अब के स्तम्भ में बिल्कुल फर्क नहीं है। आप सोचते होंगे कि यह आश्चर्यजनक घटना कैसे हुई ? इसके उत्तर में मुझे इतना ही कहना है कि परम कृपालु परमात्मा की सच्चे हृदय से निष्काम भक्ति करने वाले के लिए इस जगत में कुछ भी असम्भव नहीं है न ही आश्चर्यकारक है। मेरे पूज्य पिताजी निवृत्त हो चुके हैं पर वे तथा मेरे बड़े भाई भी ऐसा करने में समर्थ हैं और वे भवनों को आकाश में इधर-उधर घुमा सकते हैं। अभी मैं उस सीमा तक नहीं पहुंचा हूं। फिर भी वे जो कुछ भी करते हैं वह वे नहीं करते प्रभु, जो सबके हृदय में स्थित हैं वो करते हैं।

जिस राज्य में ऐसे अनन्य भक्तों का निवास है उस राज्य तथा राजा का सूर्य कभी अस्त नहीं होता। राजपुरोहित राजा के राजभवन बनाने का मार्ग-दर्शन दे उस समय उस भवन में रहने वालों की रक्षा के लिए सभी मार्गों को बनाने का उपाय सोचकर ही भवन बनवाते हैं। अतः आप सबसे विनती है कि विराट श्री विश्वकर्मा की आप सब निष्काम भाव से आराधना करें। उनकी अर्चना करने से इस संसार में कुछ भी असम्भव नहीं है। क्योंकि जिसके पास प्रभु स्वयं रहते हैं उसके पास तो स्वयं सब कुछ है।

हे मुनेश्रेष्ठ ! ऐसा कहकर विश्वावसु अपने आसन पर बैठ गए। राजा भी बहुत खुश हुए। उन्होंने पुरोहित तथा उनके पांचों पुत्रों का सम्मान किया तथा अनेक उपहार आदि देकर प्रसन्न किया। विश्वावसु से पराजित उन चारों पण्डितों का सिर मुंडवा कर नगर से निकाल दिया। सबको उत्तम आभूषण दिए तथा विश्वावसु को स्वर्ण, चांदी एवं उत्तम रत्नों से जड़ित दंड, कमंडल एवं पादुकाएं दीं।

हे शौनकजी ! सीमंत के साथ आए ब्रह्मचारी ही उनके अपंग पुत्र विश्वावसु हैं यह जानने के बाद सभी बहुत खुश हुए। छः व्यक्तियों की पालकी प्रजा ने उठा ली तथा जय-जयकार करते सीमंत के घर की ओर रवाना हुए। पालकी में बैठकर पति व पुत्र घर आ रहे हैं यह जानकर सुयशा देवी हर्षित होकर जल का कलश लेकर घर के द्वार के सामने आयीं। सबके मस्तक पर से सात बार छः व्यक्तियों के सुख-दुःख के निवारण के लिए कलश उतारकर उन्हें घर में प्रवेश कराया महर्षि सीमंत ने प्रजा को सांत्वना देकर कहा—हे नगरवासियो ! अब विश्वावसु सदा आपके पास रहेगा। जिसके जीवन का भरोसा भी नहीं था ऐसे लाड़ले पुत्र को इस तरह उचित समय पर वापस आया देखकर सुयशा देवी को बहुत हर्ष हुआ।

हे मुने ! विश्राम लेने के कुछ समय बाद जब सब स्वस्थ हो गए तब नगर जन एवं पंडित उनसे मिलने आए तथा अभिनन्दन देने लगे। उस समय विश्वावसु अपने पिता के मधुरवाणी से सबका सत्कार करते तथा ज्ञानपूर्ण भाषण से प्रत्येक का मन जीत लेते थे। सारा दिन ऐसे ही बीता। सायंकाल होते सब लोग अपने-अपने कर्म में लग गए। विश्वावसु सबका मनोरंजन करने लगे। आधी रात को वे भी सबकी आज्ञा लेकर सोने चले गए।

हे महामुने ! प्रातः होते ही ब्रह्म मुहूर्त में विश्वावसु अपने पिता की यज्ञशाला में आए। अपने सभी भाइयों तथा पिता के साथ बैठकर उन्होंने भी विधिपूर्वक अग्नि में होम किया। फिर संकल्प मात्र से ही विश्वावसु ने प्राप्त की सभी विद्याएं अपने भाइयों को बता दीं। इस प्रकार उनके सभी भाई समान तेज वाले होकर सबके मन को हर लेते, अपने सभी पुत्रों की चारों ओर फैली ख्याति से कृत्यकृत्य महर्षि सीमंत तथा देवी सुयशा संसार का त्याग करके हिमालय की तलहटी में आश्रम बांधकर ईश्वर परायण तपस्वी जीवन गुजारने लगे। निरन्तर प्रभु के चरणों में अपना चित्त

लगाकर प्रभु नाम स्मरण में ही बाकी जीवन बिताने लगे।

इस तरह काफी समय बाद सूर्य के प्रभु श्री विश्वकर्मा जयन्ती के दिन प्रातः सीमंत दम्पत्ति ने एक साथ अपने देह का त्याग किया पर अंत समय में भी अपने छोटे पुत्र के प्रति स्नेह होने के कारण उनकी आत्मा की ऊर्ध्वगति नहीं हुई।

हे मुनेश्रेष्ठ ! इधर माता-पिता के देहान्त की बात जानकर सभी पुत्रों ने उनकी आत्मा की शांति के लिए योग्य क्रियाएं कीं। फिर चारों भाइयों को अपने पिता की सारी वृत्ति सम्पत्ति आदि सौंपकर विश्वावसु प्रभु की आज्ञानुसार उनकी आज्ञा का पालन करने इलाचल की ओर जाने के लिए तैयार हुए। विश्वावसु के जाने की बात सुनकर दुःखी सभी लोग विश्वावसु को रोकने लगे। न जाने के लिए बार-बार विनती करने लगे। राजा बर्हिष के नेत्र आंसुओं से भर गए। विश्वावसु ने उन सबको उत्तम प्रकार के ज्ञानपूर्ण वचनों से आश्वासन देकर उनके मन को समझाया तथा सबको ब्रह्मज्ञान का उपदेश देकर, मन का समाधान करके स्वयं इलाचल की ओर प्रस्थान किया।

सूतजी बोले—हे शौनकजी ! जो विश्वावसु अपने पिता के कार्यों के लिए खड़ाऊं पर उड़कर आए थे आज वे पैदल इलाचल जा रहे थे। रेगिस्तान, अरण्य, दुर्ग, नदी, नाले तथा अनेक प्रकार के खड्डे, टीले, कंकड़ व कांटों वाले मार्ग पर आज वे पैदल जा रहे थे। पर उसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं थी। प्रभु के भक्तों का एवं अलौकिक व्यक्तियों का रहन-सहन भिन्न प्रकार का होता है। सामान्य व्यक्ति अपनी सम्पत्ति का अपने लिए उपयोग करते हैं। मूर्ख लोग पराए की सम्पत्ति का भी अपने लिए उपयोग करते हैं। उत्तम पुरुष अपनी शक्ति व सम्पत्ति का उपयोग अपने लिए न करके दूसरों के परोपकार के लिए करते हैं।

हे मुनिश्रेष्ठ ! इस प्रकार इलाचल पैदल जाते हुए उन्हें अनेक कष्टों का सामना करना पड़ा, परन्तु प्रभु में दृढ़ विश्वास वाले विश्वावसु अनेक दुर्गम एवं विकट मार्गों को पार करते एक महीने में इलाचल पर पहुंच गये। वहां पहुंचकर पहले की तरह पवित्र होकर विश्वकुंड के किनारे उसी वटवृक्ष के सामने आसन बिछाकर प्रभु के ध्यान में बैठ गए। अब तो वे मात्र वायु का भोजन के रूप में उपयोग करते थे। धर्म के कारणभूत शरीर को धर्म के लिए टिकाकर रखने की इच्छा से प्रभु में लीन हो गए।

हे मुनिवर ! उचित समय होते ही प्रभु श्री विराट विश्वकर्मा की आज्ञा प्राप्त करके उन्होंने प्रभु में अपना चित्त लगाया। माता-पिता के स्नेह को पूर्ण करने का स्मरण करते हुए उन्होंने अपने नश्वर देह का त्याग किया।

सूतजी ने कहा—हे ऋषिवर ! इस प्रकार भक्त विश्वावसु ने प्रभु की उत्तम भक्ति से उत्तम शरीर, कीर्ति, सम्पत्ति आदि प्राप्त करके तथा स्वयं को जन्म देने वाले माता-पिता की ख्याति भी बढ़ाई और अन्त में अपने कुल का उद्धार किया। अतः

हे ऋषियों ! अपने कुल में विश्वावसु जैसा प्रभु भक्त उत्पन्न हो उसी तरह एक ही पुरुष की उत्पत्ति से सारे वंश का उद्धार हो जाता है और उन्हें प्रभु के परमधाम की प्राप्ति होती है।

# शकुन संकेत

श्री सूतजी बोले—अब मैं स्वप्न-दर्शन से शुभाशुभ के विषय में भगवान् नारायण के कथनानुसार ही कहता हूं। नाभि के अतिरिक्त, शरीर के अन्य अंगों में तृण तथा वृक्षों की उत्पत्ति दिखाई देना मस्तक के चूर्णित होने का लक्षण है। मुण्डन, नग्नता, गंदे वस्त्रों का धारण, कीचड़ ऊपर से गिरना, झूले पर चढ़ना, अश्वों का मारना, लाल पुष्पों वाले वृक्षों का मण्डल अथवा शूकर, रीछ, गधा, ऊंट आदि पर चढ़ना आदि दृश्य स्वप्न में दिखाई दें तो सब स्वप्न बुरा फल दिलाने वाले होते हैं।

हे शौनक ! तैल-पान, नाचना, गीत, वीणा, हंसना, विवाह आदि वाद्यों के अतिरिक्त अन्य प्रकार के वाद्यों का बजते हुए देखना, अभिवादन करना आदि भी दुःस्वप्न हैं। किसी स्रोत्र में अर्थात् झरने में स्नान, गोबर आदि से युक्त जल में स्नान, कीचड़ मिश्रित जल में स्नान, माता के गर्भ में प्रवेश, वीर्य का पतन, चन्द्रमा या सूर्य का पतन, अन्तरिक्ष आदि ग्रहों का दर्शन, देवता, गुरु, राजा आदि का क्रोधित होना, पर-नारियों व कुमारियों से संभोग व उन्हें नग्नावस्था में देखना, पुरुषों में मैथुन, शिश्न व योनि देखना, अपने अंगों का क्षय, विरेचन या वमन, दक्षिण दिशा की ओर जाना, रोग का अनुभव, घरों का गिरना, फल-पुष्प की हानि, रीछ, सिंह, वानर आदि के साथ खेलना, किसी अन्य के द्वारा किसी व्यसन की उत्पत्ति, गेरुआ वस्त्र धारण, स्त्री के साथ रति-प्रणय-क्रीड़ा, स्नेह-पान, स्नेह व आलिंगन करना, लाल फूलों की माला का धारण और लाल रंग के अंगराग का अनुलेपन आदि के दृश्य स्वप्न में देखना बुरे लक्षण का संकेत है।

हे महामुने ! विपाक तीन मास में हुआ करता है। किन्तु चौथे प्रहर में अरुणोदय काल में दिखाई दे तो इस दिन में उसका फल प्रत्यक्ष होगा। यदि एक ही रात्रि में शुभ और अशुभ दोनों प्रकार के फल वाले स्वप्न दिखाई दें तो जो स्वप्न पीछे दिखाई दे, उसी का फल होता है। पूर्व के स्वप्न का फल नहीं होता। हे मुने ! यदि शुभ स्वप्न देखा हो तो उसके पश्चात् प्रयत्न पूर्वक जागते रहना चाहिए, अन्यथा निद्रा आने पर कोई अशुभ स्वप्न दिखाई दे गया तो उसी का फल होगा, पहले का शुभ फल नष्ट हो जाता है।

हे मुने श्रेष्ठ ! श्रेष्ठ स्त्रियों की प्राप्ति, उनसे वार्तालाप, हास-परिहास तथा

समालिंगन शुभ फलदायक है। यदि स्वप्न में जीवित राजाओं, मठाधीशों तथा स्वजनों, मित्रों का दर्शन शुभ है। देव-दर्शन हो तो यह स्वप्न परम सौभाग्य का देने वाला है। मृत्तका कलश, निर्मल जल का देखना, जो जल से भरे हुए हों, उन्हें देखना भी हितकारी है। देव मन्दिर, साधु-महात्माओं के आश्रम, पवित्र तीर्थ स्थान, उपासना, तपस्या तथा योग-साधना आदि करते हुए सन्तों का दर्शन भी बहुत शुभदायक होता है। हे मुने ! जो मनुष्य ऐसे शुभप्रद स्वप्नों को देखता है, वह बिना प्रयास के ही भगवान् विश्वकर्मा की कृपा से युक्त होकर सुन्दर वैभव से सम्पन्न घर आदि की प्राप्ति करता है। यह स्वप्न-दृश्य अनेक प्रकार के धनों को प्रदान करने वाले तथा कष्टों और भय के नाशक होते हैं।

फिर सूतजी ने कहा--हे मुने ! घर से निकलने पर अनेक लक्षण दिखाई देते हैं। उनमें कुछ शुभ और कुछ अशुभ कहे जा सकते हैं। किन्तु वाद आवश्यक कार्य हो, किसी की प्राण-रक्षा, न्यायालय आदि में अनिवार्य उपस्थिति अथवा ऐसे ही कार्य, जिनमें जाना नहीं रोका जा सकता हो और लक्षण विपरीत दिखाई दें तो परमात्मा का स्मरण करके अपने ध्येय की ओर चल दें। क्योंकि न जाने से प्रत्यक्ष हानि होती है, उस हानि का निवारण प्रभु की प्रसन्नता से स्वतः हो जाता है।

हे शौनकजी ! यदि चलते समय मेघ मण्डल में बादल छाये हों, बिजली कभी-कभी की गरजती हो और हल्की बूंदें आ जाएं, तो समझो कि यात्रा सरल रहेगी। किन्तु तीव्र वर्षा तो प्रत्यक्ष ही मार्गों को कीचड़ से भर देती है, इसलिए चलने में भी असुविधा होगी। उस स्थिति में यथा सम्भव रुक जाना ही हितकर होता है। तीव्र आंधी तो प्रत्यक्ष ही कष्टप्रद होती है, उसमें यात्रा करना कष्टकारी होगा। इसलिए ऐसे समय में यात्रा न करें।

भरे हुए जल-पात्र या दुग्ध पात्र सब ओर ही शुभ लक्षण समझो। श्वेत सुगन्धित पुष्प यात्रा-काल में सामने या दायीं ओर दिखाई दें तो वे शुभ होते हैं। दायीं ओर मल भरी टोकरी दिखाई दे, वह भी शुभ है। गायों का दिखाई देना भी लाभदायक है। इनमें कपिला गाय अधिक शुभ होती है, श्वेत का मध्यम फल और काली का सामान्य फल माना जाता है। मत्स्य, अश्व, नाग, जलज पक्षी, मांस, पशु, बकरा, सुहृद मित्र, गणिका, प्रदीप्त अग्नि, सब प्रकार के रत्न, दूर्बा, गोबर, चांदी, औषधि, सोना, जौ आदि यात्रा के आरम्भ समय में दिखाई दें तो शुभ है। मनुष्यों के द्वारा ले जाए जाने वाले वाहन, यान, चक्र, पताका, शंख, कमल, मत्तिका आदि का दिखाई देना भी शुभ है।

हे मुने ! घृत, दूध, दही विविध प्रकार के ऋतुफल, चन्दन, केसर, कस्तूरी स्वास्तिक चिन्ह, यह सब शुभ लक्षण हैं। यदि समधुर बाजों की ध्वनि उस समय सुनाई दे तो वह यात्रा के लिए शुभ होता है। योगी, श्रेष्ठ ब्राह्मण, सन्त महात्मा, सद्गृहस्थी शोभायात्रा आदि का दर्शन भी सुख देने वाला होता है। यज्ञ, वेद ध्वनि

आदि का दर्शन-श्रवण भी यात्रा को सफल बनाता है।

घर से निकलते समय कोई पीछे कहे कि जाओ तो वह शब्द शुभ है। कोई कहे कि आगे की ओर जाओ, वह शुभ नहीं होता। जाते समय कोई पूछे कि कहां जाते हो तो वह प्रश्न यात्रा को निष्फल बनाने वाला होता है। चील, उल्लू चलते समय काक आदि का दर्शन अथवा ध्वनि श्रवण भी प्रतिकूल है। हे मुने ! मैला कुचैला नग्न पुरुष या स्त्री, मलीन मुख, मुण्ड, खुले केश वाला रुदन करते हुए स्त्री या पुरुष, रोग ग्रस्त एवं व्याकुल यह सब लक्षण यात्रा के लिए प्रतिकूल समझे।

जंजर वस्तु का स्वर, फटा हुआ स्वर, अनुदात्त स्वर, यह सब भी प्रतिकूल है। यदि घर से निकलते समय खाली बर्तन आ जाए, अथवा भस्म या कपाल दिखाई दे तो वह अशुभ है। उल्लू आदि का बोलना भी अशुभ माना जाता है। मृत व्यक्ति का पड़ा होना अथवा शवयात्रा आदि का दिखाई देना भी अनुकूल नहीं होता। यदि उस समय कुत्ता या श्रृगाल रोता हुआ दिखाई दे या उनका शब्द सुनाई दे तो वह भी अनुकूल नहीं समझे।

हे मुने ! कपास, तृण, काले रंग का धान्य, शुष्क गुड़, तेल, गोबर, ईंधन इनका दिखाई देना शुभ शकुन है। पताका, नारियल, धर्म-ध्वजा, देवमूर्ति, हरित पत्ते, लता आदि का दर्शन शुभ है। कुमारी बालिका, सती-साध्वी नारी, हंसते-खेलते बालक आदि का दर्शन शुभ है। यदि यह सामने अथवा दायीं ओर हैं तो अधिक शुभ समझें।

हे शौनक ! शुभ-अशुभ कैसे भी लक्षण प्रतीत हों मन में खिन्नता उत्पन्न होने पर यात्रा न करना ही श्रेयस्कर है। निर्माण कार्यार्थ गमन करे तो भगवान् विश्वकर्मा का स्मरण करके चलें। लौटते समय भी मंगलसूचक लक्षणों का दर्शन और प्रभु स्मरण सदैव लाभकारी है।

# विश्वकर्मा-उपनिषद् ज्ञान

हे परमात्मदेव ! मेरे सभी अंग, वाणी, प्राण, नेत्र, कान, सभी इन्द्रियां और शक्ति परिपुष्ट हों। उपनिषद् में वर्णित यह स्वरूप ब्रह्म है।

सूतजी बोले—हे शौनकजी एवं ऋषिगण ! अब मैं आपके प्रति विश्वकर्मोपनिषद कहूंगा। विश्वकर्मा परब्रह्म परमात्मा का ही एक नाम है। वे अव्यक्त प्रभु अनेक नाम रूपों और शक्तियों के सहित व्यक्त हो जाते हैं और स्वयं ही विश्व रूप धारण करते हैं।

एक अवसर पर ऋषियों ने पूछा इस लोक का प्रवर्तन कैसे होता है तथा विश्वकर्मा किसे कहते हैं ? यह सुनकर ऋषियों ने परस्पर विचार किया। सोचने लगे

कि वह कौन है, जो संसार को रचता है, तीनों लोकों को प्रकट करता है ? पारस्परिक विचार से निश्चय हुआ।

वह ब्रह्म ही है, जिसके द्वारा विश्व की रचना होती है और स्वयं ही अनन्त नाम रूपों को धारण करके प्रकट होता है। विश्व का प्रवर्तन करने के कारण उसी का नाम विश्वकर्मा है। वही ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र आदि रूपों से लोक की समस्त गतियों और क्रियाओं का कारण होता है। वही इन्द्र, चन्द्र, सूर्य, पर्वत, यम, कुबेर, वरुण, मरुत, नदी, मनुष्य, नक्षत्र, तारागण, दैत्य, गन्धर्व, नाग आदि रूपों को रखने वाला है। वही सब देवताओं का भी स्वामी है। सब प्रकार के धन उसी के आश्रित हैं। किसी भी देवता की पूजा करो, उसके द्वारा उसी परमदेव की पूजा स्वतः सिद्ध हो जाती है।

सूतजी बोले—हे मुने ! इस प्रकार निश्चय करते हुए ऋषियों ने भगवान् विश्वकर्मा का ध्यान किया, तब वे प्रभु उन पर प्रसन्न हुए और दर्शन देकर उन्हें कृतार्थ किया। ओंकार के तीन अक्षरों में ही प्रकृति और पुरुष का रहस्य भरा है। ओम् के तीन अक्षर—'अ, उ, म इनमें 'अ' ब्रह्मा और सृष्टि का सूचक है, 'उ' विष्णु और रक्षा का तथा 'म' शिव और लय का प्रतीक है।' इस प्रकार ओंकार ही विश्वकर्मा का व्यक्त त्रिगुणात्मक स्वरूप है। इसलिए ॐ को पहले, विश्वकर्मा को मध्य में और नमः को अन्त में लगाएं अर्थात् "ॐ विश्वकर्मणे नमः" का जप करना चाहिए। इसका प्रयोग 'ॐ नमः विश्वकर्मणे' के रूप में भी किया जाता है। मंत्र जप में मन उस मंत्र में ही लगा रहे, तभी साधना की पूर्णता सम्भव है।

हे शौनकजी ! देवताओं पर जब-जब संकट पड़ा तब-तब परब्रह्म परमात्मा ने उस संकट का निवारण किया। दैत्य दानव युद्धों में उन्हीं ने दैत्यों को पराजित कर देवताओं को विजय प्राप्त कराई। किन्तु एक बार ब्रह्म के द्वारा की गई विजय में देवताओं ने अपने द्वारा ही प्राप्त हुई विजय का अभिमान किया, जब ब्रह्म ने देवताओं के इस प्रकार के अभिमान को जान लिया तब वे यक्ष रूप में उनके समक्ष प्रकट हो गए।

देवता उन्हें नहीं पहचान सके और परस्पर कहने लगे कि यह यक्ष कौन है ? उन्होंने यक्ष के विषय में जानने के लिए अग्नि को उनके पास भेजा। भगवान् ने उससे पूछा कि तुम कौन हो ? अग्नि ने कहा—मैं अग्नि नाम से प्रसिद्ध हूं, मेरा प्रकोप इस विश्व को और उसके वैभव को पल भर में भस्म कर सकता है।

हे मुने ! तब भगवान् ने अग्नि के सामने एक तिनका रखकर कहा कि इसे भस्म करो। तभी अग्नि उस तिनके को भस्म करने के लिए दौड़ा, किन्तु बहुत प्रयास करने पर उसे भस्म नहीं कर सका। अग्नि की असफलता देखकर इन्द्र ने वायु देवता को यक्ष के पास भेजा और पूछने पर उसने बताया—मैं वायु देवता हूं, पृथ्वी के समस्त वस्तुओं को एक क्षण में उड़ा सकता हूं। तब प्रभु ने वही तिनका वायु के समक्ष

रखकर कहा—इसे उड़ाओ। हे मुने ! वायु भी उस तिनके को उड़ाने में असफल रहा और देवताओं के पास लौट आया।

वायु के भी सफल न होने पर इन्द्र स्वयं यक्ष का पता जानने को गए, किन्तु तभी यक्ष रूप भगवान् अन्तर्ध्यान हो गए, तब इन्द्र ने आकाश मार्ग द्वारा गिरि राजकुमारी उमा से पूछा—हे देवि ! कृपा कर यह बतायें कि यह यक्ष कौन था ?

इन्द्र को देखकर उमा ने कहा—इन्द्र ! तुम अज्ञानवश उन्हें नहीं पहचान सके वह तो परब्रह्म परमात्मा हैं, जिसे तुम अपनी विजय समझ रहे हो वह असल में प्रभु ब्रह्म की विजय थी। उमा का यह उत्तर सुनकर इन्द्र नतमस्तक हो गया। हे मुने ! इन्द्र के साथ वायु व अग्नि देव भी ब्रह्म के स्वरूप को पहचान गए। यही ब्रह्म विद्या है, जिसके तीन आधार माने जाते हैं—तप, दम और कर्म। इन्द्रिय दमन का अभिप्राय है, मन को संयत करो और जो कार्य करना है, उसमें मन लगा दो। इसी प्रकार कर्मयोग की सिद्धि होती है। परब्रह्म परमात्मा की प्राप्ति में परम सहायक सिद्ध होती है।

हे मुने ! इससे यह भी शिक्षा मिलती है पतन का मुख्य कारण अहंकार ही है। इसी के कारण ईर्ष्या, द्वेष आदि की उत्पत्ति होती है। अनेक बनते हुए कार्य इस अहंकार के कारण ही बिगड़ जाते हैं। क्रोधादि की उत्पत्ति से असत्य, दुष्कर्म, हिंसा आदि में अनायास वृद्धि होने लगती है। इन सबका उपाय भगवान् की भक्ति ही है। उनकी प्रसन्नता से सभी कार्य सम्पन्न हो जाते हैं।

# पुराण-श्रवण एवं फल प्राप्ति

सूतजी बोले—हे मुने श्रेष्ठ ! अब मैं विश्वकर्मा पुराण-श्रवण और उसके फल पर प्रकाश डालूंगा। समस्त मंगलों में मंगल स्वरूप तथा पुत्रादि सन्तान एवं सम्पत्ति का देने वाला है। हे मुने ! इसे एकाग्र चित्त से सुनना चाहिए। चित्त यदि कहीं और हो तो इस पुराण का कोई महत्व नहीं रहता। यह पुराण अपने आपमें अनुपम है।

प्रभु सूतजी बोले—हे शौनकजी व ऋषिवर ! इस माहात्म्य में भगवान् विश्वकर्मा की ही महिमा मुख्य है। वस्तुतः जो मनुष्य इस पुराण का पाठ करते हैं, वे सभी सुखों से सम्पन्न होते हैं। धन, सन्तान, रूपवती पत्नी, वैभव से सम्पन्न स्थान की प्राप्ति होती है। हे मुने ! एक बार की बात है कि जब प्रलय काल उपस्थित हुआ, तब समस्त पृथ्वी जल में निमग्न होने लगी। सब ओर जल ही जल था। उस समय ऋषि-मुनियों की समाधि टूट गई। सब सोचने लगे कि प्रजाओं की रक्षा कैसे होगी ? इस विषय में से ही कुछ ज्ञात हो सकेगा। हमें वहीं प्रस्थान करना चाहिए।

हे मुने ! ऐसा निश्चय करके महर्षिगण धाम की ओर चले। तभी मार्ग में उन्हें देवर्षि नारद दिखाई दिए। उन्होंने इन ऋषियों का श्रेय जानकर कहा—हे ऋषिगण ! आप वहां तक कैसे पहुंचेंगे ? क्योंकि बदरिका धाम के चारों ओर पानी ही पानी है। महर्षि नारायण के स्थल तक पहुंचने का मार्ग भी कहीं नहीं दिखाई देता। मैं वहीं से आ रहा हूं, प्रभु नारायण को आपके वहां जाने का विचार समाधि में ही ज्ञात हो गया था, इसलिए उन्होंने सन्देश दिया है कि भगवान् विश्वकर्मा द्वारा रक्षित इलावृत वर्ष में ही आप चलें। वे प्रभु सभी की रक्षा में लगे है। हे ऋषिगण ! मैं स्वयं भी भगवान् के दर्शनार्थ इलाचल को जा रहा हूं, आप भी मेरे साथ आओ। क्योंकि प्रभु का निवास होने के कारण केवल पर्वत ही जल में निमग्न होने से बचा हुआ है।

नारदजी के वचन सुनकर सब महर्षिगण उनके साथ चल पड़े और भगवान् विश्वकर्मा का स्मरण करते हुए, इस इलावृत में जा पहुंचे और विश्वकुंड में स्नान करने के पश्चात् नारदजी के साथ भगवान् नारायण के समक्ष जाकर अत्यन्त भक्तिभाव से उनकी स्तुति करने लगे। प्रभु ने भी उन सबका हृदय से सत्कार किया और अपने आशीर्वाद से सुशोभित किया। वे ऋषिगण उनकी कृपा से कृतकृत्य तथा अनेकों सिद्धियों से सम्पन्न हो गए। जो मनुष्य केवल इस माहात्म्य को ही सुनते हैं, वे भी धन्य हो जाते हैं। उन्हें भी मन वांछित फल और मोक्ष की प्राप्ति होता है।

हे शौनकजी ! मैंने आप सब ऋषियों तथा अन्यान्य श्रोताओं के प्रति श्री विश्वकर्मा पुराण का सप्रेम व सुहृद वर्णन किया तथा उसकी फलश्रुति श्रवण विधि और माहात्म्य भी सुना दिया। वैसे तो भगवान् के गुण चरित्र का कोई अन्त नहीं उनके व्याख्यान का तो सदियों में भी वर्णन नहीं किया जा सकता। सैकड़ों जन्म में भी उनकी महिमा का वर्णन नहीं हो सकता। मैंने अपनी तुच्छ बुद्धि से जो बन सका उनकी महिमा का वर्णन कह दिया। वैसे तो भगवान् के गुण-चरित्र हे मुने ! जो मनुष्य इस पुराण की कथा आदि को श्रद्धापूर्वक सुनता है। उसे वह सब कुछ प्राप्त होता है, जिसकी उसे कामना होती है। हे मुने ! आप सभी भी पुण्यवान तथा भगवान् के चरित्र श्रवण से सदैव स्वस्थ, निरोग और दीर्घ आयु वाले हों तथा तुम्हारा कल्याण सदा हो।

हे शौनकादि ऋषिगण ! अब मैं उन परब्रह्म परमात्मा विश्वात्मा प्रभु विश्वकर्मा को प्रणाम करके इस पुराण का समापन करता हूं, जो समस्त विभूतियों के कर्ता एवं अविनाशी हैं। वे प्रभु समस्त संसार का इसी प्रकार पालन करते रहें और सदैव कल्याणकारी सिद्ध हैं। उत्तम वरदान, सुख-शांति देने वाले प्रभु श्री विश्वकर्मा जो अनेक रूप में निवास करने वाले, अलौकिक कांति को धारण करने वाले, शेषनारायण के स्वरूप अपने मस्तक पर समग्र पृथ्वी का भार धारण करने वाले, अपनी आधार शक्ति के बल पर कछुए का रूप धारण कर समग्र पृथ्वी को धारण करने वाले, मेरू

पर्वत को जिसने अपनी पीठ पर धारण किया है। ऐसे परब्रह्म विश्वकर्मा को मेरा नमस्कार।

# भारत : देवधाम

प्रभु सूतजी बोले—हे शौनकजी ! देह के भीतर रहने वाला मन कलंकित हो तो वह तीर्थ स्थान से ही कदापि शुद्ध नहीं हो सकता। जैसे कि जल से सैकड़ों बार धोने पर भी कोयला श्वेत नहीं हो पाता। हीन भावनाओं के कारण इन्द्रियां उच्छृंखल रहती हैं, उस स्थिति में तीर्थ, व्रत, स्नान आदि का फल भी नहीं हो पाता।

जैसे ही मनुष्य अपनी इन्द्रियों को वश में कर लेता है और फिर वह जहां-जहां जाता है, वही स्थान उसके लिए कुरुक्षेत्र, प्रयाग, पुष्कर, बद्रीधाम आदि हो जाता है। इसलिए तीर्थ जैसी पवित्रता की प्राप्ति के लिए पहले अपनी इन्द्रियों को जीतना अत्यन्त आवश्यक है।

पृथ्वी पर अनगिनत तीर्थ विद्यमान हैं, उन सभी का वर्णन करना तो सैकड़ों वर्षों में भी असम्भव है। सर्वप्रथम मैं पुष्कर तीर्थ के विषय में कहता हूं। वह तीर्थ अत्यन्त महिमा वाला और श्रेष्ठ पुण्यफल का देने वाला है।

धेनुक, चम्पकारण्य, प्रयागराज धर्मारण्य, सेंधवारण्य, नैमिषारण्य, मगधारण्य, प्रभास, श्रीतर्थ, कनखल, भृगुतुंग, हिरण्याक्ष, लोहाकुल, सकेदार, भीमारण्य, कुशस्थली, मन्दरारण्य, सर्वपापहर तीर्थ, रूपतीर्थ, महाबल, कोटि तीर्थ, महाफलचक्र तीर्थ, अग्निपदतीर्थ, पंचशिख तीर्थ, योगतीर्थ आदि यह सभी उत्तम फल देने वाले हैं।

हे मुनेश्रेष्ठ ! कोटितीर्थ, प्रमोचन तीर्थ, गंगाद्वार, हरिद्वार, पंचकूट, चक्रप्रभ, मतंग, मध्यकेशर, कुशदत्त, विश्रुत तीर्थ, दंष्ट्राकुण्ड, विष्णु तीर्थ, सार्वकामिक तीर्थ, बरदी सप्तभी तीर्थ, मत्स्यतिल तीर्थ, ब्रह्मकुण्ड, बन्हिकुण्ड, सोमाभिषेचन तीर्थ, पंचाधार, महास्रोत, कोटरक, त्रिधारक, सप्तधार, अमरकंटक शालग्राम तीर्थ, एकाधार, चक्रतीर्थ, सत्यपद तीर्थ, मानस तीर्थ, स्थूल श्रृंग, स्थूलदण्ड, उर्वशी तीर्थ, मनुवर, लोकपाल, सोमाह्वशैल, भेरुकुण्ड, गदाप्रभ, कोटद्रुम, विल्वप्रभ तथा विष्णुह्रद नामक तीर्थ अत्यन्त महिमावान् एवं पुण्यफल से युक्त हैं। अग्निप्रभ, पुन्नाग, शंखप्रभ, देवकुण्ड, वज्रायुध, विद्याधर तीर्थ, श्रीतीर्थ, ब्रह्महृद तीर्थ, सागान्धर्व तीर्थ, सप्ततीर्थ, मणिपूरगिरि, लोकपालाख्य, पंचह्रद, मलय, पुण्य-पिण्डारक, गोप्रभाव, कन्याश्रम, वायुकुण्ड, वटमूलक, विष्णुपद, जम्बूमार्ग तीर्थ, मयाति-पतन तीर्थ, गभस्ति, वायुकुण्ड, शुचिकोटि तीर्थ अति उत्तम, शुभकारी संकेत देते हैं।

हे मुने ! नर्मदा तीर्थ, पृथुसंगम, भद्रवट, महाकालवन, दौवासिक, पिंजरक,

ब्रह्मतुंग, ऋषितीर्थ, वसुतीर्थ, कुमारिका तीर्थ, रेणुका तीर्थ, पुष्पन्यास, पुण्डरीक, कामाख्या, कृष्णतीर्थ, सोमतीर्थ, ब्रह्मावर्त, कुमारधारा, श्रीधारा, गौरी शिखर, केदारशिखर, नन्दी तीर्थ आदि सभी शान्ति एवं पुण्यफलदायक हैं।

हे शौनकजी ! प्रसिद्ध-अप्रसिद्ध तीर्थों की संख्या का वर्णन करना असंभव है। इन तीर्थों में प्रमुख रामतीर्थ, मार्कण्डेय तीर्थ, कृष्णतीर्थ, रोहिणी कूप, इन्द्रद्युम्नसर, विकर्णक, श्रीतीर्थ, श्रीनद तीर्थ, वार्षभ, कावेरीहृद, गोकर्ण, गायत्री स्थान, कन्या तीर्थ, देवकूप, कुशप्रणव, जातीहृद, सर्वदेवव्रत तीर्थ, कन्याश्रम हृद आदि भी अभीष्ट दायक हैं।

भारतवर्ष की सभी दिशाओं में तीर्थों में देवी-देवताओं का वास है, जिनमें उत्तराखण्ड के तीर्थों में बहुत-से ऋषि एवं मुनिगण रहकर तपस्या में लीन रहते हैं। यमुना, गंगा, सरस्वती, नर्मदा, गोमती आदि अनेक प्रसिद्ध नदियों के तट पर भी अगिनती श्रेष्ठ तीर्थ का वास है। ब्रजमंडल में से बहुत-से हृद, कुण्ड, सरोवर आदि प्रसिद्ध हैं, यहां भी अनेक महात्मा तपस्या में लीन रहते हैं।

हे शौनकजी ! जिन अनेक तीर्थों के नामों का वर्णन किया गया है, इनमें से चाहे जिस तीर्थ में जाकर अत्यन्त श्रद्धा के साथ और अपने मन अधिपति देवताओं का विधिपूर्वक पूजन भी करना चाहिए।

देवताओं और पितरों के तर्पणादि के सहित देवार्चन की बड़ी महिमा कही जाती है। वहां रहकर तपस्या करना भी आत्म-सुख में सहायक होता है। कम से कम तीन रात्रि तीर्थ में रहकर व्यतीत करें। यदि इतना न कर सकें, तो एक रात्रि तो अवश्य रहें। किन्तु हे मुने ! तीर्थों की अधिकता भारत में ही है। यह भारत भूमि ही कर्म भूमि मुख्य रूप से कही गई है। पाप कर्म का फल दुःख रूप तो भारत के अतिरिक्त अन्यान्य देशों में भी होता है। किन्तु भारत की समता में शुभ कर्मों का दिव्य फल यहीं मिलता है।

हे मुने ! इन्द्रादि देवताओं ने भी भारत में रहकर अत्यन्त सुन्दर कर्म किए थे, इसी से उन्हें देवत्व पद की प्राप्ति हुई थी। वस्तुतः यहां मनुष्यगण धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—इन चारों पदार्थों की प्राप्ति के लिए स्वाभाविक रूप से प्रयत्नशील रहते हैं।

सूतजी ने पुनः कहा—हे शौनकजी ! जिन्हें भी स्वर्गादि लोकों की प्राप्ति हुई, उन्होंने इसी पवित्र भूमि में तप, योग, भक्ति आदि साधनों को करके इस लोक के माया-चक्र से छुटकारा प्राप्त किया। इस काल में भी अनेकानेक तपस्वी शुभ कर्मों के अनुष्ठान में लगे रहते हैं। उन्हें भी निष्काम कर्म का फल प्रभु-प्राप्ति रूप मोक्ष तथा काम्य कर्म का फल भोग रूप स्वर्ग सहज सम्भव है। इसीलिए सभी देवात्मा भी इस पवित्र भूमि पर ही निवास करने की कामना सदा किया करते हैं। शुभ फल के समाप्त होने पर देवताओं को भी स्वर्गलोक से पृथ्वी पर आना आवश्यक होता

है।

हे मुने श्रेष्ठ ! शुभाशुभ कर्म करने के लिए भारत के अतिरिक्त, मनुष्यों के लिए अन्य कोई भूमि नहीं है। यहीं से स्वर्ग, मोक्ष तथा मध्यम फल को प्राप्त किया जाता है। इसमें नौ भेद हैं—इन्द्र कशेरू, द्वीप, ताम्रवर्ण, गभस्तिमान, सौम्य गन्धव, नागद्वीप तथा वरुण द्वीप। नवां द्वीप समुद्र से घिरा हुआ है। इसकी स्थिति उत्तर-दक्षिण दिशा में है।

इसके पूर्व दिग्भाग में किरातों का निवास है, पश्चिम में यवन रहते हैं, मध्य में ब्राह्मण क्षत्रियादि चारों वर्णों का निवास है। ब्राह्मणादि यहां लोक यज्ञ, वेदाध्ययन, युद्ध, वाणिज्य, सेवा आदि कर्मों को करते हैं। उनके द्वारा अपने-अपने स्वाभाविक धर्म का पालन होकर स्वर्ग, अपवर्ग आदि प्राप्त होता है।

हे शौनकजी ! भारत में सह्य, महेन्द्र, मलय, शक्तिमानु, ऋक्ष आदि पर्वत हैं और पारियात्र, विन्ध्य—यह सातों कुल पर्वत कहे जाते हैं। इन पर्वतों के समीप अनेकानेक छोटे-बड़े पर्वत विद्यमान हैं। यह सभी विस्तारयुक्त, ऊंचे, अत्यन्त रमणीक विपुल तथा विचित्र शिखरों से सम्पन्न हैं।

अन्य पर्वतों में त्रिकुटा, मन्दर, दर्दुराचल, कोलाहल, वैभ्राज, वातन्धय, मनाक, सुरस, वैद्युत, तुंगप्रस्थ, गोवर्धन, नागगिरि, पाण्डराचल, वैजयन्ती, पुष्पगिरि, रेवत, ऋष्यमूक, अर्बुद, गोमन्ध, श्रीपर्वत, कृतशैल, कृताचल तथा चकोर पर्वत अपनी-अपनी महिमा में प्रतिष्ठित एवं विद्यमान हैं।

हे मुने ! पर्वतों से बहुत-सी नदियां निकलकर विभिन्न मार्गों से होती हुई समुद्र में विलीन हो जाती हैं। गंगा, सरस्वती, यमुना, सिन्धु, चन्द्रभागा, इरावती, कुहू, गोमती, दृषद्वती, देविका, चक्ष, गण्डकी, कौशकी—यह सर्व हिमालय के पाद तल से निःसृत हैं। देवस्मृति, देववती, चन्दना, सदानोरा, वातघ्नी, वेण्या, मही, चर्मण्वती, चित्रकटा, वेदत्रयी, करमोक्ष, अतुल, शैवला, सधेरुजा, शुक्तितती, शकुनी, त्रिदिवा, प्रसूता, वेगवाहिनी, क्रमुऋक्षपादा, पयोष्णी; वृषी, विदिशा, वेवव्रती, क्षिप्रा, अवन्ती, परियात्रानुगा, शोणा, सुरसा, क्रिया, महानदी, नर्मदा, मन्दाकिनी, दशार्णा, सहिद्वारा, तापी, निर्विन्ध्या, वेणा, सिनीवाली, वैतरणी, कुमुद्वती, महागौरी, दुर्गा, अन्तःशिला, विन्ध्यपादा, कृष्णा, वेणा, गोदावरी, भीमरथी, आपणा, तुंगभद्रा, सुप्रयोगा आदि सभी नदियां सह्याचल से निकली हैं।

ताम्रपर्णी, कृतज्ञता, पुष्यजा, प्रत्यलावती आदि पुण्य सरिताएं शीतल जल से युक्त मलियागिरि से उत्पन्न हैं। लांगुलिनी, वंशकरा, वंजुला, त्रिदिवा यह सभी सरिताएं महेन्द्र पर्वत से निकली हैं। मन्दगामिनी, क्षमापलासिनी, कुमारी, मनुगा यह सब सुक्तिमत् पर्वत से आविर्भूत हैं। हे मुने ! पुण्यमयी सरस्वती, गंगा आदि सरिताएं समुद्रगामिनी हैं। इन नदियों के अतिरिक्त क्षुद्र नदियां तो असंख्य हैं।

कुन्तला, काशिकोशिला, मत्स्या, मुकुटकुल्या, अधका, कलिंगा और शमका

मध्यदेश में बहती हैं। सह्य पर्वत के उत्तर भाग में स्थित गोदावरी का प्रदेश अत्यन्त मनोरम है। हे मुने ! सुतीर, कालतोयद, वाहिक, वाटधाम, सकेरल, यवन, सिन्धु, वाल्हिक, मानवर, सौवीर, शतद्रहा, मद्रंक, कलिंग, कठार, पारद, हारमूषिक, कैकेय, कनक ये सब देश क्षत्रियोपम कहे गए हैं।

इनमें अन्य वर्णों के भी प्रसिद्ध कुल रहते हैं। अन्ध, वल्लक, परवान्तक, अंग, वंग, मलद, मालवतिक, भद्र-तुंग, प्रतिजय, मार्यांग, अपमर्दक, प्राग्ज्योतिष, मद्र, विदेह, ताम्रलिप्तक, मल्ल तथा नन्द आदि पूर्व दिशा के जनपद हैं। तोमर, हंसमार्ग, कश्मीर, करुण, शूल्कि, कुहक, मागध आदि राज्य उदीच्य अर्थात् उत्तर दिशा के हैं। पूर्ण, केरल, मुषित, कुमार, सरव, गोलांगुल, पुलिन्द, दन्तक, निदर्भ, मौलर्य आदि जनपद दक्षिणपथगामी कहे गए हैं। मौलिक, पौलिक, अश्यक, कौलिक, भोजवर्धन, कुन्तल, दम्भक, नीलकालक आदि दक्षिण भाग देश समझो।

हे मुने ! कालिधन, शूर्पारक, तालकट, लोल—यह सब अपरान्त देश हैं। अब विन्ध्य निवासियों के विषय में सुनो। मेलक, चोलक, मलंज, कर्कश, उत्तमार्ण, भोज, दशार्ण, कौशल, त्रैपुर, तुम्बरु, चर, यवन, अभय, पवन, चर्चर आदि विन्ध्य के जनपद हैं। नीहार, तुषमार्ग, तगण, खस, ऊर्ण, दर्ध, सकुन्तक, चित्रमार्ग, मलिक, किरात, तोमर आदि पर्वतों का आश्रय करने वाली हैं।

श्री सूतजी ने पुनः कहा—हे शौनक ! इस प्रकार भारत अनेक विभागों में संस्थित है। जिसके परे, दक्षिण और पूर्व में महोदधि है। उत्तर में हिमालय पर्वत विद्यमान है। यह भारत सभी का बीज स्वरूप है। ब्रह्मत्व, अमरेशत्व, देवत्व तथा मरुतादि तत्वों की स्थिति भी यहां है। अप्सरा, सर्प, मृग, यक्ष सरीसृप आदि का उद्भव भी यही है।

सभी स्थावर के शुभाशुभ कर्म यहीं होते और उन्हीं कर्मों के साथ प्रयाण करते हैं। वस्तुतः भारतवर्ष के अध्यात्म-पक्ष की प्रसिद्ध कर्मभूमि अन्यत्र कहीं नहीं है। यहां के मनुष्यों से देवता भी ईर्ष्या करते हुए कामना करते हैं कि हम अपने देवत्व से मुक्त होने पर भारत में ही मनुष्यत्व को प्राप्त करें। उनकी इस प्रकार की कामना का भी कारण है—

श्री सूतजी कुछ पल शान्त रहकर पुनः बोले—हे शौनकजी ! हे महामते ! मनुष्य यहां जो कर्म करता है, उसे करने की सामर्थ्य देवता-दैत्यादि किसी में भी नहीं है। क्योंकि वे सब सुर और असुर अपने-अपने कर्म बन्धन से ग्रस्त हैं और उस कर्म बन्धन को काटने के लिए उन्मुख होते हैं।

हे मुने ! इस पृथ्वी पर भारत के तुल्य अन्य कोई देश दिखाई नहीं देता। लोगों की प्रवृत्ति तपस्या के प्रति इसी देश से अधिक देखी जाती है। इसमें निवास करने वाले सभी देश के मनुष्य अपने इच्छित फलों को प्राप्त करते हैं। इसलिए इस देश में उत्पन्न होने वाले सभी मनुष्य अत्यन्त भाग्यशाली और सब प्रंकार से धन्य हैं। सब

प्रकार के दान करने वाले अनेक दानवीर यहां हुए हैं। यहीं यज्ञादि कर्म विशेष रूप से होते हैं।

हे महामुने ! गुरुदेव, पति, माता, पिता आदि के पूजन के प्रति आस्था और श्रद्धा भी इसी देश में अधिक है। तन, मन, धन से सेवा करने वाले गृहस्थ सदैव आदर्श प्रस्तुत करते रहते हैं। गुरुजनों की सेवा का फल, देवाराधन का फल तथा स्वाध्याय का फल सुलभ हो जाता है।

यहां के समान श्रद्धा, भक्ति और विश्वास अन्यत्र कहीं नहीं देखा जाता। व्रतादि अनेक प्रकार के पुण्य भारत के मनुष्यों की मानसिकता के मुख्य अंग हैं एकादशी, त्रयोदशी, सप्तमी, अष्टमी, सोम, मंगल, वीर, शुक्रवार के व्रत हृदय से किए जाते हैं। शिवरात्रि, अन्नतचौदश, करवाचौथ, अहोई अष्टमी, लक्ष्मी व्रत आदि स्त्रियों के प्रमुख सुहाग एवं मंगलदायक होते हैं। फल अवश्य मिलते हैं।

अनेकानेक सज्जन पुरुष यह समस्त शुभ कर्म निष्काम भाव से करते हैं। क्योंकि जहां कामनाएं होती हैं, वहां मन में सन्तोष नहीं होता, कामनाएं बढ़ती ही जाती हैं। ऐसा जानकर पुरुषार्थी पुरुष कामनाओं को लेकर प्रभु की आराधना करना उचित नहीं समझते। और हे मुने ! जो निष्काम भाव से उपासना करते हैं, उनके योगक्षेम का वहन भगवान् स्वयं ही करते हैं। ऐसा जानने वाले मनुष्य पूर्ण समर्पण को ही महत्व देते हैं, यह सब भारत की तपो और पूज्यभूमि की ही महिमा है।

# विश्वकर्मा द्वारा वास्तु शास्त्रवर्णन

शौनकजी ने कहा—हे सूतजी ! आप सभी विषयों के ज्ञाता हैं। अब आप कृपा करके प्रासाद, भवन आदि के निर्माण के विषय में कहिए। इसे करने का विधान क्या है ? हे महाप्राज्ञ ! सांसारिक मनुष्यों के लिए इसका जानना आवश्यक है। क्योंकि मनुष्य को रहने के लिए घर की अनिवार्यता सिद्ध है। घर न हो तो वस्तुओं का संचय करना कठिन होगा। शरीर रक्षा के लिए भी इसकी उपयोगिता स्वीकार की जाती है।

हे सूतजी ! मन्दिर, यज्ञशाला, अश्वशाला आदि का निर्माण भी वास्तुकला द्वारा ही होता है। इस कला का समुचित ज्ञान न रहने के कारण कुछ मनुष्य द्वारादि के लिए शुभ दिशा, श्रेष्ठ आकार-प्रकार आदि का ध्यान नहीं रखते। इस कारण उनकी उपयोगिता भी अधिक नहीं हो पाती। इस कला का पूर्ण ज्ञान हो तो भवनों को अधिक अनुकूल और उपयोगी बनाया जा सकता है। हे सूतजी ! आप यह भी बताइए कि वास्तुशास्त्र के ज्ञाताओं और उपदेशकर्ताओं में कौन-कौन प्रसिद्ध हुए हैं ?

सूतजी बोले—हे मुनिश्रेष्ठ ! वास्तुशास्त्र के ज्ञाता और उपदेशक प्रमुख रूप से अठारह माने हैं—विश्वकर्मा, भृगु, वशिष्ठ, मय दानव, नारद, नग्नजित्, विशालाक्ष, इन्द्र, ब्रह्मा, कुमार, नन्दीश, शौनक, गर्ग, वासुदेव, अनिरुद्ध, शुक्र और बृहस्पति। हे मुने ! इन सब में भगवान् विश्वकर्मा ही प्रथम उपदेष्टा हैं। वे ज्ञाता भी हैं, निर्माता भी हैं। वास्तु कला का आरम्भ उन्हीं के द्वारा हुआ है।

प्राचीन काल का वर्णन है—भयंकर रूप वाले दैत्य अन्धक का वध किए जाने पर भगवान् शूली के मस्तक से पसीना नहीं रुक रहा था। उस बहते हुए पसीने से एक विकराल बदन वाला, भयंकर और अद्भुत पुरुष उत्पन्न हुआ था। वह आकाश को ग्रसता हुआ सप्त द्वीपों से युक्त इस पृथ्वी का भी भक्षण करने लगा। हे महामते ! इस धरती पर अन्धक और उसके अनुचरों का रक्त जब जितना गिरा, तब उसने उस रक्त को गिरते-गिरते ही पान कर लिया था। उतना रक्त पान करने पर भी उसकी तृप्ति नहीं हुई, इस कारण वह क्षुधा से व्याकुल होकर घोर तपस्या द्वारा भगवान् शंकर को प्रसन्न करने लगा। परन्तु उसे फल की प्राप्ति नहीं हो रही थी।

हे मुने ! वह उग्र तपस्या करता हुआ भी जब कभी मुख खोलता, तब ऐसा प्रतीत होता, मानो तीनों लोकों का ग्रास-सा कर जाएगा। उसके इस लक्षण को देखकर देवगण विचलित हो उठे। उन्होंने सोचा कि कहीं इसकी बुद्धि भ्रमित हो गई और इसने त्रिलोक भक्षण का उपक्रम आरम्भ कर दिया तो संसार में हाहाकार मच जाएगा।

इसलिए इन्द्रादि देवताओं ने ब्रह्माजी के नेतृत्व में शिवजी की शरण में जाकर उनसे प्रार्थना की कि हे आशुतोष ! हे महादेव ! इस दैत्य का निवारण कीजिए कहीं ऐसा न हो कि यह तीनों लोकों को ही अपना ग्रास बना ले। आपको प्रणाम है, प्रणाम है।

हे शौनकजी ! देवताओं को भयभीत जानकर शिवजी हंस पड़े। उन्होंने भैरव को आज्ञा दी—वत्स ! उसे जाकर शान्त करो। वैसे उसकी तपस्या भी सामान्य रूप से पूरी हो गई है इसलिए उसका कार्य समाप्त हो जाना चाहिए।

शिवजी की आज्ञा सुनकर भैरव तुरन्त उसके सम्मुख प्रकट हुए और बोले—तपस्वी ! सावधान ! तेरी तपस्या पूरी हो चुकी है। बतला किस कारण इतने कष्ट सहे हैं ? मैं तेरी कामना पूरी करूंगा। तब उस भूत ने कहा—प्रभु ! आपके दर्शन करके मैं कृतार्थ हो गया। अब मांगू क्या, यह समझ में नहीं आता। यह सुनकर भैरव हंसे और फिर कहा—हे दैत्यराज ! मैं तेरी तपस्या देखकर बहुत प्रसन्न हो गया हूं। बिना विलम्ब किए अपनी अभीष्ट वस्तु मांग ले। मैं तुझे इच्छित वरदान दूंगा।

यह सुनकर दैत्य ने कहा—हे देव ! मैं जो चाहता हूं वह आप कृपापूर्वक देंगे ? भैरव ने उसे आश्वासन दिया, तब उसने कहा मैं इस त्रिलोकी को ग्रास करने में समर्थ हो जाऊं। भैरव बोले—ऐसा ही होगा। यह कहकर भैरव अन्तर्ध्यान हो गए

और वह भूत अपने देह का सन्धान न करने के कारण भूखण्ड पर गिर गया। तभी वह समस्त देवताओं के द्वारा घेर लिया गया।

हे शौनक ! वह जिसके द्वारा, जहां भी आक्रमिक हुआ, वहीं पर निवास करने तथा सभी देवताओं के निवास से युक्त होने के कारण उसका नाम 'वास्तु' हो गया। इस प्रकार उसी को वास्तु कहते हैं, जो जहां स्थित हो। जब वह भूत सब देवताओं के द्वारा घेर लिया गया और वहीं गिरा दिया गया तब वह अत्यन्त करुण शब्दों में उनसे प्रार्थना करने लगा—हे देवताओ ! आप मेरा अपराध क्षमा करके प्रसन्न हो जाइए। आपने मुझे स्थिर कर दिया है, इसलिए बहुत कष्ट पा रहा हूं। कृपया बताइए कि मैं घिरा हुआ तथा नीचे की ओर मुख किए पड़ा हुआ, किस आकार-प्रकार में स्थित रहूंगा ?

हे मुने ! यह सुनकर देवताओं ने कहा हे भूत ! वास्तु मध्य में जो बलि या वैश्यदेवों के अन्त में जो होगा, वह तेरा आहार होगा। इसके अतिरिक्त अज्ञानवश किए गए यज्ञ में जो बलि दी जाएगी वह भी तेरा आहार होगा। हे वास्तु ! तेरे आहार की समस्या इस प्रकार सुलझा दी गई है तू क्षुधार्त नहीं रहेगा यज्ञोत्सव आदि में दी गई बलि तुझे आहार रूप में प्राप्त होगी।

हे मुने ! इस प्रकार कहे जाने पर वह अत्यन्त प्रसन्न तथा यथार्थ में वास्तु रूप हो गया था। हे शौनक ! इस कारण तभी से शान्ति के निमित्त वास्तु यज्ञ का विधान हुआ है।

हे मुने ! अब वास्तु के विषय में कहता हूं, जो गृहों के आदि में विघ्नों का नाशक है। हे मुने ! पूजन विधान के अनुसार सर्वप्रथम गणेशजी का ही पूजन सब शुभ कर्मों में किया जाता है। भगवान् विश्वकर्मा के पूजन में भी यही नियम मान्य है, जिसे विधिपूर्वक ही किया जाना चाहिए।

हे शौनक ! अब वास्तु यज्ञ की विधि बतलाता हूं। ईशान कोण से आरम्भ करके इक्यासी पद तक यजन करे। ईशान उप-उपदिशा में शिर का, नैऋर्त में पांवों का तथा आग्नेय और वायव्य उपदिशाओं में दोनों हाथों का यजन करना चाहिए। वेश्व, पुर, आवास, वास, प्रासाद, आगम, दुर्ग, ग्राम, वाणिक्पथ, देवालय तथा मठ में इन बत्तीस देवताओं का आह्वान करे—जयन्त, ईश, पर्जन्य, सूर्य, इन्द्र, सत्य, वायु, पूषा, भृगु, आकाश, दोनों ग्रहक्षेत्र, यम, मृग, पितृगण, गन्धर्व, भृगुराज, सुग्रीव, पुष्पदन्त, गणाधिप, द्वारपाल, असुर, शेषपद, रोग, सोम, सर्प, दिति और अदिति।

हे मुने ! समिधा, कुशा, ईंधन और आयुधों को रखने का स्थान नैऋर्त दिशा में होना चाहिए। अभ्यागतों, अतिथियों को ठहराने का स्थान अत्यन्त सुन्दर बनाया जाए। इस ओर में अग्नि-दीपक, आसन-शैया-पादुका-जल आदि समुचित व्यवस्था हो तथा अतिथि सेवा के लिए भोजन भी। ऐसा स्थान दक्षिण दिशा में निश्चित करना चाहिए। सभी घरों के अन्तर्भाग जलयुक्त कदली गृह और पांच वर्ण वाले पुष्पों से

सुशोभित रहें।

इसी प्रकार प्रासाद के एक ओर वन-उपवन से समन्वित देव मन्दिर रहे, जिसमें श्री विष्णु स्वरूप विश्वकर्मा का पूजन किया जाए।

हे शौनक ! प्रासाद के आदि में चौंसठ पदों वाला वास्तु पूजित हो, मध्य में चतुष्पद ब्रह्मा और द्विपद अर्यमा आदि का पूजन किया जाए। कर्ण में शिखी आदि देवता कहे जाते हैं, उनके दोनों ओर द्विपद वाले और भी देवता होते हैं। चरकी, विदारी, पूतना, पाप, राक्षसी, ईशनादि में हैं। तदनन्तर बाहिर, यम अग्निजिह्वा, कालका, कराल, एक पादक का यजन करना चाहिए।

हे मुने ! ईशान दिशा में भीमरूप, पाताल में प्रेतनायक, आकाश में गन्धमाली का और तदनन्तर क्षेत्रपालों का पूजन करे। इस प्रकार वास्तु कर्म करने के अनन्तर आठ का भाग करके शेष को अरिष्ट करे और फिर आठ से गुणित करके ऋक्षभाग को विभाजित करे, फिर जो शेष रहे, वह ऋण होता है।

हे मुने ! भागों से हरण करने पर व्यय होता है। ऋक्ष को चार गुणा करके नौ से भाग दे, शेष फल वह जीव होता है। मनुष्यों को वास्तु की गोद में घर बनाना चाहिए, पीछे न बनावे। बाएं पार्श्व में शयन करने पर कुछ संकोच नहीं है।

हे शौनक ! कन्या, सिंह और तुला से द्वार की उत्तर में शुद्धि करे। इसी प्रकार वृश्चिकादि में पूर्व दक्षिण और पश्चिम में करना चाहिए। दीर्घ के आधे विस्तार वाला द्वार होना चाहिए। द्वार आठ कहे गए हैं। रौद्र में पुत्र हीनता होती है दक्षिण में वीर्य नाश होता है। विद्वान् मंत्रज्ञों को इन सबके विचारपूर्वक ही कार्य करना चाहिए।

# वास्तु-विषयक विमर्श

सूतजी बोले—हे मुने ! हे मुनीश्वर ! अब मैं क्रिया के बारे में कहता हूं। वास्तु के सभी कार्यों में प्रथम देवताओं का पूजन और गुण करना चाहिए। देवताओं की प्रतिष्ठा में प्रथम विश्वकर्मा प्रभु का गुण कीर्तन करे। क्योंकि देव-यज्ञ युक्त पूजनोत्सव के बिना जीवन व सांसारिक कष्टों आदि से मुक्ति नहीं होती। इसलिए देवता की प्रसन्नता प्राप्ति का उपाय अवश्य करना चाहिए।

हे शौनक ! देवताओं में अनुग्रह करने की बड़ी शक्ति है। वे जब जैसा चाहें उपकार कर सकते हैं। यदि रुष्ट हो जाएं तो बनते हुए कार्य बिगड़ सकते हैं। वास्तु विज्ञान के आदि उपदेशक भगवान् विश्वकर्मा की कृपा से ही भवनादि के निर्माण कार्य सिद्ध होते हैं जिन भगवान् विश्वकर्मा ने देवताओं के लिए स्वर्ग लोक की रचना की, उस लोक में बड़े-बड़े भवन, शाला आदि का निर्माण किया। पृथ्वी लोक की

रचना उन्हीं ने की। बड़े-बड़े पर्वत, वन-उपवन, झरने, नदियां, स्थल और उनमें स्थायित्व को देखकर किसे आश्चर्य नहीं होगा ? भगवान् कृष्ण के लिए द्वारिका का समुद्र में निर्माण क्या कोई मनुष्य किसी भी प्रकार कर सकता ?

हे मुनिश्रेष्ठ ! मनुष्य की जैसी भावना होती है, वैसा ही फल प्राप्त होता है। भारत में भावना को अधिक मान्यता दी गई है। क्योंकि इसकी उत्पत्ति मन से होती है। मन शुभ प्रेरणा वाला हो तो उसका फल भी शुभ होना अनिवार्य है। अशुभ भावना सदा दुःखदायी होती है। सब प्राणियों के प्रति आत्मभावना रहने पर मनुष्य को सभी का प्रेम प्राप्त होता है और देवगण भी ऐसे मनुष्य की सहायता करते हैं। तो कठिन से कठिन कार्य भी सिद्ध हो जाते हैं।

हे मुने ! मन शुद्ध रहे तो सब कुछ शुद्ध रहता है। उसे शुद्ध रखने के लिए भगवान् में विश्वास रखे और समझे कि वे जैसे रखेंगे वैसे ही हमको रहना होगा जिसने प्रभु पर भरोसा किया उसके लिए सभी अपशकुन व्यर्थ ही हो गए। समस्त शकुनों के आश्रय स्थान एक वे ही परमपिता हैं।

हे शौनकजी ! लोकाचार की दृष्टि से शकुनों के लक्षणों पर ध्यान दिया जाता है। विषयों में प्रवृत्त मन में अनेक प्रकार के तर्क-कुतर्क और शंकाओं का समावेश रहता है। उन शंकाओं का निवारण भी बहुत आवश्यक है। जो लोग शकुन पर विश्वास करते हैं, उनके लिए तो शुभाशुभ लक्षणों का महत्व और भी अधिक हो जाता है।

हे शौनकजी ! इन्हीं कारणों से वेद पारंगत ऋषियों द्वारा प्राप्त ज्ञान के अनुसार अब मैं तुम्हारे प्रति कब निर्माण कराना चाहिए ? किस प्रकार से शुभ काल को जानकर सदा ही भवन निर्माण का कार्य आरम्भ करना चाहिए। चैत्र मास में घर का निर्माण कराने से व्याधि उत्पन्न होती है। किन्तु वैशाख मास इस कार्य में बहुत शुभ है। जो मनुष्य वैशाख भवन का निर्माण कराता है उसे धेनु और रत्नों की प्राप्ति होती है। ज्येष्ठ मास गृह-निर्माण का आरम्भ कराने में निषिद्ध है, क्योंकि यह कार्य ज्येष्ठ में मृत्यु कारक होता है। आषाढ़ में गृह-निर्माण का आरम्भ कराने से भोजन, रत्न एवं पशुओं की प्राप्ति होती है। श्रावण में गृह का निर्माण आरम्भ कराने से निष्ठावान सेवक मिलता है। भाद्रपद में यह कार्य हानिकारक है। यदि आश्विन मास में गृह का निर्माण आरम्भ कराए तो उसके कुफल स्वरूप पत्नी का नाश होता है। कार्तिक मास इस कार्य के आरम्भ हेतु शुभ माना गया है, क्योंकि वह धन-धान्य का लाभ कराता है। मार्गशीर्ष में भक्त अर्थात् अपने निष्ठावान अनुयायी की प्राप्ति होती है। पौष में यह कार्य तस्करों से भय प्राप्त कराने का होता है। किन्तु फाल्गुन मास में इसका आरम्भ करने में भाग्योदय का कारण हो सकता है, क्योंकि सर्द सुख सम्पन्नता तथा पुत्रों की प्राप्ति होती है।

हे शौनकजी ! अब नक्षत्र के विषय में सुनो। अश्विनी, तीनों उत्तरा, रोहिणी,

मूल, ऐन्दव, हस्त, स्वाति, अनुराधा—ये नक्षत्र भवन-निर्माण कार्य का आरम्भ करने में अधिक प्रशंसनीय हैं। इन शुभ नक्षत्रों में किया गया आरम्भ भगवान् की कृपा प्राप्त कराने वाला है। रविवार और सोमवार को छोड़कर अन्य सभी वार गृह-निर्माण के आरम्भार्थ शुभ माने गए हैं।

हे शौनक ! शुभ योग में निर्माण का आरम्भ सदैव कल्याणकारी होता है। चन्द्रमा और सूर्य के बल को प्राप्त शुभ लग्न को भी देख ले। यह भी ध्यान रखा जाता है कि जिस प्रकार का निर्माण कराया जाए, उसके अनुरूप विचार करे।

हे मुने ! सर्वप्रथम तो उस भूमि के विषय में परीक्षा करे, जिस पर निर्माण होना है। तदुपरान्त वस्तु की प्रकल्पना की जानी चाहिए। लाल, सफेद, पीला, काला आदि अपने अनुकूल रंगों का प्रयोग करावे।

हे शौनकजी ! वास्तु तो सामूहिक नाम है, सभी प्रकार के निर्माणों में प्रयुक्त होता है। यह प्रासादों, गृहों तथा अन्यान्य प्रकार के निर्माण में भी सभी वर्ग के मनुष्यों के लिए शुभ का देने वाला है। अरत्नि मात्र खानूपरण नीचे के गर्त में परीक्षण योग्य है। यदि अधिक हो तो धनों की प्राप्ति होती है, न्यून हो तो हानि होती है। यदि सम हो तो फल भी समान होगा। तीन, पांच अथवा सात रात्रि में वे बीज अंकुरित हो जाते हैं, वह भूमि क्रमशः श्रेष्ट, मध्यम और कनिष्ठ होती है।

हे मुने ! पंचगव्य और औषधि के जलों के द्वारा संचन करे। इक्यासी रेखाओं से तथा कनक के पद करके, फिर पिष्ट के द्वारा लीपे और सूत्र से सब ओर आलोडन करे। पूर्व की ओर दस आयत लेखा हो तथा दस ही उत्तर की ओर रहें। सब वास्तु विभागों में यही विधि प्रयोग की जाती है। इसके पश्चात् पदों में स्थित देवताओं का पूजन किया जाता है।

निर्माण में ध्यान रखे। राजभवन उत्तम आदि भेदों से पांच प्रकार का होता है। एक सौ आठ हाथ परिमाण वाला भवन सामान्यतः श्रेष्ठ माना गया है। राज्य-विस्तार के अनुरूप भवन इससे बड़ा या छोटा भी हो सकता है। इसके उपवन में गूलर, पीपल तथा भवन के उत्तरी भाग में पल्क्ष वृक्ष रहे। पुन्नाग, अशोक, चम्पक, पिप्पली, पूग, केतकी, सरोज, शतपत्रक, नारियल, केला तथा पाटलादि के वृक्ष शुभ माने गए हैं। इनका आरोपण कराने वाला विस्तृत श्री का स्वामी होता है।

हे शौनकजी ! विद्वान् पुरुष को अपने भवन के चार भाग रखने चाहिए। अगले भाग में उत्सर्ग शुभ होता है, पृष्ठभाग सत्यावर्त प्रशस्य माना गया है। अपसत्य विनाशकारी होता है। दक्षिण में शीर्षक कामनाप्रद एवं शुभ होता है। वेदज्ञ ब्राह्मणों के द्वारा शिल्पियों के साथ मिलकर सर्वोषधि समन्वित स्तम्भों को विन्यस्त करके स्थापित करावे। विन्यास कार्य वेद, ध्वनि, मंगल गीत तथा सुमधुर वाद्यों के मंजुल घोष के साथ करे।

हे मुने ! भवन निर्माण में काष्ठ का प्रयोग भी किया जाता है। उसके लिए

शुभ मुहूर्त में वन में जाकर वृक्षादि का ग्रहण किया जाता है। हरे वृक्ष का ग्रहण न करे। क्योंकि हरे वृक्ष में भी प्राण होते हैं, काटने से उसे मौन वेदना होती है। सूखे वृक्ष से काष्ठ तब ले, जब वह अपने कार्य में उपयोगी प्रतीत हो। जिस वृक्ष का ग्रहण करना हो, काटने से पूर्व उसका पूजन करना चाहिए। विधिपूर्वक पूजा करने से ही वृक्ष को काटने का दोष दूर होता है, अन्यथा वह अमंगलदायक होता है।

हे शौनकजी ! बुद्धिमान पुरुषों को शुभाशुभ के प्रति अवश्य सतर्क रहना चाहिए। क्योंकि अनजाने में हुआ अशुभ युक्त प्रमाद भी हानिकारक होता है। जो काष्ठ किसी कुएं में, श्मशान में, नदियों के संगम में उत्पन्न हो, उसे निर्माण में प्रयुक्त होने के लिए काटना अमंगलकारी है। दूध वाले क्षीर वृक्षों, पक्षियों के अधिवास योग्य वृक्षों, चैत्य एवं देवालय आदि में उत्पन्न हुए वृक्षों का प्रयोग भी वर्जित है।

यदि विपुल वैभव की कामना हो तो ध्यान रखें कि कांटेदार वृक्षों को काम में न लें। आम के पेड़ भी इस कार्य में प्रयुक्त न करें। निर्माण कार्य के लिए एक जैसा काष्ठ ही प्रयोग में लावें। अनेक प्रकार के वृक्षों की लकड़ी का प्रयोग प्रतिकूल ही होता है। नीम, भल्लातक प्रभृति वृक्ष भी इस कार्य में अधिक उपयोगी सिद्ध नहीं होते। आसन, अशोक, मधुक, चन्दन, पनस, देवदारू आदि शुभ हैं।

हे शौनकजी ! शीशम, साल आदि के वृक्षों का काष्ठ अधिक दृढ़ और स्थिर होता है। अन्य अनेक प्रकार के वृक्ष भी ऐसे हैं, जिनका प्रयोग हितकर और शुभ फल देने वाला होता है। बहुत-से वृक्ष देखने में अधिक दृढ़ और अधिक टिकाऊ प्रतीत होते हैं, किन्तु शीघ्र ही गल जाते हैं। वृक्षों के शुभाशुभ विषय में जानकर ही उनके काष्ठ का भवन-निर्माण में प्रयोग श्रेयस्कर होता है।

हे मुने ! जब गृह का निर्माण पूरा हो जाए, तब उसमें प्रवेश के लिए शुभ मुहूर्त देखें। फिर श्रेष्ठ द्विजों को आगे करके दही, अक्षत, पुष्प, फल आदि सहित पूर्ण कुम्भ के साथ, मंगल गीत-वाद्य एवं वेद ध्वनि के मध्य गृह प्रवेश करे। वहां हवन आदि के द्वारा विश्वकर्मा भगवान् सहित अन्य देवताओं आदि का पूजन, दान, दक्षिणा, भोजन आदि से ब्राह्मणों और परिजनों को आनन्दित करना चाहिए।

षोडशोपचार के पश्चात् हवन करें। हवन में गायत्री मंत्र प्रयोग में ला सकते हैं। हे शौनकजी ! गायत्री मंत्र सभी कार्यों में सिद्धिदायक है। हवन में जितनी आहुतियां दी जाएं, उससे चौथाई संख्या में ब्राह्मण भोजन कराना श्रेयस्कर है। अधिक श्रद्धा न हो तो अपनी श्रद्धा के अनुसार संख्या में ब्राह्मण भोजन करावे और सामर्थ्य के अनुसार दक्षिणा दे। क्योंकि दक्षिणा के बिना सुकृत् की पूर्णता नहीं हो पाती। अनेक साधकों ने जप करके भी सिद्धि प्राप्त की। पूजन और मंत्र जप करके भी सिद्धि प्राप्त की है। पूजन और मंत्र जप दोनों ही करने वाले अमोघ फल के अधिकारी होते हैं। यदि विश्वकर्मा गायत्री का जप करें तो और भी उत्तम फल प्राप्त होता है। विश्वकर्मा गायत्री का मंत्र इस प्रकार है, जिसे कण्ठस्थ कर लेना चाहिए—

## विश्वकर्मा गायत्री

**ओम् सर्वरूपाय विम्हे, विश्वकर्मादेवाय धीमहि। तन्नो त्वष्टाप्रचोदयात्।**

हे मुने ! शौनकजी ! यह मंत्र सर्वदा सर्व सिद्धिदायक तथा अत्यन्त प्रभावशाली है। सामर्थ्यानुसार संख्या इसका जप करने से वहुत लाभ होता है। यदि अधिक न कर सके तो एक माला, आधी माला अथवा चौथाई माला ही कर लें। नित्य प्रति करने से अभीष्ट की पूर्ति शीघ्र होती है। यदि जप अधिक संख्या में करने के लिए अवसर न निकाल सकें तो केवल दस बार ही जप लेना चाहिए।

हे शौनकजी ! हे मुने ! वे एक ही प्रभु अव्यक्त से व्यक्त होते हैं, वे ही युग पुरुष हैं, वे ही महाकाल हैं। यह सदैव घूमता रहने वाला समय चक्र भी उन्हीं का रूप है। वे विश्वेश्वर होकर भी सब रूपों से परे हैं। वे स्वयं ही हिरण्यमय अण्ड के रूप में स्थित होते हैं, जल, वायु, अग्नि, आकाश, पृथ्वी—यह पंचभूत भी उन्हीं से उत्पन्न हैं, इसलिए यह सब किसी न किसी रूप में उन्हीं परमात्मा के रूप समझो। एक बार भगवान श्रीहरि ने स्वयं उन परब्रह्म परमेश्वर से प्रश्न किया था कि प्रभु ! मैं कौन हूं ? ब्रह्मा और शिव कौन हैं ? इसके उत्तर में प्रभु ने कहा था—हे हरे ! हे विष्णो ! मैं सृष्टि उत्पादन, पालन तथा संहार गुणों के उद्देश्य से ब्रह्मा, विष्णु और शिव इन तीन भेदों वाला होता हूं। वस्तुतः मैं तो सदा ही भेद-रहित हूं।

सूतजी बोले—हे मुने ! यह मैं बता चुका हूं कि समस्त कार्यों में भावना ही मुख्य होती है, इसलिए भावना को शुद्ध रखकर, भगवान् के अनन्त रूप में एक ही रूप का विश्वास करके श्रद्धापूर्वक श्रवण करने से ही श्रेष्ठ फल की प्राप्ति होती हे। अब मैं आपके प्रति पुराण को सुनने का फल कहता हूं।

हे शौनकजी ! इसके पाठ करने और सुनने से शीघ्र ही सब पापों का नाश होता है। इसका जो मनुष्य पाठ करता अथवा जो इसे सुनता है, वह सभी पुरुषार्थों की प्राप्ति कर लेता है। वस्तुतः वेद पाठ का, बड़ी दक्षिणा वाले महायज्ञों के अनुष्ठान का, बड़े से बड़े दान का जो फल होता है वह इस पुराण के पढ़ने-सुनने से मिल जाता है।

पुराण का पूजन करने वाले श्रोताओं को दिव्य ऐश्वर्यों की प्राप्ति होती है। जो लोग इस लोक में सुख चाहते हैं, उन्हें सुख मिलता है। जो लोग स्वर्ग की इच्छा करते हैं, उन्हें स्वर्ग की प्राप्ति होती है। जिन्हें मोक्ष की कामना होती, वह जन्म-मरण के मायावी चक्र से निकलकर परमात्मा की शरण में चला जाता है। केवल इस पुराण के श्रवण मात्र से ही उत्कृष्ट योग की सिद्धि होती है। इसी के सुनने से भगवान की भक्ति सुदृढ़ हो जाती है। जो दान करने में असमर्थ मनुष्य दान के फल की कामना करते हैं, उन्हें महादान का फल भी मिल जाता है। यह पुराण सुनने वाला मनुष्य सदा स्वस्थ रहता है और जो कोई रोगी सुनता है, उसका रोग नष्ट हो जाता है। अहित चिन्तन करने वाले शुभ चिन्तक हो जाते हैं। इस पुराण का श्रवण, करने

वालों को चोर, डाकुओं का भय नहीं रहता। न्यायालय के वाद-विवाद भी प्राणी के पक्ष में निर्णय ले लेते हैं।

हे शौनकजी ! जिनके पास अपनी धरती और मकान न हों, वे मनुष्य यदि इस विश्वकर्मा पुराण को पढ़ें या सुनें तो उन्हें उत्कृष्ट भूमि और श्रेष्ठ भवन की प्राप्ति होती है तथा विपरीत ग्रह शान्त हो जाते हैं। भूमि-सम्बन्धी या वास्तु-सम्बन्धी विवादों का निपटारा शीघ्र ही श्रोता के पक्ष में होता है। जिसके पास अन्न का अभाव हो, उसे अन्न की प्राप्ति होती है। जिन्हें धन की इच्छा होती है उन्हें धन की कमी नहीं रहती है।

हे महामते ! जो लोग सेवाभावी हैं, वे इसके श्रवण से अपने कार्य में प्रसिद्धि पाते हैं। परिश्रम का फल तो स्वभाव से ही मीठा होता है, किन्तु जो परिश्रम के साथ पुराण श्रवण भी करते हैं उनका परिश्रम सदा ही सफल रहता है, वह कभी विफल नहीं होता।

हे मुने ! यदि कोई ब्राह्मण इसे पढ़ता सुनता है तो उसे ब्रह्मविद्या की प्राप्ति हो जाती है। यदि कोई क्षत्रिय सुनता है तो उसके बल में वृद्धि होती है और युद्ध में विजय प्राप्त होती है। यदि कोई वैश्य सुने तो उसको व्यवसाय में अधिक लाभ मिलता है।

हे मुनीन्द्र ! इस पुराण के सुनने की बड़ी महिमा है। सभी प्रकार के पाप नष्ट हो जाते हैं और पुण्यवान् होकर मनुष्य कर्मबन्धन से मुक्त हो जाता है। परलोक भी सुधरता है। सभी प्रकार के कल्याणों की प्राप्ति कराने वाला यह अद्भुत उपाय है। इसके सुनने से सभी प्रकार के सन्देहों का निवारण होता है। सभी प्रकार का अज्ञान दूर हो जाता है तथा बुद्धि शुभ कार्यों में लगती है।

हे मुने ! इसके सुनने से वैश्य को सदैव धन की प्राप्ति होती है और शूद्र भी सुखी होता है। इसे श्रवण से समस्त तीर्थों का फल अनायास ही मिल जाता है। जो फल एक वर्ष तक निरन्तर अग्निहोत्र करते रहने पर भी नहीं होता, वह फल इसके पढ़ने-सुनने से सहज ही मिल जाता है।

हे शौनकजी ! इस एक ही पुराण की पूजा करने तथा पढ़ने, कहने, सुनने आदि से समस्त पुराणों के सुनने का फल प्राप्त हो जाता है। क्योंकि इस एक में ही परब्रह्म परमात्मा के विभिन्न चरित्रों का वर्णन स्वाभाविक रूप से हो गया है। इसमें प्रभु के वे सब सुन्दर चरित्र कहे गए हैं।

हे शौनकजी ! उन सर्वरूप, सर्वज्ञ, सर्वस्वरूप तथा समस्त पापों का नाश करने वाले भगवान् का चरित्र इसमें कीर्तित हुआ है। प्रयाग, पुष्कर, कुरुक्षेत्र, हरिद्वार, मथुरा, द्वारिका, काशी आदि के तट पर निवास करने से जो फल प्राप्त होता है, वह इसके सुनने मात्र से मिल जाता है। हे मुने ! जिनके पितरों की श्रेष्ठ गति न हुई हो, वे यदि इसका श्रवण करें तो गया में पिण्ड दान का जो फल है, वह उनके पितरों

को प्राप्त हो जाता है।

हे शौनकजी ! जो मनुष्य संसार-सागर के भयों से भयभीत हैं, उनके लिए यह बड़ा रक्षक और अनुग्रह करने वाला होता है। यदि दुष्ट स्वभाव हो तो उसमें परिवर्तन हो जाता है और फिर वह मनुष्य सदा ही शुभ चिन्तन करने में लगा रहता है। इसके सुनने का महाफल है, जो कि समस्त मंगलों में भी मंगल रूप होता है।

हे मुने ! इस पुराण में सर्वत्र विश्व की सृष्टि, स्थिति और प्रलय करने वाले, सर्व समर्थ ब्रह्मज्ञानात्मक, चराचर के गुरु एवं अधीश्वर परमेश्वर का ही वर्णन हुआ है इसलिए इसके सुनने, पढ़ने और धारण करने से जिस फल की प्राप्ति हो सकती है, वह फल त्रिलोकी में किसी अन्य उपाय से प्राप्त नहीं हो सकता। क्योंकि इसमें वह सभी कुछ विद्यमान है।

हे शौनक ! माता-पिता तथा गुरु की निन्दा करने वाले पापियों को इसका उपदेश नहीं देना चाहिए। जो शास्त्र, धर्म और समाज की मर्यादा तोड़ने में लगा हो, उसे भी इसके देने से कोई लाभ नहीं है।

हे मुने ! ऐसा मनुष्य भी इस पुराण का अधिकारी नहीं है, जो लोग पाखण्ड धर्म के द्वारा भोले-भाले मनुष्यों को भ्रमित करते हैं, वे भी इसके अधिकारी नहीं है। जो लोभ के वशीभूत होकर इसके द्वारा किसी प्रकार से धन प्राप्त करना चाहता हो। मोहवश इसका पाठ करना भी श्रेयस्कर नहीं हो सकता। भगवान् के प्रति द्वेष, अविश्वास आदि रखने वालों को भी इसके देने का निषेध है।

**"ॐ नमो शान्ति देवाः"**

**॥ इतिश्री विश्वकर्मा पुराण ॥**

# विश्वकर्मा चालीसा

*दोहा*— मनु मय त्वष्टा विश्वकर्मा, शिल्प कर्म आधार।
तीन लोक चौदह भुवन, करनी का विस्तार ॥

*सोरठा*—प्रत्न सुपर्ण महाराज, सनग सनातन अहिभून।
शिल्पन के सरताज, आदि शिल्प के गुरु तुम ॥

जगत गुरु जग ईश पियारे।
विश्वकर्मा महाराज हमारे ॥
देव दनुज सबके दुख टारे।
दीनन के तुम हो रखवारे ॥
जल, थल, पर्वत और अकाशा।

चांद सूर्य नित करहिं प्रकाशा ॥
नाथ तुम्हारी अद्भुत करनी।
महिमा अमित जाहि नहिं बरनी ॥
सृष्टि आदि कर्ता हो स्वामी।
बार बार है तुम्हें नमामी ॥
भव निधि पड़े बहुत दुख पाये।
सब तजि शरन तुम्हारी आये ॥
जप तप भजन न होय गोसाईं।
बंधे कीट मर्कट की नाईं ॥
बन्धन छोर हमें अपनाओ।
निज चरणों का दास बनाओ ॥
जयति-जयति विश्वकर्मा स्वामी।
मम उर बसहु नाथ विज्ञानी ॥
सुमिरन भजन तुम्हारा भावै।
बुरे कर्म से मन हट जावै ॥
साधु सन्त के तुम रखवारे।
भक्त जनन के प्राण पियारे ॥
स्वारथ वश तब भक्ति बिसारी।
नाथ पड़ा हूं शरण तुम्हारी ॥
तुमहिं भजै अक्षय सुख पावै।
जन्म जन्म के दुःख बिनसावै ॥
पुरवहु नाथ मनोरथ मोरा।
मन क्रम वचन दास मैं तोरा ॥
एक लालसा यही हमारी।
केवल भक्ती चहौं तिहारी ॥
मंगल करन अमङ्गल हारी।
त्रिभुवन महिमा विदित तुम्हारी ॥
आरत-हरण भक्त भय हारी।
शरण शरण मैं शरण तिहारी ॥
तुम सबके गुरु सबके स्वामी।
तुम सबहीं के अन्तरयामी ॥
सर्व शक्ति तुम सब आधारा।
तुमहिं भजै सो उतरहिं पारा ॥
घट घट माहिं तुम्हारो बासा। सर्व

ठौर जिमि दीप प्रकाशा ॥
यह विधि तुमको जानै कोई।
भक्त अरु ज्ञानी कहिए सोई ॥
जगत पिता तुमहीं हो ईशा।
याते हम विनवत जगदीशा ॥
नाथ कृपा अब हम पर कीजै।
भक्ति आपनी हमको दीजै ॥
प्रेम भक्ति बिनु कृपा न होई।
सर्व शास्त्र में देखै जोई ॥
कर्म योग कर सेवत कोई।
ज्यों सेवै त्यों ही गति होई ॥
जो हरि ज्योति आप प्रगटाई।
घर घर में सोई दरशाई ॥
तुम सब ठौर सबन ते न्यारे।
को लखि सके चरित्र तुम्हारे ॥
तुम सबके प्रभु अन्तरयामी।
जीव बिसर रहे तुमको स्वामी ॥
विश्वकर्मा को जो कोई ध्यावै।
होय मुक्ति जीवन फल पावै ॥
डूब न जावे नाव हमारी।
हम आये हैं शरण तुम्हारी ॥
हम सेवक हैं नाथ तुम्हारे।
भव सागर से करौ किनारे ॥
सुत पितु मातु न कोई संघाती।
सब तजि भजन करहुं दिन राती ॥
दीनबन्धु दीनन हितकारी।
शरण पड़ा हूं नाथ तुम्हारी ॥
विश्वकर्मा ही ब्रह्म कहावै।
विश्वकर्मा सब सृष्टि रचावै ॥
पढ़ै जो विश्वकर्मा चालीसा।
सुफल काज हों बीसों बीसा ॥
चालिस दिन जो ध्यान लगावै।
राजद्रोह से मुक्ति पावै ॥
भूत प्रेत नहिं उनहिं सतावै।

चालीसा में जो मन लावै ॥
धूप देय अरु जपै हमेशा।
फिर नहिं पावै दुःख लवलेशा ॥
जो कोई अक्षत पुष्प चढ़ावै।
होय मुक्त जग फिर नहिं आवै ॥
उसके जीवन का रखवारा।
रहे नित्य विश्वकर्मा प्यारा ॥
सकल पदारथ करतल ताके।
बसै हृदय विश्वकर्मा जाके ॥

*दोहा*—आदि सृष्टि आधार तुम,रचना विविध प्रकार।
नाथ तुम्हारी कृपा बिन, केहि विधि उतरूं पार ॥
हाथ जोड़ विनती करूं, धरूं चरण माथ।
पूर्ण होय मम कामना, यह वर दीजै कर्तार ॥

# श्री विश्वकर्मा जी की आरती

ज्योतिर्मय शान्तमयं प्रदीप्तं विश्वात्मकं विश्वजीतन्निरीशं।
आद्यंत शून्यं सकलैक नाथं श्री विश्वकर्माणमहं नमामि ॥
ॐ विश्वकर्मा दिशां पतिः सनः पशून्यातु सोऽस्मान्यातु तस्मै नमः।
प्रजापतिरुद्रो वरुणोग्निर्दिशांपतिः सनः पशुन्यातु सोडस्मान्पातु तस्मै नमः ॥

अथ पुरुषोह वै विश्वकर्मणे कामयत प्रजासृजयैति। विश्वकर्मणः प्राणो जायते मनः सर्वोन्द्रियाणि च। खवायुजर्योविरामः पृथिवी विश्वंस्यधारिणी ॥ विश्वकर्मणो ब्रह्मा जायते। विश्वकर्मणो रुद्रो जायते। विश्व कर्मणो नारायणो जायते। विश्वकर्मणः प्रजापतयः प्रजायनते।

विश्वकर्मणो द्वाद्वशादित्या रुद्रा वसवः सर्वे देवताः सर्वे ऋषयः सर्वाणि छन्दांसि सर्वाणि भूतानि वा समुत्पद्यन्ते। विश्वकर्मणी प्रवर्धते। विश्वकर्माणे प्रतीयन्ते।

ॐ अथ नित्यो देवो एको विश्वकर्मा। यो देवानां नामधारी एक एव विश्वकर्मा। विराट विश्वकर्मा। स्वराट विश्वकर्मा। सम्राट विश्वकर्मा।

अथ रुद्रो विश्वकर्मा। ब्रह्मा विश्वकर्मा। शिवश्च विश्वकर्मा। विष्णुश्च विश्वकर्मा। शक्रश्च विश्वकर्मा। द्यावापृथिव्यौ च विश्वकर्मा। कालश्च विश्वकर्मा। विशश्च विश्वकर्मा। दिक्र च विश्वकर्मा। अग्निश्च विश्वकर्मा। ऊर्ध्वश्च विश्वकर्मा। अधश्च विश्वकर्मा। अवांतटश्च विश्वकर्मा। अंतर्बहिश्च विश्वकर्मा। विश्वकर्मणो

निराकृतिः।

विश्वकर्मणः एवेदं सर्व। यत् भूतं यच्च भव्यं।
निष्कलंको निरंजनो निर्विकल्पो निराख्यातः॥
शुद्धाद्वैतैका विश्वकर्मा न द्वितीयोस्ति कश्चित्।
य एवं वेद स विश्वकर्माऽभवति॥

ॐ इत्यग्रे व्याहरेत्। नमेति पश्चात्। विश्वकर्मण इव्यष्यक्षरं पदं ध्येति। अन प्रब्रवस्सर्व आयुरोत। विदंते प्राजापत्यं रायस्पोख गौपत्यं॥ ततो अमृततत्वमुश्नुते। ततो अमृततत्वमश्नुत इति च एवं वेद।

प्रत्यगानंद ब्रह्म पुरुषं प्रणव स्वरूपम् अकार, उकारो, मकार इति।
तानेकधारभमरत्तदेतदोमिति। यमुक्त्वा मुच्यते योगी जन्मसंसार वंधनात्॥

ॐ नमो विश्वकर्मण इति मंगोपसकः सायुज्ये गमिष्यति। तदिदं परं पुण्डरीक विज्ञान धनम्। तस्मात् तदिदावनमात्रं ब्रह्मणयो विश्वकर्मोम्।

सर्वभूतास्थमेकं विश्वकर्माणं कारणरूप मकार परविश्वब्रह्मोम। पद्र विष्वा ख्यमिति तेपि विश्वकर्मकोपनिषदभ। यो हवै विश्वकर्मणयो पनिषदमधीते। सर्वेभ्यो पोपेभ्यो विमुक्तो भवति। ससर्वेभ्यः वियुक्तः सर्वान्कामानवाप्नोति। ब्रह्मत्वं च गच्छति। इत्युपनिषत्॥

॥ ॐ शांतिः शांतिः शांतिः॥

# विश्वकर्मा सूक्त (मूल)

य इमा विश्वावभुनानि जाहुवदृषिर्होता न्यसीदत्पिता नमः।
स आशिषा द्रविणमिच्छमानः प्रथमच्छदंबरां र आविसेस॥
किं स्विदासीदधिष्ठान मारंभणं उनमस्वित्कथासीत्।
यतो भूमि जनयन्विश्वकर्मा विद्यामोर्णोनमहिमा विश्वचक्षाः॥
विश्वतश्चक्षु ऋत विश्वतोमुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्मात्।
संबाहुभ्यां धमति संपतेत्रधावाभूमि जनयन्देव एकः॥
किं स्विद्वनं क उस वृक्ष आस यतो धावा प्रथिनी निष्टतक्षुः।
मनीषिणो मनसा प्रच्छतेदुतध्यतिष्ठद् भुवनानि धारयन्॥
या ते थामनि परमाणि माऽयमा या मध्यमा विश्वकर्मान्नुतेमा।
शिक्षा सखिभ्यो हविषि स्वधावः स्वयं यत्रस्व तत्वं दृधानः॥
विश्वकर्मन् हविषा वाव्रधानः स्वयं यत्रस्व प्रथिनी मुतधाम्॥
मुहयन्त्वन्येऽअमितः जनास इहास्माकं मधवां सूरिरस्तु॥

वाचस्पतिं विश्वकर्माण मूतये मनोजुवं वाजे अद्याहुवेम्।
सनो विश्वानि हवनानि जोषद्विश्वशभूखसे साधुकर्मा ॥
विश्वकर्मन हविषा वर्धनेन त्राता रमिन्द्रभकृणोरवध्यम्।
तस्मै विशाः समनमन्त पूर्वीरयमुग्रो विहव्यो यप्राऽसत् ॥
चक्षुषः पिता मनसा हि धीरो घृतमेने अजनन्नमाने।
यद्देदन्ता अदृहध्न्तपूर्व आदिधावा प्रथिवी अप्रथेताम् ॥
विश्वकर्मा विमना आसिध्या धाता विधाता परमोत् सन्दक।
तेषामिष्टानि समिषा मद्रनतियझा सप्तऋषीन पर एक माहुः ॥
योनः पिता जनिता यो वधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वाः।
यो देवानां नामधा एमेव तंसम्प्रश्नम्भुवना यन्त्यन्याः ॥
त आपजनत द्रविणं समस्मा ऋषयः पूर्वे जरितारो न भूना।
असूर्ते सूर्ते रजासि निषते ये भूतानि समकृणवन्तिमानि ॥
परो दिवा पर एना प्रथिव्या परो देवेभिरसुरैर्यहस्ति।
क स्विद् गर्भं प्रथमं दृघदापो यत्र देवाः समपश्यन्त विश्वे ॥
तमिद् गर्भं प्रथम दृधदापो यत्र देवाः समगच्छन्न विश्वे।
अजस्य नाभावध्ये कमर्पितं यस्मिंचिश्वानि भुवनानि तस्युः ॥
नतं विदाथत्र इमा जजानाथ घुष्काकेमन्तरं बभूवं।
नीहारेण प्रावृताजलया चा सुतृप उकथशा सश्चरिन्त ॥
विश्वकर्मा ह्यजनिष्ट देव आदि द्रगनधर्वो अभवद् द्वितीयः।
तृतीयः पिता जानितौषधी नामपां गमभ व्यधात्पुरुत्रा ॥

॥ श्री विश्वकर्मा की जय ॥

# श्री विश्वकर्मा जी की आरती

जय श्री विश्वकर्मा, प्रभु जय श्री विश्वकर्मा।
सकल सृष्टि के करता, रक्षक श्रुति धर्मा ॥ जय. ॥
आदि सृष्टि में विधि को, श्रुति उपदेश दिया।
जीव मात्र का जग में, ज्ञान विकास किया ॥ जय. ॥
ऋषि अंगिरा तप से, शान्ति नहीं पाई।
ध्यान किया तब प्रभु का सकल सिद्धि आई ॥ जय. ॥
रोगग्रस्त राजा ने, जब आश्रय लीना।
संकटमोचन बनकर, दूर दुःख कीना ॥ जय. ॥
जब रक्षकार दम्पत्ति, तुम्हारी टेर करी।
सुनकर दीप प्रार्थना, विपत्ति हरी सगरी ॥ जय. ॥
एकानन चतुरानन, पंचानन राजे।
द्विभुज, चतुर्भुज, दशभुज, सकल रूप साजे ॥ जय. ॥
ध्यान धरे तव पद का, सकल सिद्धि आवे।
मन द्विविधा मिट जावे, अटल शान्ति पावे ॥ जय. ॥
श्री विश्वकर्मा की आरती, जो कोई गावे।
भजत गजानन स्वामी, सुख सम्पत्ति पावे ॥ जय. ॥

●●●

# हमारे अन्य प्रकाशन :

- ❀ श्री विश्वकर्मा पुराण
- ❀ कृष्णनीति
- ❀ सुन्दर कांड
- ❀ सम्पूर्ण आरती संग्रह
- ❀ ( रंगीन चित्रों सहित )
- ❀ दशावतार
- ❀ योगेश्वर कृष्ण
- ❀ गंगापुत्र भीष्म
- ❀ महाबली भीम
- ❀ अभिमन्यु
- ❀ विश्वामित्र
- ❀ कुन्ती
- ❀ द्रौपदी
- ❀ महाभारत
- ❀ हमारे देवी देवता
- ❀ सरल रामायण
- ❀ शिव तन्त्र
- ❀ सन्तों की वाणी
- ❀ अनमोल वचन

प्रकाशक :

**साधना पॉकेट बुक्स**

39, यू० ए० बैंग्लो रोड,

जवाहर नगर, दिल्ली-110007

वेद-पुराण हमारे धर्म, समाज और व्यवस्था के मूलाधार हैं। और वेद और पुराण के आचरण को अपनाकर हमारे ऋषि-मुनियों एवं आचार्यों ने अपना दैहिक और भौतिक जीवन सफल बनाया।

ऐसे ही प्राचीन ज्ञानियों में भगवान विश्वकर्मा हैं, जिन्होंने निर्माण विद्या के हर क्षेत्र में अपना ज्ञान दिया है।

श्री विश्वकर्मा के नीति वचनों का ज्ञान-सागर है यह ग्रंथ 'विश्वकर्मा पुराण'।

साधना पॉकेट बुक्स